कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

मीराँबाई की पदावली

...चतुर्वेदी, एम० ए०, एल-एल० बी०

प्रेम रज्जु
पासभेदनिपुणोऽ...
निष्क्रियो भ...
बन्धन तो बहु...
का बन्धन सर्वाधिक...
कठिन लकड़ीको
भ्रमर कमलपुटमें
नहीं कर पाता।
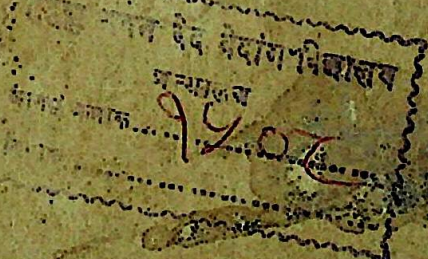
सं० २००४

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

सुलभ-साहित्य माला

मीराँबाई की पदावली

सम्पादक

परशुराम चतुर्वेदी, एम० ए०, एल-एल० बी०

२००४

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

तृतीय संशोधित संस्करण : : २००० प्रतियाँ, मूल्य २॥)

कृतज्ञता-प्रकाश

श्रीमान् बड़ौदा-नरेश महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ ने बंबई के सम्मेलन में स्वयं उपस्थित होकर जो पाँच सहस्र रुपये की सहायता सम्मेलन को प्रदान की थी, उसी सहायता से सम्मेलन इस 'सुलभ-साहित्य माला' के प्रकाशन का कार्य कर रहा है। इस 'माला' में जिन सुन्दर और मनोरम ग्रन्थ-पुष्पों का ग्रन्थन किया जा रहा है उनकी सुरभि से समस्त हिन्दी-संसार सुवासित हो रहा है। इस माला के द्वारा जो हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि हो रही है उसका मुख्य श्रेय श्रीमान् बड़ौदा नरेश को है। श्रीमान् का यह हिन्दी-प्रेम भारत के अन्य हिन्दी-प्रेमी श्रीमानों के लिये अनुकरणीय है।

साहित्य-मन्त्री

मुद्रक : जगतनारायणलाल, हिन्दी साहित्य प्रेस, प्रयाग।

दो शब्द

हिन्दी के प्राचीन काव्य तथा साहित्य में मीराँबाई के पदों का कितना महत्त्व है, उनके सुमधुर पदों ने कितनी लोकप्रियता प्राप्त की है, यह किसी भी हिन्दी प्रेमी से छिपा नहीं है। मीराँ के पद हिन्दी की अभूतपूर्व निधि हैं। ऐसी दशा में उनकी रचनाओं के एक सुलभ और सुन्दर संग्रह के प्रकाशन की विशेष आवश्यकता प्रतीत हो रही थी। यद्यपि अब तक मीराँ के पदों के कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं किन्तु उनमें प्रामाणिकता, अध्ययनशीलता की कुछ न कुछ कमी अवश्य पाई जाती है, विशेष कर मीराँ के पदों के अध्ययनशील विद्यार्थी उनसे विशेष लाभ उठाने में असमर्थ से रह जाते हैं।

इसी दृष्टिकोण से प्रस्तुत 'मीराँबाई की पदावली' तैयार की गई है। श्री परशुराम चतुर्वेदी प्राचीन तथा ब्रजभाषा काव्यों के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। पुस्तक के प्रारम्भ में आपने मीराँ की काव्य-रचना पर एक अध्ययनपूर्ण और विवेचनात्मक भूमिका लिखी है। इसके सिवा पद-टिप्पणी तथा अन्त में और ज्ञातव्य बातें भी दी हैं। मेरी समझ में यह संग्रह एक प्रामाणिक और हिन्दी में अपने ढङ्ग का अकेला है। हमें आशा है साहित्य के अध्ययनशील विद्यार्थी इस ग्रन्थ से पूर्ण लाभ उठायेंगे तथा मीराँ के पदों तथा साहित्य के अध्ययन में उन्हें पूर्णरूप से सहायता प्राप्त होगी। सम्मेलन ऐसे सुन्दर ग्रन्थ को प्रकाशित कर रहा है। हिन्दी संसार में ऐसे ग्रन्थों का प्रचार समुचित रूपमें होना चाहिए। साहित्य के विद्यार्थियों का लाभ तो इस ग्रन्थ से होगा ही, साथ ही ऐसे श्रेष्ठ संग्रह से सत्साहित्य की श्रीवृद्धि भी होगी।

साहित्य मन्त्री

वक्तव्य

मीराँबाई-सम्बन्धी जीवनचरित, पद-संग्रह वा आलोचनात्मक निबन्धादि कई वर्षों से, प्रायः निरन्तर, प्रकाशित होते आ रहे हैं और आगे भी उनके निकलते जाने की ही सम्भावना है। परन्तु अभी तक उनमें से अधिकांश का रूप, अधिक से अधिक, परिचयात्मक ही रहा है। इस विषय के समुचित अध्ययन की ओर प्रवृत्ति जगाने में समर्थ उनमें से बहुत कम जान पड़ते हैं।

ऐसे संस्करणों के निकालने में सबसे बड़ी कठिनाई प्रामाणिक सामग्रियों की कमी दीख पड़ती है। अभी तक मीराँबाई की जीवन-घटनाओं के विषय में भरपूर खोज नहीं हो पाई और न उनकी रचनाओं के (कम से कम पदों के भी) शुद्ध पाठ ही मिल पाये हैं। जहाँ तक पता है, इस ओर कई विद्वान् प्रयत्नशील हैं और सम्भव है उनके परिश्रमों का परिणाम हमें शीघ्र ही उपलब्ध हो सके।

प्रस्तुत संस्करण मुख्यतः परीक्षार्थियों के लिए प्रकाशित किया जा रहा है और उन्हीं की आवश्यकताओं की दृष्टि से इसका सम्पादन भी हुआ है। उक्त कठिनाई ने इसे तैयार करने में भी, स्वभावतः अड़चनें पहुँचाई हैं; जिस कारण, पुरानी हस्तलिखित मूल प्रतियों के अभाव में, केवल कुछ के आधार पर छपी अनेक प्रतिलिपियों के ही सहारे, इसमें आये हुए पदों के रूप निश्चित करने पड़े हैं और आज तक के प्रकाशित व उपलब्ध सामग्रियों की ही छानबीन पर, मीराँ का जीवन वृत्त-सम्बन्धी परिचय देना पड़ा है। तो भी इस बात का ध्यान सदा रक्खा गया है कि सदोष वा अप्रामाणिक बातें न आने पावें और न उनके कारण भ्रम उत्पन्न होने का कोई अवसर ही उपस्थित हो सके। मतभेद-सम्बन्धी कुछ विशेष बातों के लिए परिशिष्ट के रूप में एक अलग स्थान भी दे दिया गया है।

पुस्तक के आलोचनात्मक अंश में, उक्त उद्देश्य के अनुसार, महत्त्वपूर्ण बातों, जैसे—विषयों, भावनाओं वा पद्धतियों, के स्वरूप वा विकास सम्बन्धी विवरण वा विवेचन की ओर विशेष ध्यान दिया गया है, किन्तु तो भी उनकी

सीमा भरसक संकुचित रखनी पड़ी है और कहीं-कहीं तो स्पष्टीकरण की अपेक्षा संकेत-प्रदान मात्र ही पर्याप्त समझा गया है। किसी निर्णय का दृष्टिकोण अधिक स्पष्ट करने के लिए पुस्तक के विशेष-विशेष स्थलों का कभी-कभी अधिक उल्लेख हुआ है, किन्तु तुलनात्मक अध्ययन करते समय, इसकी कलेवर-वृद्धि के भय से उदाहरण कम दिये गए हैं।

इस संस्करण को, मंतव्यानुसार, कुछ पहले ही तय्यार हो जाना चाहिए था, किन्तु शारीरिक कष्टों वा पारिवारिक संकटों के कारण, मुझे, इस कार्य के लिए, इधर एक बार कभी पूरा समय न मिल पाया और विवश होकर, थोड़ा-थोड़ा करके इसे कई प्रयत्नों के अनन्तर पूर्ण करना पड़ा जिसका प्रभाव पुस्तक में संभवतः कई स्थलों पर स्वयं लक्षित हो जाएगा।

पुस्तक को वर्त्तमान रूप प्रदान करने में जिन ग्रंथों व निबन्धों से किसी न किसी प्रकार की सहायता मिली है (वा जिनसे परीक्षार्थी भी लाभ उठा सकते हैं) उनमें से कुछ की एक सूची 'सहायक साहित्य' के अंतर्गत, अन्त में, दे दी गई है और कई के उल्लेख यथास्थल अन्यत्र भी कर दिये गए हैं। उन सबके रचयिताओं को मेरा हार्दिक धन्यवाद है। परन्तु, विशेषरूप से, मैं उन सज्जनों के नाम भी लेना चाहता हूँ जिन्होंने मुझे और भी कई प्रकार से अनुगृहीत किया है। जयपुर निवासी श्री पुरोहित हरिनारायणजी शर्मा बी०ए०, 'विद्या भूषण' ने मुझे, कृपापूर्वक, इस ओर कई बार प्रोत्साहित किया है और डूंगरकालेज बीकानेर के प्रोफेसर श्री नरोत्तमदास जी स्वामी एम० ए०, 'विद्यामहोदधि' से भी मुझे इसमें कई प्रकार की सहायता प्राप्त हुई है। इसके सिवाय मैं अपने स्थानीय मित्र पं० श्यामसुन्दर उपाध्याय बी० एस-सी०, एल-एल० बी०; बा० गणेश प्रसाद एम० ए०, एवं ठा० राजासिंह जी रईस, रेवती, के प्रति भी विशेषरूप से कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मुझे समय-समय पर सत्परामर्श देकर वा कई बार अपनी पुस्तकें भेज कर भी उपकृत किया है।

बलिया
मकर-संक्रांति
सं० १९९८

परशुराम चतुर्वेदी

विषय-सूची

प्रथम भाग

द्वितीय भाग

तृतीय भाग

मीराँबाई की पदावली

(प्रथम भाग)

भूमिका

(अ) विषय प्रवेश

मीराँबाई राजस्थान-प्रान्त की एक राजपूत-महिला थीं। उनकी कर्मभूमि, कदाचित्, अधिक से अधिक वहाँ से पूर्व की ओर ब्रजमंडल एवं पश्चिम दिशा में श्रीद्वारकाधाम तक ही सीमित रही। राजस्थान प्रदेश

राजस्थान

बहुत कुछ मरुस्थल होकर वा निर्जन कहलाकर भी, सदा वीर जातियों का निवास-स्थान रहा है और उसका प्रायः प्रत्येक अंश, उनके, विदेशियों के साथ अथवा आपस की ही, लड़ाइयों में निरन्तर प्रवृत्त रहते आने से, युद्धस्थल भी बन जाता रहा है। परन्तु संग्रामों के कारण शौर्य-प्रिय होने पर भी, उनके हृदयों में प्रेम व शान्ति जैसे, मानवोचित भावों की भी कभी कमी नहीं रही। तदनुसार साहित्य व संगीतादि कलाओं के साथ भी उनका प्रेम सदा बना रहता आया, और वहाँ के स्थानीय या आस-पास वाले पवित्र धामों व परम्पराओं द्वारा प्रभावित होकर, उनके विचार बहुधा धार्मिक भावनाओं से भी ओतप्रोत हो जाते रहे। हिन्दी साहित्य के इतिहास के आदिकाल में कुछ इन जैसी बातों के ही कारण, हमें जागृति के जितने उदाहरण उक्त प्रदेश के भीतर मिलते हैं उतने और कहीं उपलब्ध नहीं होते। प्राचीन राजस्थानी वा हिन्दी के रूप में परिणत होती हुई अपभ्रंश के धर्म नीति व प्रेम सम्बन्धी फुटकल 'दूहों' व घटनात्मक 'बातों' के अनेक नमूने, सर्व प्रथम, हमें उक्त सीमा ही के भीतर दृष्टिगोचर होते हैं और यहीं पर आगे चलकर, हमें वे 'रसायण' वा रासो' नामक रचनाएँ भी मिलती है जिनमें वीर गाथाओं के साथ-साथ प्रेम व श्रृंगार के ललित भाव भरे पड़े हैं। इसके सिवाय, जिस प्रकार विहारादि प्रान्तों के प्राचीन हिन्दी-कवि बौद्ध सिद्धों की 'चर्या गीतियाँ' इधर, पूर्व की ओर, मिलती हैं प्रायः उसी प्रकार, हमें पुराने जैन-सूरियों द्वारा रचित साम्प्रदायिक साहित्य के अनेक प्रमाण बराबर, वहाँ पर भी मिलते जा रहे हैं।

राजस्थान में जिस समय मीरांबाई का आविर्भाव हुआ उस सम[illegible]
आध्यात्मिक साधना के अन्तर्गत, उत्तरी भारत में प्रायः सब कहीं, मुख्य[illegible]
तीन प्रकार की विचार-धाराएँ प्रबल वेग के साथ प्रवाहि[illegible]
विचार-धाराएँ
हो रही थीं। उनमें से पहली अर्थात् ज्ञानयोग की धारा [illegible]
चरम लक्ष्य, मनः शुद्धि अथवा चित्तवृत्तियों के निरोध द्वा[illegible]
परमतत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर, उसके साथ, अद्वैतभाव का अनुभव करना [illegible]
और दूसरी अर्थात् प्रेमानुबंध की धारा का अन्तिम ध्येय, परमात्मा के सा[illegible]
नैसर्गिक आत्मीयता का भाव हृदयंगम कर, उससे तादात्म्य लाभ करना था,
तथा तीसरी अर्थात् भक्तिभाव की धारा का एकमात्र उद्देश्य, उसी प्रकार
उसके प्रति पूर्ण श्रद्धा के भाव जागृत कर उसके साथ शाश्वत सान्निध्य [illegible]
अनुभव करना रहा। ये तीनों ही परम्पराएँ न्यूनाधिक प्राचीन थीं और यदि
चाहें तो इन तीनों मूल स्रोतों का पता हम कुछ न कुछ अंशों तक, अपने
प्राचीन साहित्य के भीतर भी पा ले सकते हैं। इन तीनों की रूपरेखा [illegible]
परिस्थितियों के अनुसार सदा कुछ न कुछ परिवर्तन होते आ रहे थे और इ[illegible]
तीनों का प्रभाव यहाँ के धार्मिक भावनाओं द्वारा अनुप्राणित प्रत्येक समा[illegible]
या सम्प्रदाय पर, किसी न किसी रूप में, बराबर पड़ता आ रहा था। त[illegible]
सभी कोई अपने साहित्य का निर्माण करते समय इनसे, किसी न कि[illegible]
प्रकार, बराबर लाभान्वित भी होते आ रहे थे। तदनुसार हिन्दी-साहित्य [illegible]
प्रारम्भिक विकास में भी हम इन तीनों का ही हाथ निरन्तर स्पष्ट रूप [illegible]
देखते आये हैं।

हिन्दी-साहित्य के प्रारम्भिक काल में ज्ञानयोग की धारा का प्रभाव ह[illegible]
सबसे पहले बौद्ध सिद्धों की रचनाओं में ही लक्षित होने लगता है। [illegible]
लोग प्राचीन सहजिया-सम्प्रदाय के अनुयायी थे [illegible]
ज्ञान-प्रयोग
बौद्ध धर्म द्वारा स्वीकृत ध्यानयोग के अनुसार एक प्रका[illegible]
की योग-साधना भी किया करते थे। उनका अंतिम लक्[illegible]
अपने चंचल चित्त के मलों को, वस्तुस्थिति के ज्ञान द्वारा दूर कर उसे स्थि[illegible]
व शून्यवत् बना, निर्वाण प्राप्त करना था जिसकी रहस्यमयी बातों को [illegible]

रूप से व्यक्त करने की चेष्टा में उन्होंने, रूपकों व अन्योक्तियों की सहायता से अनेक चर्यागीतियों की रचना की थी। उनकी साधना के अन्तर्गत किसी ईश्वर की भावना नहीं रही, परन्तु, उनके वर्णनों में इंडा-पिंगलादि के चित्रण अथवा वायुनिरोध-सम्बन्धी विवरण, कुछ अंशों तक, वैसे ही मिलते हैं जैसे प्राचीन योग-सम्बन्धी ग्रन्थों में पाये जाते हैं। सिद्धों के अनन्तर ईश्वरवादी नाथ-पंथियों ने अपने 'काया-शोधन' के लिए योगाभ्यास को कुछ और भी विस्तार के साथ अपनाया था और 'बस्ती' व शून्य'—दोनों—से परे रहने वाले 'केवल' रूपी परमात्मा की अवस्था तक पहुँचने की 'जुगतियों' का उपदेश दिया था। अतएव, उनकी पुरानी हिन्दी-'सबदियों' वा पदों पर हमें उक्त विचार-धारा की छाप कहीं और भी स्पष्ट रूप में दिखलाई पड़ती है। नाथ-पंथ द्वारा प्रभावित ज्ञानेश्वरादि महाराष्ट्रीय संतों की रचनाओं पर, आगे चलकर, हमें इसके साथ साथ कुछ भक्ति भाव के भी प्रभाव दीखने लगते हैं और हिन्दी के संत-साहित्य. की रचना होते-होते इसके साथ प्रेमानुबंध की धारा भी आकर मिल जाती है।

प्रेमानुबंध

हिन्दी साहित्य में प्रेमानुबंध की धारा का प्रथम प्रवेश, कदाचित् लौकिक भावनाओं को ही लेकर हुआ था, क्योंकि इस विषय के जो कुछ भी उदाहरण हमें राजस्थानी हिन्दी के फुटकल 'दूहों' रसायणों' या प्रेम कहानियों में भी अब तक मिल पाये हैं उनमें अधिक से अधिक लौकिक व्यक्तियों व श्रृंगारिक भावनाओं का ही समावेश है। मैथिल कवि विद्यापति के पदों में उक्त प्रेम व श्रृङ्गार का जो कुछ अलौकिक व पौराणिक रूप हमें लक्षित होता है वह संस्कृत के भक्त कवि जयदेव के प्रभावों का परिणाम है। उस समय, अधिक पूर्व की ओर बँगला के कवि चंडीदास भी उसी आदर्श द्वारा प्रभावित हुए थे और पश्चिम के गुजराती भक्त कवि नरसी मेहता को भी किसी वैसी ही शक्ति ने प्रेरणा पहुँचायी थी। परन्तु इस अलौकिक प्रेम की प्रणाली में परमात्मा के सगुण रूप को ही स्थान मिला था। उसके निर्गुण रूप की झलक हिन्दी साहित्य पर सर्व प्रथम, एक दूसरी ओर से प्रतिबिंबित होती दीख

पड़ी। उसी समय के लगभग भारत में चारों ओर सूफ़ी-सिद्धान्तों का भी प्रचार बराबर बढ़ता जा रहा था और सूफ़ियों के 'प्रेम' व 'पीर' की परम्परा का प्रभाव, उस समय की आध्यात्मिक रचनाओं पर, सर्वत्र पड़ता जा रहा था। इस कारण विक्रम की पन्द्रहीं व सोलहवीं शताब्दी वाले हिन्दी के संत कवियों ने भी उन्हें, अपनी वैसी फुटकल रचनाओं में, एक प्रमुख स्थान दिया और उन्हीं को लेकर, फ़ारसी की मसनवी पद्धति के आदर्शों पर, यहाँ की प्रेम कहानी ने भी एक नवीन रूप ग्रहण कर लिया। तदनुसार कबीर साहब, रैदास व नानक देव की रचनाओं में हमें प्रेमानुबंध की इस धारा का ही बहुत कुछ प्रभाव दीख पड़ता है और कुतबन, मंझन व जायसी के समय तक इसके आदर्शों पर लिखी गयी कतिपय प्रेम गाथाओं तक का पता चलने लगता है।

हिन्दी-साहित्य के अन्तर्गत उक्त तीसरी अर्थात् भक्तिभाव की धारा का प्रवाह कुछ पीछे जाकर लक्षित हुआ। भक्तिभाव का प्रारम्भ, वास्तव में सबसे पहले उत्तरी भारत में ही हुआ था, किन्तु परिस्थितियों के प्रतिकूल पड़ने पर उसे, कुछ काल के लिए, दक्षिण भारत के आलवारों वा आचार्यों के यहाँ आश्रय ग्रहण करना पड़ा

भक्तिभाव

और विक्रम की चौदहवीं शताब्दी के लगभग वह पहले पहल वहाँ से और भी प्रबल होकर अपने मूल स्रोत की ओर वापस आयी। हिन्दी के प्रारम्भिक दूहों' में हमें धर्म व नीति की थोड़ी बहुत मात्रा अवश्य दीख पड़ती है, किन्तु भक्ति भाव के उदाहरणों का उनमें प्रायः सर्वथा अभाव है। इस विचार-धारा वाली हिन्दी कविता के नमूने हमें, सर्वप्रथम, नामदेव के उपलब्ध पदों में मिलते हैं और उसके अनन्तर, कबीर साहब एवम् रैदास व नानकदेव प्रभृति निर्गुणोपासक संतों की रचनाओं में हम इसे, बहुत कुछ, प्रचुर मात्रा में भी पाने लगते हैं। हिन्दी-साहित्य के अन्तर्गत इसे सगुणरूप के साथ प्रविष्ट कराने में सब से प्रबल हाथ प्रसिद्ध स्वामी रामानन्द एवम् महाप्रभु बल्लभाचार्य का रहा जिनके अपूर्व प्रभाव में आकर इसके भीतर भक्तिभाव की एक अनोखी सरिता उमड़ चली और मीराबाँई के समय तक उसने हिन्दी के प्रायः सारे क्षेत्र को पूर्णरूप से आप्लावित कर दिया। पूर्व के बंगाल प्रान्त में उसी समय श्री चैतन्यदेव का

भी उदय हुआ था और उनका प्रभाव भी, एक ओर उत्कल प्रान्त से लेकर दूसरी ओर व्रजमंडल तक, फैल रहा था तथा उसी प्रकार पश्चिम की ओर गुजरात में भक्त नरसी के भी पद प्रचलित हो रहे थे। अतएव, उत्तरी भारत में सर्वत्र प्रायः एक ही प्रकार का वातावरण उत्पन्न हो जाने से भक्तिभाव की लहरों में एक बहुत बड़ी शक्ति का संचार हो आया और इसके फलस्वरूप सूरदास, हितहरिवंश, गदाधर भट्ट, आदि भक्त कवि अपनी व्रजभाषा की रचनाओं की ओर, विशेषकर इसी समय, प्रवृत्त हुए।

परिस्थिति

मीराँबाई के आविर्भाव के समय दिल्ली में लोदी वंश के मुसलमान शासन कर रहे थे और उनके अनन्तर बाबर ने वहाँ, बाहर से आकर, अपने मुगल वंश के राज्य की बुनियाद डाली, किन्तु दिल्ली अथवा गुजरात व मालवा की ओर से यदा-कदा आक्रमणों के होते रहने पर भी, राजस्थान पर मुसलमानों का कोई स्थायी प्रभाव नहीं पड़ पाया। मीराँबाई के समय को जितना महत्त्व राजनीतिक दृष्टि से प्राप्त होगा उससे कहीं अधिक उसे धार्मिक व साहित्यिक दृष्टियों से भी दिया जा सकता है। उत्तर की ओर पंजाब प्रान्त में, उनके जीवन-काल में ही गुरु नानकदेव (सं० १५२६-१५९६ वि० = सन् १४६९-१५३९ ई०) ने अपने मत का प्रचार किया था; पूर्व की ओर, बंगाल में, श्रीचैतन्यदेव (सं० १५४२-१५९० वि० = सन् १४८५-१५३३ ई०) ने अपनी रागानुगा भक्ति का आदर्श रक्खा था तथा मध्य में, व्रजमंडल के आस-पास महाप्रभु वल्लभाचार्य सं० १५३६-१५८७ वि० = सन् १४७९-१५३० ई०) ने भी अपने पुष्टिमार्ग को प्रवर्त्तित किया था और उसी काल के अन्तर्गत, कृष्णभक्ति एवम् सूफी परम्पराओं के हिन्दी-कवियों ने भी अपनी अनेक अनमोल रचनाएँ प्रस्तुत की थीं। ऐसे वातावरण में रहने वाली मीराँबाई की मनोवृत्ति पर उक्त तीनों विचार-धाराओं का न्यूनाधिक प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था, किन्तु इनसे कम महत्त्वपूर्ण, उनके लिए, उनके जीवन की घटनाएँ भी नहीं सिद्ध हुईं। उत्तरी भारत के वातावरण ने राजस्थान को प्रभावित किया और प्रान्त की परिस्थिति एवम् दैनिक जीवन के परिवर्तनों ने, उनके व्यक्तित्व को एक विशेष रूप से संघटित

कर, उसे उपलब्ध पदों की रचना के लिए, अपनी प्रेरणा प्रदान की।

(आ) मीराँबाई का जीवन-वृत्त

मीराँबाई के आविर्भाव-काल के विषय में बहुत दिनों तक पूरा मतभेद रहता आया है। तदनुसार, एक ओर, यदि, बहुत से लोग इन्हें मेवाड़ के प्रसिद्ध महाराणा कुम्भ (मृ० सं० १५२५ वि० = सन् १४६८ ई०) की रानी समझते थे और कुछ लोग मैथिल कवि विद्यापति का समकालीन तक मानते थे, तो दूसरी ओर अन्य सज्जन इन्हें प्रसिद्ध राठौड़ वीर जयमल (मृ० सं० १६२४ वि० = सन् १५६७ ई०) की पुत्री ठहराते थे। इनके जन्म व मरण के संवतों के सम्बन्ध में, इसी कारण, बहुत-सी मनगढंत बातें प्रचलित हो चली थीं—(देखो परिशिष्ट—क)। किन्तु राजस्थान के इतिहास-प्रेमियों ने अब खोज के उपरान्त, बहुत-सी बातें निश्चित सी कर दी हैं जिनके आधार पर इनका जीवन वृत्त, नीचे लिखे अनुसार, दिया जा सकता है।

काल-सम्बन्धी मतभेद

मीराँबाई, जोधपुर के संस्थापक सुप्रसिद्ध राठौड़ राजा राव जोधाजी (सं० १४७२—१५४५ वि० = सन् १४१५—१४८८ ई०) के पुत्र राव दूदाजी (सं० १४९७-१५७२ वि० = सन् १४४०—१५१५ ई०) की पौत्री थीं। राव दूदाजी ने अपने पिता के जीवन काल में ही, अपने भाई वरसिंह की सहायता से, मेड़ता के प्रान्त को, अजमेर के सूबेदार से छीनकर, उसके अन्तर्गत, सं० १५१६ वि० (सन् १४६२ ई०) में, एक नया मेड़ता नगर बसाया था। अतएव पीछे से, उक्त प्रान्त जब उन्हें पिता द्वारा जागीर में मिला तो, यही स्थान, जो जोधपुर नगर से लगभग २५ मील पूर्वोत्तर दिशा में अवस्थित है, उनकी राजधानी बना और, इसी के नाम पर, आगे चल कर, उनके वंशज मेड़तिया शाखा के राठौड़ कहलाये। मीराँबाई राव दूदाजी के चतुर्थ पुत्र रत्नसिंह (मृ० सं० १५८४ वि० = सन् १५२७ ई०) की इकलौती सन्तान थीं। रत्नसिंह को राव दूदाजी ने राज्य

कुल व जन्म

की ओर से, उनके जीवन निर्वाह के लिए जागीर में बाजोली, कुड़की, आदि १२ गाँव प्रदान किये थे और मीराँबाई का जन्म कुड़की[1] गाँव में ही सं० १५५५ वि० (सन् १४९८ ई०) के आसपास हुआ था।

मीराँबाई के बचपन की घटनाओं में प्रसिद्ध है कि उन्हें अपनी शैशवावस्था में ही श्री गिरधरलाल का इष्ट हो गया था। एक बार, किसी समय,

बाल्यावस्था

जब उनके पिता के घर कोई साधु आकर ठहरा तो उसकी पूजा में श्री गिरधरलाल की सुन्दर मूर्ति देखकर वे उसकी ओर आकृष्ट हो गयीं और उसे लेने के लिए मचलने लगीं, किंतु साधु उसे देने से इनकार कर वहाँ से चला गया और मीराँ ने हठ-पूर्वक अपना खाना-पीना तक छोड़ दिया। उधर साधु को स्वप्न हुआ कि 'मूर्ति' को मीराँ के हाथ सौंप देने में ही तुम्हारा कल्याण है' जिससे विवश हो उसे ऐसा करने के लिए फिर वापस आना पड़ा। बालिका मीरां मूर्ति को अपना कर अत्यन्त प्रसन्न हुई और सदा अपने पास रखने लगी। इसी प्रकार यह भी कहा जाता है कि, फिर कभी पड़ोस में किसी कन्या का विवाह होता देख, मीराँ अपनी माता से, भोलेपन में, पूछ बैठी कि, "मेरा वर कौन है?" जिसके उत्तर में माता ने हँसकर उक्त मूर्त्ति की ओर संकेत कर दिया और मीराँ को तभी से श्री गिरधरलाल की लगन लग गयी। मीराँबाई ने, जान पड़ता है, कुछ इन जैसी घटनाओं के प्रभाव का ही उल्लेख अपने पदों में प्रयुक्त 'बाल सनेही' (पद २९) वा 'बालपनाँ की प्रीत' (पद १००), आदि द्वारा किया है। मीराँबाई के एक पद (पद २७) में, इसी प्रकार, किसी स्वप्न के ब्याह की भी चर्चा है।

परन्तु मीरांबाई की माता उन्हें छोड़कर बाल्यावस्था (कदाचित् उनकी ४-५ वर्ष की वय) में ही चल बसीं और उनके पितामह राव दूदाजी स्नेह-वश उन्हें कुड़की से बुलाकर अपने यहां मेड़ता में रखने लगे। मेड़ते में राव

---

[1] सूचना—'महिला मृदुवाणी' (पृ० ५९) में मुं० देवीप्रसादजी ने इस गाँव का नाम चोकड़ी दिया है।

दूदाजी के साथ उस समय उनके बड़े लड़के वीरमदेव जी (सं० १५३४—१६०२ वि०=सन् १४७७-१५४५ ई०) का एक पुत्र जयमल भी रहा करता था। अतएव दोनों का लालन-पालन अपने पितामह की देख-भाल में एक ही साथ हुआ; दोनों ने उनके साथ रह कर अपनी प्राथमिक शिक्षा पायी और दोनों के कोमल हृदयों पर उनके सच्चे धार्मिक जीवन का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। उनकी संगति में रहने के कारण छोटी-सी अवस्था से ही मीराँ के हृदयक्षेत्र में पड़ा हुआ, भगवद्भक्ति का बीज मानो अंकुरित होकर पल्लवित होने लगा। तत्पश्चात् राव दूदाजी का देहान्त हो जाने पर भी जब वीरमदेव जी उनकी गद्दी पर बैठे उस समय, रत्नसिंह को, बहुधा लड़ाइयों में योग देते रहने के कारण, दूसरी बातों की ओर ध्यान देने के लिए कम अवकाश मिला करता था। अतएव मीराँ विषयक सारा आवश्यक प्रबन्ध अब से राव वीरमदेव जी की ही देख-रेख में चलने लगा।

प्राथमिक शिक्षा

राव वीरमदेवजी ने मीराँ का विवाह मेवाड़ के प्रसिद्ध महाराणा साँगा (सं० १५२६-१५८४ वि०=सन् १४८२-१५२८ ई०) के ज्येष्ठ पुत्र कुँवर भोजराज के साथ निश्चित किया और विवाह-विधि, संवत् १५७३ वि०=सन् १५१६ ई० में आनन्द-पूर्वक सम्पन्न हो गयी। मीराँ मेड़ते से अपनी ससुराल मेवाड़ आकर, प्रथानुसार महल में 'मेड़तणी' कहला कर प्रसिद्ध हो चलीं और उनका वैवाहिक जीवन भी अपने पति के साथ सुखपूर्वक व्यतीत होने लगा। परन्तु कुँवर भोजराज अधिक दिनों तक जीवित न रह सके और संयोगवश उनका देहान्त, किसी समय अपने पिता के जीवन-काल में ही (सम्भवतः सं० १५७५ वि०=सन् १५१८ ई० और सं० १५८० वि०=सन् १५२३ ई० के बीच में) हो गया। मीराँबाई इस प्रकार अपने पति के सुख से अल्पकाल में ही वञ्चित हो गयीं और युवावस्था में प्राप्त इस दुखमय वैधव्य के कारण उनके जीवन में एक बहुत बड़े परिवर्तन का अवसर आ उपस्थित हुआ। परन्तु मीराँ उसके लिए जैसे पहले से ही तैयार बैठी थीं। कहा जाता है कि विवाह के अनन्तर

विवाह व वैधव्य

सुसराल आते समय, वे अपने साथ की गिरधरलाल की मूर्त्ति भी लेती आयी थीं और कुंवर भोजराज की जीवितावस्था में भी, उसका विधिवत् पूजन व अर्चन करती रही थीं। पतिदेव का वियोग होते ही उन्होंने सारे लौकिक सम्बन्धों के बन्धन सहसा छिन्न-भिन्न कर दिये और चारों ओर से चित्त हटाकर, अपने इष्टदेव के प्रति वे और भी अनुरक्त हो गयीं।

उक्त घटना के लगभग पाँच वर्ष ही पीछे, महाराणा एवं बाबर के बीच होने वाले प्रसिद्ध 'कनवाह' के युद्ध में, मीराँ के पिता रत्नसिंह जी काम आये और
उसके कुछ ही अनन्तर स्वयं महाराणा का भी देहान्त हो
संकीर्तन व सत्संग गया। मीराँ के ऊपर स्वभावतः इन बातों का भी पूरा
विरक्तिपूर्ण प्रभाव पड़ा और उनका चित्त अब से भगवद्भक्ति
एवम् साधुसंगति में प्रतिदिन अधिकाधिक लगने लगा। वे भगवद्भजन में सदा निरत रहा करतीं और साधुसंतों के पहुँचने पर, लोक-लज्जा का परित्याग कर उनका आदर सत्कार वे बड़ी श्रद्धा के साथ करने लग जातीं। भगवद्दर्शन के लिए वे बहुधा बाहर के मन्दिरों में भी चली जातीं और प्रेमावेश में आकर, पैरों में घुँघरू बाँध हाथों से करताल बजा-बजा कर भगवान के सामने गाने व नाचने तक लगतीं (पद १६, २४, ३४, ३६, ४०, आदि)। धीरे-धीरे मीराँबाई की ख्याति चारों ओर फैलने लगी और दूर-दूर तक के लोग उनके दर्शन एवम् सत्संग के लिये आने लगे। ऐसे ही अवसरों पर जान पड़ता है, उनके यहाँ वल्लभीय सम्प्रदाय के कोई गोविन्द दुबे और कृष्णदास शूद्र पहुँचे थे जिनके विषय में कुछ उल्लेख हमें चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता, ग्रन्थ में मिलते हैं।[1] प्रसिद्ध तो यह भी है कि बादशाह अकबर एवम् गायक तानसेन भी मीराँबाई के दर्शनों के लिए गये थे और उनसे कतिपय विषयों पर बातचीत तक उन्होंने की थी, किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से, यह बात किसी प्रकार स्वीकार योग्य नहीं जान पड़ती। बादशाह अकबर का जन्म सं १५६६ वि० (सन्

---

[1]देखो—'चौरासी वैष्णवन् की वार्ता' गंगाविष्णु श्री कृष्णदास, मुंबई पृ० १६२ व ३४३।'

१५४२ ई०) में हुआ था और सं० १६१३ वि० (सन् १५५६ ई०) में वे शाही तख्त पर बैठे थे जिसके पूर्व उनसे और तानसेन से कदाचित् भेंट भी नहीं हुई थी; और सम्भवतः, उस समय, मीराँबाई इस लोक में वर्त्तमान भी नहीं थीं। अतएव उक्त घटना को सत्य मान लेना उचित नहीं प्रतीत होता। जो हो, उपरोक्त बातें मेवाड़ के प्रतिष्ठित राजवंश की मर्यादा के विरुद्ध, स्पष्ट रूप में, जान पड़ीं और महाराणा साँगा के उत्तराधिकारी और मीराँबाई के देवर महाराणा रत्नसिंह (सं० १५५३—१५८८ वि० = सन् १४९७-१५३१ ई०) एवम् राज-परिवार के अन्य लोग भी उन्हें, इसीलिये, समझाने और ऐसा करने से, मना करने लगे। परन्तु मीराँबाई पर उनके कहने-सुनने का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा।

दंड व अत्याचार

महाराणा रत्नसिंह बूँदी के हाड़ा सूरजमल के साथ चली आती हुई पारस्परिक अनबन के कारण उन्हीं के हाथों किसी शिकार के समय, मार डाले गए और उनके छोटे भाई विक्रमाजीत सिंह (सं० १५७४-१५९३ वि० = सन् १५१७-१५३६ ई०) उनकी जगह महाराणा बनाये गये। महाराणा विक्रमाजीतसिंह एक अयोग्य शासक थे और अपने 'छिछोरेपन' के कारण, उन्होंने अपने सरदारों तक को अप्रसन्न कर दिया था। मीराँबाई की भगवद्भक्ति से वे स्वभावतः बहुत चिढ़ने लगे और उन्होंने, नाना प्रकार के कष्ट पहुँचाकर, उन्हें दण्ड देना ही अपना कर्त्तव्य समझ लिया। मीराँबाई के पदों में उनके भिन्न-भिन्न अत्याचारों के कई उल्लेख मिलते हैं (पद ४०, ४१, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ५३, आदि)। कहा जाता है कि मीराँबाई ने उनके भेजे हुए विष को चरणामृत मानकर पी लिया, सर्प को तुलसी की माला की भाँति गले में डाल लिया और सूली पर सुखपूर्वक सो रहीं तथा सेल मारने पर उद्यत होने वाले महाराणा से भी तनिक नहीं डरीं। परन्तु उपलब्ध ऐतिहासिक विवरणों द्वारा इन सभी बातों की पुष्टि होती नहीं जान पड़ती। स्व० मुं० देवी प्रसाद मुंसिफ़ ने इस विषय में केवल इतना ही लिखा है कि "मीराँबाई को राणा विक्रमाजीत के दीवान कौम महाजन बीजावर्गी ने जहर दिया था.........मीराँबाई का

श्राप बीजावर्गी कौम अब तक लगा हुआ है और वे मानते हैं कि उस श्राप से हमारी औलाद और दौलत में तरक्की नहीं होती है।[1] प्रसिद्ध है कि मीराँबाई ने उक्त दुर्व्यवहारों से तंग आकर गोस्वामी तुलसीदास जी के साथ, अपना कर्त्तव्य निश्चित कराने के लिए, पत्र व्यवहार किया था, किन्तु यह घटना भी ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर असंदिग्ध नहीं ठहरती। (देखो परिशिष्ट—क)।

मेवाड़-त्याग

महाराणा विक्रमाजीतसिंह के शासन की कुव्यवस्था से उत्साहित होकर सं० १५८९ वि० (सन् १५३२ ई०) में गुजरात के बादशाह बहादुरशाह ने मेवाड़ पर चढ़ाई की और कुछ समय तक युद्ध होने के उपरान्त सन्धि हो गई। किन्तु सं० १५९१ वि० (सन् १५३४ ई०) में ही उसने फिर दूसरा आक्रमण किया जिसके उपलक्ष में महाराणा की माता कर्मवती देवी तक की आहुति हो गयी और चित्तौड़ पर बादशाह का अधिकार हो गया। सम्भवतः इस घटना के ही आसपास, किसी समय, अपने चाचा राव वीरमदेव जी की बुलाहट पर, मीराँबाई मेवाड़ छोड़कर अपने पीहर मेड़ता चली गयीं। मेड़ता का वातावरण उनके लिए बहुत अनुकूल था। राव वीरमदेवजी तथा जयमल जी, दोनों ही उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखते थे। और उनकी ओर से उन्हें अच्छा सुभीता भी मिलता रहा। कहा जाता है कि राजमहल के जिस भाग में वे उस समय श्री गिरधरलाल की पूजा किया करती थीं वह कदाचित् चतुर्भुज भगवान के मन्दिर में सम्मिलित है और 'मीराँबाई की भोजनशाला' के नाम से भग्नावशिष्ट दशा में, आज भी वर्त्तमान है। अस्तु, उधर, मीराँबाई द्वारा मेवाड़-त्याग के अनन्तर, यद्यपि कुछ दिनों तक ही रहकर, बहादुरशाह सं० १५९२ (सन् १५३५ ई०) में चित्तौड़ छोड़कर भाग गया और महाराणा विक्रमाजीत सिंह का उस पर फिर अधिकार हो गया, किन्तु शीघ्र ही (सं० १५९३ वि=

---

[1] बाबू शिवनन्दन सहाय रचित 'श्री गोस्वामी तुलसीदास' खड्ग विलास प्रेस, बाँकीपुर, पृ० ११३—४ में उद्धृत।

सन् १५३६ ई० में ही) महाराणा रायमल के राजकुमार पृथ्वीराज का अनौरस पुत्र (पासदानियाँ) वणवीर चित्तौड़ पर चढ़ आया और महाराणा को मारकर गद्दी पर बैठ गया।

इधर मेड़ते की भी दशा इन दिनों कुछ बुरी हो चली थी। मेड़ता और जोधपुर के राज्यों के बीच सं० १५८८ वि० (१५३१ ई०) से ही अनबन चल रही थी। तदनुसार जोधपुर के राव मालदेव ने सं० १५९५ वि० (सन् १५३८) में राव वीरमदेव जी मेड़ता छीन लिया और मीराँबाई की दैनिक चर्चा, स्वाभावतः, अव्यवस्थित-सी हो गयी। उपरोक्त घटनाओं के कारण मीराँबाई के ऊपर इस समय ऐसी विरक्ति का रंग चढ़ा कि उन्होंने मेड़ता को भी त्याग कर तीर्थयात्रा करने की ठान ली और पर्यटन करती हुई वे वहाँ से वृन्दावन पहुँच गयीं। कहते हैं कि वृन्दावन में उस समय प्रसिद्ध रूप गोस्वामी के भतीजे चैतन्य सम्प्रदायी श्री जीवगोस्वामीजी रहा करते थे और वहाँ के साधुओं में वे परम प्रसिद्ध थे। मीराँबाई सर्व प्रथम, कदाचित्, उन्हीं के यहाँ गयीं। गोस्वामी जी ने पहले उनसे मिलना स्वीकार नहीं किया और कहला भेजा कि मैं स्त्रियों से नहीं मिला करता। परन्तु, मीराँबाई के इस संदेश पर कि "मैं तो अब तक समझती थी कि वृन्दावन में भगवान् श्रीकृष्ण ही एकमात्र पुरुष हैं और अन्य सभी लोग केवल गोपी या स्त्री रूप हैं; मुझे आज ज्ञात हुआ है कि, भगवान् के अतिरिक्त, अपने को पुरुष समझने वाले यहाँ और भी विद्यमान हैं।" गोस्वामी जी अत्यन्त प्रभावित हुए और प्रेमावेश में नंगे पाँव बाहर आकर उनसे मिले। इसके उपरान्त मीराँबाई कुछ दिनों तक, कदाचित्, उसी स्थान पर ठहरी रहीं और गोस्वामीजी के साथ उनका सत्संग भी होता रहा, किन्तु वृन्दावन छोड़कर वे फिर द्वारकाधाम चली गयीं और यहाँ पर श्री रणछोड़जी की भक्ति में तल्लीन रहने लगीं।

तीर्थयात्रा

उधर सं० १५९४ वि० (सन् १५३७ ई०) में, वणवीर की जगह महाराणा विक्रमाजीतसिंह का छोटा भाई उदयसिंह मेवाड़ की गद्दी पर बिठाया गया और, कुछ दिनों के अनन्तर अर्थात् सं० १५९७ वि० (सन् १५४० ई०)

अन्तिम दिन

में, वह अपने सारे पैतृक राज्य का स्वामी भी बन गया। इसके तीन ही वर्ष पीछे, सं० १६०० वि० (सन् १५४३ ई०) में राव, वीरमदेव जी ने भी मेड़ते पर फिर अपना अधिकार कर लिया। परन्तु मेड़ता-विजय के अभी दो महीने भी न बीतने पाये थे कि, वीरमदेवजी का देहान्त हो गया और उनकी गद्दी पर उनके पुत्र जयमल जी आ विराजे। राव जयमलजी ने जोधपुर राज्य के साथ अपना विरोध नहीं छोड़ा और परिणामस्वरूप उन्हें फिर एक बार, सं० १६१६ वि० (सन् १५५९ ई०) में, मेड़ता से हाथ धोकर, कुछ दिनों के लिए, मेवाड़ की शरण लेनी पड़ी, जहाँ अकबर बादशाह के विरुद्ध, चित्तौड़ की रक्षा में, लड़ते हुए उन्होंने वीरगति प्राप्त की। कहा जाता है कि, मीराँबाई के द्वारका जाने का पता पाकर, मेवाड़ और मेड़ता, दोनों राज्यों, की ओर से उन्हें लौटाने के लिए ब्राह्मण भेजे जाने लगे, परन्तु उनके परिश्रम सफल नहीं हो पाये। प्रसिद्ध है कि, ब्राह्मणों के हठ पूर्वक धरना देने पर, मीराँबाई, श्री रणछोड़जी से आज्ञा प्राप्त करने के लिए, मन्दिर के भीतर गयीं और वहीं भगवान् की मूर्त्ति में समा गयीं। इस घटना का समय सं० १६०३ वि० (सन् १५४६) बतलाया जाता है और कुछ लोग उनका, इसके पीछे तक भी, रहना मानते हैं (देखो परिशिष्ट—क)।

(इ) मीराँबाई की रचनाएँ

ग्रंथ रचना कार्य

मीराँबाई की प्राथमिक शिक्षा मेड़ते में पूर्ण हुई थी। अनुमान किया जाता है कि, अन्य आवश्यक बातों के साथ-साथ उन्हें, समयानुसार, काव्य-कला एवं संगीतादि के अभ्यास का भी अवसर मिला था। मेवाड़ का राजवंश उन दिनों, प्रसिद्ध संगीत व साहित्यादि के प्रेमी विद्वान् महाराणा कुंभ के कारण, पूरा विख्यात हो चुका था, अतएव अपनी ससुराल में भी उन्हें, यथासम्भव, अपनी योग्यता के विकास के लिए अनुकूल वातावरण प्राप्त होता गया। जहाँ तक पता है, कुँवर भोजराज ने अपने जीवन-काल में इनके उत्साह में

किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुँचाई और, उनके मरणोपरांत भी अपने कठोर वैधव्य को सहन करने में इन साधनों से वे बराबर सहायता लेती रहीं। मीरांबाई ने कदाचित् इसी काल में, अपनी कुछ उपलब्ध रचनाएँ प्रस्तुत की थी और अधिकांश पदों को, अपने इष्टदेव के समक्ष गा-गा कर उन्हें रिझाने की चेष्टा भी की थी।

मीराँबाई की रचनाओं में से निम्नलिखित के नाम लिये जाते हैं विवरण हैं:—

(१) नरसीजीं रो माहेरो—अथवा नरसी जी का माहिरा वा मायरा—कहते हैं कि यह पदों में लिखा गया एक ग्रंथ है जिसमें विषय का वर्णन मीराँ की किसी मिथुला नामक सखी को संबोधित करके किया गया है। प्रश्नोत्तर में यत्र-तत्र 'दासी उवाच', 'मीराँ उवाच' शब्द भी आये हैं। इनकी, कदाचित्, अभी तक कोई प्राचीन प्रमाणिक प्रति पूरी नहीं मिल पाई है और न उपलब्ध अंशों के पढ़ने वाले इसे साहित्यिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण ही मानते हैं। ग्रंथ का विषय प्रसिद्ध भक्त नरसी मेहता के ताहेरा वा 'भात भरने' की कथा का वर्णन है। माहेरा राजस्थान और गुजरात की एक लोकप्रिय प्रथा है। लड़की वा बहन के घर, जब उसकी संतान का विवाह होता है तो, पिता वा भाई पहरावनी ले जाते हैं, उसी का नाम 'माहेरा' है। नरसी का माहेरा उनकी पुत्री नानाबाई के यहाँ हुआ था। बोल-चाल की राजस्थानी भाषा में इसी विषय पर एक और भी प्रसिद्ध ग्रंथ है जो किसी लकड़हारें की पुरानी रचना समझा जाता है। 'माहेरों' के आदि मध्य एवम् अन्त के कुछ पद 'परिशिष्ट—ग' में उद्धृत हैं।

(२) गीत गोविन्द की टीका—इस ग्रंथ का अभी तक कहीं पता चला है, अतएव, कुछ लोगों की धारणा है कि सम्भवतः महाराणा कुंभ द्वारा रचित प्रसिद्ध 'रसिकप्रिया टीका' को ही मीराँ की रचना समझ लिया गया है। मीराँ की ऐसी स्वतंत्र रचना नहीं है।

(३) राग गोविन्द—इस ग्रंथ के अस्तित्व के विषय में भी अभी तक संदेह है—गोकि म० म० गौरीशंकर हीराचंद ओझा के अनुसार मीराँ ने इस

नाम से 'कविता का एक ग्रंथ' रचा था।

(४) सोरठ के पद—मिश्रबंधुओं ने इसकी चर्चा की है। इसमें मीराँ के अतिरिक्त नामदेव और कबीर के भी राग सोरठ के पद संगृहीत हैं।

(५) मीरांबाई का मलार—श्री ओझाजी ने लिखा है कि यह "राग अब तक प्रचलित है और बहुत प्रसिद्ध है।" यह कदाचित् कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं है।

(६) गर्वागीत—श्री के० एम्० झावेरी ने बहुत से गुजरात में प्रचलित 'गर्वा गीतों' को मीराँ रचित माना है। 'गर्वा' गीत रासमंडली के गीत की भाँति गाये जाते हैं।

(७) फुटकर पद—मीराँबाई की रचनाओं में सब से अधिक निश्चित पता पदों का ही चलता है। इनकी संख्या अभी तक लगभग दो सौ की समझी जाती थी और श्री झावेरीजी ने गुजराती भाषा की कुछ रचनाओं को भी लेकर इनका ढाई सौ तक होना बतलाया था। परन्तु श्री पुरोहित हरिनारायणजी का कहना है कि "मीराँजी के पद मेरे पास ५०० के करीब इकट्ठे हो गये हैं। ये हस्तलिखित, मुद्रित और मौखिक रूपों में प्राप्त हुए हैं जिनका इतिहास वृहत् है" वे यह भी बतलाते हैं कि 'पद बहुत से प्रामाणिक ही प्रतीत होते हैं। शेष संदिग्ध और मिलावट के वा अशुद्ध दिखाई देते हैं।"[1] उपलब्ध पदों में कुछ की भाषा गुजराती है और अनेक पद ऐसे हैं जो केवल भाषा की भिन्नता के ही कारण, भिन्न जान पड़ते हैं। वास्तव में मीराँबाई के अनेक पदों को भी, कबीर साहब आदि के पदों की भाँति ही, बहुत कुछ दुर्दशा हो गई है। जिस-जिस ने गाया है उसने उन्हें अपने रंग में रँगने की चेष्टा की है और, अपने-अपने विचारानुसार, मीराँ के ढर्रे पर कितने ही ऐसे स्वरचित पद प्रचलित कर दिये हैं जो, बिना ध्यान पूर्वक देख भाल किये, मीराँ-रचित ही जान पड़ते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इन फुटकर पदों के अन्तर्गत मीराँबाई निर्मित समझी जाने वाली उक्त सं० (३, ४, ५ व ६) की रचनाएँ भी पूर्णतः वा अंशतः अवश्य सम्मिलित हैं।

---

[1] पुरोहित जी के यहाँ से प्राप्त एक पत्र से उद्धृत।

(ई) मीराँबाई की पदावली

(१) पद रचना-परंपरा—मीराँबाई की पदावली के प्रायः सभी पद गीतों के रूप में हैं। उनमें से अधिकांश में पहले एक टेक देकर उसके नीचे तीन-चार व अधिक चरण जोड़ दिये गये हैं और पूरे पद को किसी न किसी प्रकार के राग व रागिनी के अन्तर्गत रक्खा गया है। गीतों की यह परम्परा हिन्दी में, उसके आदि काल से ही, चली आती है।

सिद्धों की पद्धति

उस समय जब कि साहित्यिक अपभ्रंश पुरानी हिन्दी में परिणित हो रही थी, बौद्ध सिद्धों ने, विक्रम की नवीं शताब्दी के लगभग अपने समय की प्रचलित भाषा में चर्या गीतियों की रचना की थी जिनमें हम इन गीतों के पूर्वरूप भली भाँति देख सकते हैं। सिद्धों के (व नाथ-पंथियों के भी प्रायः वैसे ही) अनेक गीत पदों के रूप में आज भी सुरक्षित हैं। सिद्धों की उक्त गीतियों में भी, इधर के गीतों की ही भाँति, रागों की व्यवस्था है; किन्तु उनमें टेक प्रायः नहीं दीख पड़ते और पूरा पद एक ही प्रकार के किसी साधारण छन्द की जैसे अरिल्ल, चौपाई, चौबोला आदि की द्विपदियों में लिखा हुआ मिलता है। उनके बहुत से पदों में, भाषा की शुद्धता व प्रवाह के न रहने के कारण, उतना गेयत्व नहीं पाया जाता और न विषय की दुरूहता के कारण, उनमें काव्य की दृष्टि से, वैसी सरसता या रमणीयता ही दृष्टिगोचर होती है। उनमें अधिकतर व्यंग, वर्णन व उपदेश भरे पड़े हैं और यदि कहीं-कहीं उनमें कुछ अनुभव पूर्ण उद्‌गार भी मिलते हैं तो वे रचयिता के सांप्रदायिक साधनों के महत्त्व के द्योतक ही जान पड़ते हैं। सिद्धों व नाथों की उक्त रचना-पद्धति को पीछे से मराठी में नामदेव आदि तथा हिन्दी में कबीर साहब व रैदास आदि संतों ने, कुछ फेर-फार के साथ, प्रचलित रक्खा। अतएव इनके भी पद अधिकतर नैतिक व आध्यात्मिक विषयों से परिपूर्ण रहने के कारण, प्रायः दार्शनिक व उपदेशात्मक ही बनकर रह गये हैं। स्वानुभूति द्वारा उत्पन्न हृद्‌गत भाव तथा शुद्ध भक्तिभावना से ओतप्रोत पदों की संख्या, उनकी रचनाओं के अन्तर्गत, अपेक्षाकृत कम ही देखने को मिलती हैं।

उक्त कई दोषों से मुक्त व विशुद्ध पदों का संग्रह, सर्व प्रथम, हमें तेरहवीं विक्रम-शताब्दी के भक्त कवि जयदेव द्वारा रचे गये प्रसिद्ध "गीत गोविन्द" में मिलता है, जो हिन्दी में न होकर, संस्कृत में है और,

वैष्णवों की पद्धति

उसके अनन्तर, पन्द्रहवीं व सोलहवीं विक्रम-शताब्दियों में, प्रायः उसी आदर्श पर, मैथिली में विद्यापति, गुजराती में नरसी मेहता तथा बँगला में चंडीदास द्वारा, की गई रचनाएँ भी पायी जाती हैं। मीराँबाई के पदों की रचना अधिकतर इस दूसरी पद्धति पर ही हुई है और इसी का अनुसरण उनके दीर्घ वा अल्पकालीन समसामयिक (अथवा परवर्त्ती भी) भक्त सूरदास, हितहरिवंश, गदाधर भट्ट, नन्द दास, कृष्णदास, कुम्भनदास, चतुर्भुजदास व हरिव्यास, आदि ने भी किया है। इसके अनुसार प्रत्येक पद का विषय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के नाम, रूप, लीला या धाम का कुछ न कुछ वर्णन हुआ करता है और कभी-कभी उसमें कवि द्वारा प्रदर्शित कतिपय भक्तिपूर्ण मनोभावों का भी समावेश रहा करता है। कवि अपने इष्टदेव के सम्बन्ध में नयी-नयी कल्पनाएँ किया करता है और अपनी रचनाओं द्वारा उक्त विषयों में से किसी न किसी का भावपूर्ण उल्लेख, भिन्न-भिन्न शब्दों में (किन्तु प्रायः एक ही प्रणाली के अनुसार), बार-बार करता हुआ भी नहीं अघाता। उक्त मनोभाव भी अधिकतर प्रार्थना वा विनय के ही साधनों द्वारा व्यक्त हुए रहते हैं जिससे (एक प्रकार के श्रद्धा-जनित द्वैतभाव की बाधा आ जाने से) उनका पूर्ण रूप से स्पष्टीकरण हुआ नहीं दीखता। महिमामय वर्णनों के सामने उक्त व्यक्तिगत मनोभाव प्रायः दब से जाते हैं।

(२) पदावली का विषय—मीराबाई की पदावली में उक्त चारों बातों का न्यूनाधिक समावेश है, किन्तु वे, मुख्य न होकर, प्रायः गौण बन कर ही आयी हैं।

संक्षिप्त विवरण

पदावली के पदों का मुख्य विषय उनकी रचयित्री के आभ्यान्तरिक भावों का पूर्ण प्रकाशन ही जान पड़ता है। इस विषय के पद उसके अंतर्गत प्रचुरमात्रा में विद्यमान हैं और, इसी कारण प्रायः सारी पदावली में मीराँबाई के व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट है। ऐसे पदों में हमें उनका अपने इष्टदेव परम सुन्दर मदन मोहन

की 'छवि' की ओर सहसा आकृष्ट हो जाना, उसकी प्रत्येक शारीरिक चेष्टा को
बार-बार निहारते रहने के लिए आतुर होना और, इस प्रयत्न में निरंतर लगे
रहने के कारण, प्रेम की मादकता का उनके भीतर उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाना,
उनकी विविध अभिलाषाएँ करना, व्रत ठान लेना, चिन्तन करते-करते अपने
सारे जीवन का तद्वत् कार्य-क्रम निश्चित कर उसमें प्रवृत्त तक हो जाना, और
स्वजनों से तद्विषयक मतभेद उपस्थित हो जाने पर उनकी एक न सुनना, बल्कि
उनके द्वारा दिये गये दंडों को भी सहर्ष सहन कर लेना और निरन्तर अपने
निश्चय पर अटल रहते हुए गृह त्याग तक कर देना लक्षित होता है। इसके
सिवाय तदनन्तर प्रियतम से वियुक्त हो जाने का अनुभव अपनी अनेक प्रकार की
शारीरिक व मानसिक यातनाओं के वर्णन द्वारा प्रदर्शित किया गया है और
साथ ही, अपनी दशा की ओर उसका ध्यान आकृष्ट कराकर आत्मसमर्पण द्वारा
उसे पाने का उद्योग भी दर्शाया गया है। फिर तो कवि के हृदय में कुछ-कुछ
आशा का संचार होने लगता है। अन्त में उस अभीष्ट मिलन के अनुभव का
भी दिग्दर्शन है जिसके लिए उक्त सारी चेष्टाओं का उपक्रम था। इन पदों के
अतिरिक्त पदावली में हमें कुछ ऐसी रचनाएँ भी मिलती हैं जिनमें कवि ने
अपने सहायक सद्गुरु के प्रति श्रद्धा के उद्गार प्रदर्शित किये हैं और शेष पदों
में या तो उक्त चारों विषयों में से कुछ का वर्णन है अथवा विनय वा उपदेश है
जिनके साथ-साथ भी कवि के निजी अनुभव की छाप हमें सर्वत्र देखने को
मिलती है।

मीराँबाई की पदावली का विषय, वास्तव में, उसकी रचयित्री के व्यक्तिग
जीवन की विशेषताओं का प्रतिबिम्ब है। हम देख चुके हैं कि शैशव-काल से ही स
मीराँ के हृदय-पटल पर श्री गिरधरलाल के प्रति आत्मीयता की भावना अंकि
होने लगी थी, जो उनकी उन्हें पतिरूप में वरण करने अथवा उनकी स्वम
परिणत होने तक की, कल्पनाओं द्वारा क्रमशः दृढ़तर होती

एकरसता

गयी। कुंवर भोजराज का वास्तविक पाणिग्रहण भी आ
विभाजित न कर सका और न उसमें कोई बाधा डाल सके
उसे कौटुम्बिक कलह अथवा राजदंड का भय भी नहीं दूर कर सके। मीरां

प्रकार किसी निश्चय मार्ग से आगे बढ़ती हुई निर्झरिणी की धारा निकट के अन्य मार्गों की उपेक्षा करती हुई सामने चट्टानों के प्रतिकूल पड़ने पर भी नहीं रुकती, बल्कि अधिक विस्तृत होकर चल निकलती है, उसी प्रकार मीराँ की प्रवृत्ति भी सदा अधिक से अधिक व्यापक बन कर ही अग्रसर होती गई। वह इधर उधर तनिक भी नहीं मुड़ी और न उसने अपने ऊपर कोई दूसरा रंग ही चढ़ने दिया। मीराँबाई के जीवन भर में केवल एक ही भाव है, एक ही रस है और एक ही रंग है और उसकी स्पष्ट छाया उनकी पदावली में हमें सर्वत्र दीख पड़ती है। उसके अतिरिक्त मीराँ कुछ नहीं जानतीं, समझतीं वा जानना-समझना ही चाहती हैं। उसी से उनकी सारी अन्तरात्मा व्याप्त है और उसी को आत्म-प्रदर्शन द्वारा प्रकट करने की चेष्टा में वे पद-रचना करने की ओर स्वभावतः प्रवृत्त हो जाती हैं। मीराँबाई के हृदय पर, उनके जीवन भर एक मधुर भावना की लहरें हिलोर मारती रहीं—वे सदा समझती रहीं कि मैं श्री गिरधरलाल की 'अपनी' हूँ और उनके द्वारा अवश्य अपनायी जाऊँगी।

आधार स्वरूप सिद्धांत—मीराँबाई के जीवन पर एक सरसरी दृष्टि डालने पर हमें विदित हो जायगा कि उसकी घटनाओं के भीतर दो प्रकार की स्पष्ट धाराएँ प्रायः निरन्तर प्रवाहित होती रहीं विषाद व अनुराग जिनमें एक का रूप विषादमय और दूसरी का अनुरागमय था और दोनों ने उनके मानस पटल पर दो भिन्न-भिन्न, किन्तु वास्तव में एक दूसरे से मिली हुई निश्चित रेखाओं की सृष्टि की। हम ऊपर देख चुके हैं कि बहुत थोड़ी अवस्था में ही मीराँबाई को अपनी माता का वियोग सहना पड़ा था और तब से उनके पितामह, पति, पिता, श्वसुर एवं चचा का भी एक दूसरे के अनन्तर देहान्त होता गया और अपना पारिवारिक जीवन व्यतीत करते समय इस प्रकार उनके हृदय पर एक न एक ठेस बराबर लगती रही गयी। इसके सिवाय, यदि एक ओर बाहर से इसी बीच में मेवाड़ पर बाबर एवं बहादुरशाह जैसे प्रबल शत्रुओं के एक से अधिक आक्रमण हुए और कुछ काल के लिए चित्तौड़ का दुर्ग भी दूसरे के हाथ लग गया तो, दूसरी ओर मेवाड़ के भीतर भी गृह-कलह की कमी नहीं रही। इसी प्रकार मेड़ता

और जोधपुर के बीच भी प्रायः इसी समय मनमुटाव के कारण युद्ध हुए और राव जयमल को अपने राज्य से हाथ धोना पड़ा। ये सब बातें मीराँबाई के हृदय में विरक्त के भाव भरने के लिए पर्याप्त थीं। हम इसी प्रकार यह भी जानते हैं कि श्री गिरधरलाल की मूर्ति ने मीराँबाई को उनकी बाल्यावस्था में ही किस प्रकार प्रभावित कर दिया था और किस प्रकार उसके मूलस्वरूप श्रीकृष्णचन्द्र के प्रति अधिकाधिक आकृष्ट होने में, उन्हें भिन्न-भिन्न घटनाओं ने सहायता प्रदान की थी। अपने जीवन काल के आरम्भ से लेकर उसके अवसान तक सदा वे उनमें आसक्त रहीं और अन्त में जन श्रुतियों के अनुसार, श्रीरणछोड़जी की मूर्ति में वे विलीन तक हो गईं। अपने इष्टदेव के प्रति उनका अनुराग प्रतिकूल घटनाओं के होते हुए भी सदा दृढ़ बना रहा।

मीराँबाई के सिद्धान्त, इसी कारण, जगत् के प्रति विरक्तिमय वा श्रीकृष्ण के प्रति अनुरक्तिमय दीख पड़ते हैं और इन दोनों प्रकार की भावनाओं के प्रभाव उनकी रचनाओं पर हमें सर्वत्र लक्षित होते हैं। उनके

उनका प्रभाव

विचारानुसार सारा दृश्यमान संसार उठ जाने वाला व अनित्य है और जिस शरीर को पाकर हम अभिमान प्रदर्शन करते हैं वह भी अन्त को 'माटी' में ही मिल जाने वाला है। मनुष्य के सभी दैनिक व्यवहार 'चहर की बाजी' अर्थात् चिड़ियों के उस खेल के समान हैं जो सन्ध्याकाल के आते ही, उनके बसेरे पर चले जाने के कारण, बन्द हो जाया करता है। इस कारण उनका कहना है कि, इस आवागवन से मुक्ति पाने के लिए, केवल तीर्थ-व्रत करना, काशी 'करवत' लेना अथवा भगवा पहन कर अपना घर बार छोड़ संन्यासी हो जाना मात्र बेकार है। यहाँ तो योगियों को भी, अपनी साधना के निष्फल हो जाने पर, 'उलट' अर्थात् लौट कर पुनर्जन्म धारण करना पड़ता है (पद १६४)। वे संसार की इस दुर्दशा का अनुभव कर अत्यन्त दुःखित हैं—वे रो तक पड़ती हैं (पद १५)—और चाहती हैं कि, उन्हीं की भाँति, सभी इस कटु सत्य से परिचित हो कर अपने-अपने बचाव के लिए प्रयत्न करने लग जायँ। मीराँबाई के विचारानुसार सब को चाहिए कि, अपनी निर्बलता एवम् विवशता पर ध्यान

देते हुए, अपने को भगवान् के चरणों में समर्पित कर दें और सच्चा भक्ति-पूर्वक उनका भजन करते रहें। उक्त भजन के न होने से ही मनुष्य-जीवन में फीकापन आ जाया करता है (पद १६३) और वह भारस्वरूप बन जाता है। भगवान् ही एकमात्र नित्य वस्तु हैं और पुनर्जन्म व कर्मबन्धन को, प्रसन्न होकर वे ही काट सकते हैं; उनके अतिरिक्त अपने लिए आश्रय या आधार, मीराँ के विचार से, तीनों लोकों में कोई दूसरा कोई नहीं हो सकता (पद ४)।

मीराँबाई ने उक्त 'नित्य वस्तु' रूपी भगवान् को 'हरि अविनासी' की संज्ञा दी है और उसे अपने हृदय में निवास करने वाला भी बतलाया है। वे कहती हैं कि वह, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, पवन, पानी वा आकाश तक के नष्ट हो जाने पर भी, सदा 'अटल' रहने वाला है (पद २०), इस कारण, स्थायी प्रेम उसी के साथ हो सकता है और वही सच्चा 'बालवा' व अपना पतिदेव भी कहलाने योग्य है (पद २५)। वह सहज ही प्राप्य है (पद ३६), किन्तु उससे एक बार भी मिलन हो जाने पर, फिर उसके साथ वियोग की भावना तक असह्य हो जाती है (पद ४८)। मीराँबाई उसी अविनाशी की 'पोल' या द्वार पर खड़ी होकर पुकार करती हैं (पद २०१)। तो भी उनके अनुसार, वह राम 'अगम' एवं 'अतीत' हैं। वह 'आदि अनादी साहब' है जिसकी 'सेज गगन मंडल' पर बिछी रहा करती है (पद ७२) अतएव उन्होंने उसकी प्राप्ति के साधन का नाम 'ग्यानगुझ गाँसी' (पद २२) 'ग्यान की गुटकी' (पद २४) वा 'ग्यान' की 'गली' से होकर गुजरना दिया है (पद १२०)। उन्होंने शब्द व भेद लखा दिया (पद १५०) जिससे उनके 'भरम' की 'किवारी' खुल गयी (पद १५८) और 'जनम-जनम का सोया मनुआ' यकायक जग उठा (पद २६)। उसके 'रूम-रूम' या प्रत्येक अंग में चेतना आ गयी (पद १५६) और उसने 'अमर रस' का 'पियाला' भी पी लिया (पद ४४) जिससे उसे आवागमन से सदा के लिए छुटकारा मिल गया (पद २४)। मीराँबाई, इसी कारण, अपने साहब को 'त्रिकुटी महल' में बने हुए झरोखे से झाँकी लगाकर देखने, 'सुन्न महल' में सुरत

इष्ट देव-निर्गुण रूप व साधना

जमाने वा 'सुख की सेज' बिछाने के लिए (पद १२) आतुर जान पड़ती हैं। उनका मन 'सुरत' की 'असमानी सैल' में रम गया है (पद १५१) और वे, गुरु ज्ञान द्वारा अपने तन का कपड़ा रँग कर तथा मन की मुद्रा पहन कर, 'निरंजण' कहे जाने वाले के ही ध्यान में निरत रहना चाहती हैं (पद १५२)। वे कभी-कभी 'सुरत' वा 'निरत' का 'दिवला' सँजोने के लिए 'मनसा' की 'बाती' बनाती हैं और 'प्रेम हटी' से तेल मँगा कर उसे 'दिनराती' जगते रहने योग्य कर देती हैं (पद २०) तो दूसरी बार, 'यातन' को ही 'दियना' बना उसमें, 'मनसा' की बाती डाल देती हैं और, प्रेम का तेल उसमें भर कर, 'दिन राती' जलाया करती हैं तथा, 'ज्ञान' की 'पाटी' 'रचकर' वा 'मति' की 'माँग सँवार' कर, बहुरंग की बिछी सेज पर, अपने 'साँवरो' का स्वागत करने के लिए 'पंथ जोहती' वा प्रतीक्षा किया करती हैं (पद १२६)। उन्हें 'सील वरत' (शीलव्रत) के सामने दूसरा कोई भी श्रृङ्गार पसन्द नहीं (पद २३) अतएव वे संसार की आशा त्याग कर 'हरी हितु' से 'हेत' करने और, इस प्रकार, 'वैराग' साधने का उपदेश देती हैं (पद१६२)।

मीराँबाई-द्वारा किये गए इष्टदेव के केवल उक्त निर्गुणवत् निरूपण तथा, उसकी प्राप्ति के लिए प्रयोग में आने वाली, केवल उक्त यौगिक वा मानसिक साधनाओं के आधार पर कुछ लोग उन्हें संतमत की अनुयायिनी मान लेना चाहते हैं। किन्तु ऐसा करना उचित नहीं जान पड़ता। मीराँ ने अपने अनेक पदों में उक्त 'हरि अविनासी, को ही एक परम ऐश्वर्यशाली एवं लीलामय भगवान् के सगुण रूप में भी अंकित किया है। वे कई पदों (जैसे, पद २, ३, ६, ७, ८, ९, १०, १३, १५ आदि) द्वारा उनके सुन्दर रूप एवं विविध मनोहारिणी चेष्टाओं का वर्णन करती हैं और बहुत से पदों (जैसे, पद १, ६३, १३३, १३५ आदि) में उनकी भिन्न भिन्न लीलाओं के कतिपय संक्षिप्त विवरण भी देती हैं। उन्होंने उसके लिए कई स्थलों पर 'भक्त वछल' (पद ३), 'दीनानाथ' (पद ११९), 'दयाल' (पद १३०), 'कृपानिधान' (पद १३२), 'अघ

इष्टदेव-सगुणरूप व साधना

उधारण' 'सबजग तारण' 'कष्टनिवारण' 'विपति विदारण' (पद १३५) 'तरण आयाँ कूँ तारने वाला' (पद १६८), वा 'पतितपावन' (पद १८७), आदि के प्रयोग किये हैं और, उसके अनेक उपकारों के उल्लेख करते हुए, उससे अपने कल्याण के लिए प्राथंना भी की हैं। उन्होंने उसे नारायण (पद ३६) और 'चतुरभुज' (पद ५२) ही नहीं बल्कि, स्पष्ट शब्दों में गिरवरधारी (पद २) 'नंदनँदन' (पद ३) 'जसुमति को लाल' (पद ६) 'जदुनाथ' (पद ६) व 'बलवीर' (पद १२३) कह कर, उक्त सगुण भगवान् के भी कृष्णा-वतार को सम्बोधित किया है। इसके सिवाय उनके द्वारा प्रदर्शित साधना-पद्धति के अन्तर्गत हम उनके पदों में, सगुणरूप के प्रति की जाने वाली नवधा भक्ति नाम की उपासना के भी अनेक उदाहरण पाते हैं। वे अपने इष्टदेव के गुणों को सत्संग की सहायता से सदा श्रवण किया करती हैं; वे उनके सौन्दर्य-वर्णन व गुणगान करने (पद २२, २४, ३८, व ४५) पर सदा दृढ़ रहा करती हैं और उसे रिझाने के लिए वे लोकलज्जा का परित्याग कर, 'पग में घुँघरू बाँध चुटकी दे देकर साधुओं के सामने, नाचने तक लग जाती हैं (पद ३६, ३४ आदि)। इस कीर्त्तन के कारण लोग उन्हें 'बावरी' 'मदमाती' वा 'कुलनासी' तक कह डालते हैं, किन्तु वे इसकी परवाह नहीं करतीं (पद ३३, ४०, आदि)। उनका मन गिरधरलाल में लगा है (पद ६) और अपने चित्त पर 'चढ़ी' व उर में 'अड़ी' हुई उस 'माधुरीमूरत (पद ११) के ही 'उमरण' व 'सुमरण' में वे सदा व्यस्त रहा करती हैं (पद १८)। वे उस हरि के 'सुभग, सीतल, कँवल कोमल त्रिविध ज्वाला-हरण चरणों' का स्पर्श करना (पद १) तथा उनमें लिपट रहना तक चाहती हैं (पद ८, १८, आदि)। वे 'अनदेव' (अन्य-देवताओं) की पूजा से मुँह मोड़ कर अपने 'परमसनेही' 'गोविन्दो' के ही अर्चन में संलग्न हैं (पद २६ (और उसी का 'चरणामृत' लेती व दर्शन करती हैं (पद ३४)। वे उन्हें प्रणाम वा वंदन करती हैं (पद २) और उनके 'चरण कँवल पै सीर' भी रखती हैं (पद ६३ व १६४) तथा 'चेरी' होकर उनके 'पाँयन' तक पड़ जाती हैं (पद १४६)। वे उनके 'ठाकुर' (पद ६७) और 'प्रतिपाल'

(पद ६५) हैं और ये उनकी 'जनम-जनम की दासी' (पद १०१ व १०४) और 'बिनमोल चेरी' हैं (पद ६२)। सख्यभाव के अनुसार इसी प्रकार, वे 'रैयादिना वाके संगि' खेला करती हैं (पद १७) और उनके साथ कभी-कभी 'फिरमिट' खेलने भी जाती हैं (पद २०)। वह उनका 'प्रेम पियारा मीत' (पद ६१), 'पूरब जनम का साथी' (पद १२४) 'साँकड़ारो साथी' (पद १८६) एवं 'जनम-मरन को' भी साथी है जिसे 'देख्यां बिना', उन्हें कल नहीं पड़ती (पद १८६)। मीराँ के लिए 'हरि' की 'चितवन' ही आशारूप है और उनके लिए वे अपने प्राणों तक का 'अँकोर' देने को प्रस्तुत हैं (पद ५)। 'मरण-जीवन' दोनों उन्हीं के हाथ है (पद ७६)। अतएव जो भी उन्हें वार दिया जाय वही 'थोरा' होगा (पद १४५)। उन्होंने 'उनके' प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण कर दिया है जिस कारण वे जो पहनावें उसी को पहनती हैं, जो दें उसी को खाती हैं, जहाँ बैठावें वहीं बैठती हैं तथा उनके बेचने पर बिक जाने के लिए भी तैयार हैं (पद १७)। इष्टदेव के प्रति आत्म निवेदन के भाव इनसे बढ़ कर और क्या होंगे ?

सामञ्जस्य

मीराँबाई की दृष्टि में उनके इष्टदेव के निर्गुण व सगुण रूपों में, वस्तुतः, कोई भेद नहीं है, इस कारण, जहाँ वे उससे "तुम बिच हम बिच अन्तर नाहीं जैसे सूरजघामा" कहकर उसके साथ अपना तादात्म्य प्रकट करती हैं वहीं उसे, अलग रहने वाले की भाँति, अपने पास आने के लिए, निमंत्रित भी करती हैं (पद ११५)। तथा इसी प्रकार एक ही पद में जहाँ वे उसे "तुम प्रभु पूरन ब्रह्म हो; पूरन पद दीजै हो" कहकर सम्बोधित करती हैं वहीं उसे, एक पंक्ति पहले ही, "तुम तजिऔर भतार को, मन में नहिं आनों हो" भी कहती हुई पायी जाती हैं (पद १२६)। मीराँबाई को उस 'प्रियतम' से वास्तविक रूप का आध्यात्मिक रहस्य अवश्य ज्ञात है, किन्तु उनके प्रेम की तीव्र भावना उसे अमूर्त्त मानकर अपनाने नहीं देती। उनके स्त्रियोचित हृदय में निराकार के लिए, स्वभावतः, कोई स्थान नहीं। वे उसके प्रतीक स्वरूप भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की विश्वविमोहिनी मूर्ति को सदा अपने सामने रखती हैं और उसी के सौंदर्य का आभास उन्हें सर्वत्र दीख पड़ता है।

उस 'असा' अर्थात् ऐसे अनुपम 'पिया' के प्रति तन-मन-धन सभी कुछ अर्पित कर उसे वे अपने हृदय में रख लेना चाहती हैं। उसे देख देख कर वे नेत्रों द्वारा प्रेम रस पीना चाहती हैं क्योंकि उसका मुख मंडल देखते रहने पर ही उनका सारा जीवन निर्भर है। वे उसे, जैसे भी हो, वैसे रिझाया चाहती हैं क्योंकि वह 'बड़भागन' रीझा करता है (पद १३)। उन्होंने उससे रसीली भगति' की याचना करली है और 'सांची भगत रूप' वाली हो गई हैं (पद १६)। उनके भगवान् की परिभाषा कदाचित् वही हैं जो 'श्रीमद्भागवत' के निम्नलिखित प्रसिद्ध श्लोक द्वारा प्रकट होती है—जैसे,

वदन्ति यत्तत्त्वविदस्तत्त्वं, यद्ज्ञानमव्ययम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति, भगवानिति शब्द्यते ॥ (१-२-११)।

अर्थात् जिस वस्तु को तत्त्वज्ञानी लोग तत्त्व, अव्यय, ज्ञान, ब्रह्म व परमात्मा नाम से अभिहित करते हैं उसी को भगवान् भी कहा जाता है। उनका इष्टदेव, इस प्रकार, निर्गुण होता हुआ भी 'भगवान्' है।

रहस्यवाद

मीराँबाई द्वारा अपनायी गई साधना इसी कारण रहस्यमयी भावनाओं से भी ओतप्रोत है और उनके अनेक पदों में हमें रहस्यवाद की भी कुछ झलक दिखलाई पड़ जाती है। वे मूर्तिमान् सौंदर्य श्री गिरधरलाल के उक्त अनुपम व अलौकिक 'पिया' रूप में अपने परोक्ष 'साहब' की अपरोक्ष अनुभूति किया करती हैं और उनके साथ 'तुम मोरे हूँ तोरे' (पद ३४) अथवा 'तुम बिच हम बिच अन्तर नाहीं' (पद ११९) आदि द्वारा तादात्म्य स्थापित कर सदा आनन्दविभोर रहा करती हैं। उनके 'पिया' उनसे, कदाचित्, कभी भी अलग नहीं; वे सदा उनके 'हीय बसत है' (पद २०)। उनके हृदय में अपने इष्टदेव के प्रति एक विचित्र भावना है जो, कुछ स्पष्ट विशेषताओं के कारण धार्मिक दीख पड़ती हुई भी, नितांत व्यक्तिगत है। उनका 'हरि अविनासी' 'सच्चा बालमा' है, अतएव, उसे भगवान् कह कर, उससे भक्ति की याचना करती हुई भी, वे, वास्तव में, यही लालसा रखती हैं कि कभी न कभी अवश्य ही उस 'पिय के पलँगा' पर 'पौंढ' कर 'हरि रंग' में पूर्णतः रँग जायँगी (पद १४)।

उसकी 'चाकरी' में भी वे सदा उसके 'दरसण' की ही भूखी हैं; उन्हें 'खरची' के लिए केवल उसका 'सुमिरण' मात्र चाहिए और 'जागीरी' के लिए उसकी 'भावभगति' चाहिए; और ये तीनों ही 'बातों' उनके अनुसार एक से एक 'सरसी' हैं (पद १५४)। उन्होंने उसके लिए अपना सारा शरीर जुग जुग के लिए 'सदकै' वा न्यौछावर कर दिया है। वे, 'जहाँ-जहाँ' अपने 'राम' को ही देखती हुई, उसकी सेवा करती रहती हैं (पद ४४) और 'जहाँ जहाँ' 'धरणी पर' पाँव रखती हैं वहाँ मानों, उसके प्रेम में, सदा नृत्य ही किया करती हैं (पद १८)। वे गिरधर के रंग में सदा 'राती' रहती हैं। वे पचरँग का 'चोला' व पाँच तत्वों द्वारा निर्मित शरीर धारण कर सदा 'झिरमिट' व झुरमुट मारने का खेल (जिसमें सारा शरीर इस प्रकार ढक लेते हैं जिससे जल्दी पहचान न हो सके) खेला करती थीं कि अकस्मात् उस 'साँवरो' वा प्रियतम से भेंट हो गयी और, उसे अपना पूर्व परिचित जान, वे उसके साथ, 'गाती' वा ओढ़ी हुई चादर हटाकर, शीघ्र मिल गयीं (उनके गले लग गयीं)। तात्पर्य यह कि कर्मानुसार प्राप्त मानव शरीर का आवरण धारण किये हुए जीवात्मा रूप से वे अपना जीवनयापन कर रही थीं कि किसी समय उन्हें, इस दैनिक व्यवहार के अन्तर्गत ही, परमात्मा के साथ अपने तदात्म्य का बोध हो गया और वे, उक्त काल्पनिक आवरण की भावना का परित्याग कर उसके साथ एक रूप हो गयीं। तब से उन्हें 'सब घट' में 'आतमा' प्रत्यक्ष होने लगा (पद १५८)।

(४) माधुर्य भाव—मीराँबाई की पदावली में, इसी कारण, सर्वत्र हमें भक्तिरस की उस धारा का ही प्रभाव लक्षित होता है जिसे 'माधुर्य भाव' अथवा 'मधुररस' कहा करते हैं। मधुर रस भक्ति की अन्य धाराओं, जैसे शांत, दास्य, सख्य वा वात्सल्य, से भिन्न है। 'शांत' के अनुसार भक्त, भगवान के सगुण रूप का अनुभव कर उनका स्वरूप चिंतन किया करता है और 'दास्य' के अनुसार उनके ऐश्वर्य-चिन्तन में मग्न रह कर उनका गौरव गान करता रहता है तथा, इसी प्रकार, 'सख्य' के अनुसार वह भगवान् को, किशोरावस्था का सखा मान, उनसे न्यूनाधिक अनियंत्रित प्रेम करने लगता है और 'वात्सल्य'

परिचय या गोपी-भाव

के अनुसार उनके बालरूप पर ही अधिक मुग्ध होकर, उनकी बाललीला का रसास्वादन किया करता है। किन्तु 'मधुररस' के अनुसार भक्त उनको अपने पति वा सर्वस्व के रूप में देखता है और, इसी कारण, उनके साथ उसका सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्टता का हो जाता है। कहते हैं कि जो 'आर्त्ति' व गूढ़ प्रेम एक युवती के हृदय में, किसी युवक को देखकर, जाग उठता है वह अन्यत्र दुर्लभ है; इसी कारण भक्त लोग श्री भगवान् कृष्ण को, स्थिर चित्त के साथ, पत्नी-भाव से ही नित्य भजा करते हैं।"[1] स्त्री पुरुष की ऐसी ही आसक्ति के सम्बन्ध में शृंगार रस का भी प्रादुर्भाव होता है, अतएव, मधुररस के भी भाव, विभाव, अनुभावादि प्रायः उसी प्रकार के होते हैं जैसे शृङ्गाररस के। किन्तु इन दोनों में महान् अन्तर भी पाया जाता है। शृङ्गाररस का विषय, सांसारिक होने से, जड़ मूर्त्तिरूप है, किन्तु मधुररस का विषय अलौकिक एवं स्वयं भगवान् स्वरूप है, अतएव, शृङ्गाररस के स्थायी भाव रति का सम्बन्ध यदि स्थूल या लिंग शरीर से है तो मधुररस, एक प्रकार से, स्वयं आत्मा का ही धर्म है।[2] मधुररस का अनुभव, शृङ्गाररस के समान होने पर भी, वस्तुतः, इंद्रियातीत है। शृङ्गाररस मधुररस में परिणत हो सकता है यदि भक्ति की स्थिति उस प्रकार की हो जाय जैसे ब्रज की गोपियों की थी। ब्रज की गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम पराकाष्ठा को पहुँच गया था। वे उनकी स्वकीया वा विवाहिता भार्याएँ नहीं थीं। वे परकीया थीं और, इसी कारण, अपने प्रेम के स्वाभाविक स्फुरण में उन्हें अनेक प्रकार की बाधाओं का सामना भी करना पड़ता था। किन्तु, जैसा नियम है, इन बातों में बाधाएँ जितने संकट के सामान खड़ा करती हैं, प्रेम की गति उतनी ही तीव्र होती जाती है और अंत में, वह एक विचित्र मधुर पागलपन का रूप धारण कर लेता है जिसे अधिक उपयुक्त शब्द

---

१ 'गोविन्ददासेर कड़चा', पृ० १०।

२ श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी; 'मधुरस की साधना', ('कल्याण'—साधनांक पृष्ठ १७५)

में हम 'दीवानापन' कह सकते हैं। इस प्रेम का अवसान इन्द्रियों द्वारा उपभोग, शरीरादि मात्र की आसक्ति वा स्वार्थ लाभ में ही नहीं हो जाता। यह नितान्त नित्य, एकरस व स्वार्थ-रहित, अतएव 'कामगंध हीन' हुआ करता है। ऐसे प्रेम में कामवासना को कोई भी स्थान नहीं; 'कामगंध हीन' होने पर ही उस 'गोपी-भाव' की प्राप्ति होती है।[1]

मीराँबाई का आदर्श ब्रज की उक्त गोपियाँ थीं और उनका आदर्श-प्रेम भी उक्त 'गोपी-भाव' था। प्रसिद्ध है कि वे स्वयम् अपने को ललिता नाम की किसी गोपी का अवतार भी समझा करती थीं और अपने

साधना का रूप

प्रियतम श्री गिरधरलाल के साथ कदाचित् इसी पूर्ण सम्बन्ध का परिचय उन्होंने अपने पदों में आये हुए अनेक उल्लेखों (जैसे, मेरी उनकी प्रीत पुराणी,—पद १७; 'पूरब जनम को कौल'—पद १९; 'पूरब जनम की प्रीत पुराणी'—पद ४६, 'पूर्व जनम की प्रीत हमारी'—पद ५४; 'जनम-जनम की चेली'—पद ८०; 'जनम-जनम की दासी'—पद १०१; 'पूरब जनम का साथी'—पद १२४; अथवा 'गोकुल अहीरणी'—पद १८७) द्वारा किया है। कई स्थलों (जैसे, 'गिरधर जी भरतार'—पद ३०; 'म्हांरो भो-भो रो भरतार'—पद ४७; अथवा 'बांह गहे की लाज'—पद १०९) पर वे श्री गिरधरलाल को स्वकीया की भाँति अपना पति समझती हुई भी दीख पड़ती हैं, किन्तु कदाचित् विपरीत परिस्थिति के कारण उनके अनेक उद्गार परकीया के जैसे ही प्रकट हुए समझ पड़ते हैं। वे अपने प्रियतम को सदा 'प्रिया', 'पिव', 'उण', 'धणी', सैयां', 'भरतार', 'भवनपति', 'साजन' अथवा 'वर' तक कह कर सम्बोधित करती हैं और एकाध पदों में उनके 'सौतियांडाह' जैसे भाव का भी कुछ संकेत मिलता है, किन्तु तो भी उन्हें सांसारिक दृष्टि से, एक परोक्ष व अमूर्त्त अथवा प्रत्यक्ष व मूर्त्तिमान् होने पर भी, निर्जीव दीख पड़ने वाले 'व्यक्ति' को नाच गाकर रिझाते समय लोक-लज्जादि के संकोच में बाधा पहुँचाने लगते हैं। वे, अपनी दृष्टि में, कदाचित

---

[1] 'काम गंधहीन हइले गोपी भाव पाय'-विवर्त्त विलास, पृ० ८६।

स्वकीया ही हैं, किन्तु लोक-दृष्टि में ऐसे सम्बन्ध के असम्भव समझे जाने के कारण, वे एक परकीया के ही रूप में लक्षित होती हैं। उनके स्वजन उक्त वास्तविक रहस्य को समझ पाने में असमर्थ हैं और वे उनकी सचाई में सन्देह तक करने लग जाते हैं। परिणामस्वरूप उनके, वास्तव में 'प्रेमदिवाणी' मात्र होने पर भी लोग उन्हें 'कुलनासी' आदि कहने से भी नहीं चूकते और उनकी 'हाँसी' तक उड़ाने में प्रवृत्त हो जाते हैं। परन्तु मीराँबाई को ऐसी 'बदनामी' सदा 'मीठी' ही लगा करती है और वे लाख बुरी-भली' कही जाने पर भी, अपनी 'अनूठी चाल' चलने पर ही दृढ़ रहती हैं। वे सदा अपनी 'रामखुमारी' में ही 'मस्त डोलती' फिरती रह जाती हैं।

उक्त माधुर्यभाव वा परमभाव की पदरचना करते समय मीराँबाई को, इसी कारण, पुरुष-भक्त-कवियों की भाँति, कृष्ण के प्रति उनकी प्रेमिका ब्रज सुन्दरियों द्वारा प्रदर्शित विविध भावों का 'वर्णन' करना नहीं है और न, अधिक से अधिक अपने ऊपर स्त्री भाव का कोई काल्पनिक आरोप कर तद्वत चेष्टाओं का 'प्रदर्शन' ही करना है। वे स्वयम् स्त्री हैं और अपने इष्टदेव श्री गिरधरलाल को पतिरूप में स्वीकार भी कर चुकी हैं, अतएव, उन्हें अपने को किसी अवस्था-विशेष में रखने का प्रयत्न नहीं करना है। वे माधुर्यभाव की सभी स्त्री-सुलभ बातें यों हीं अनुभव कर लेती तथा उन्हें तदनुकूल शब्दावली में, स्वाभाविक रूप से, व्यक्त कर देती हैं।

विवरण

उनका प्रेम श्री गिरधरलाल के अनुपम सौन्दर्य का अनुभव करके आरम्भ होता है, प्रेमासक्ति बढ़ती है और नयी-नयी अभिलाषायें उनके हृदय में, क्रमशः घर करने लग जाती हैं। फिर तो इस प्रकार के भावों का रंग अधिकाधिक प्रगाढ़ ही बनता जाता है और एक साधारण-सा रूपराग आगे पूर्वराग में परिणत हो जाता है। प्रेमानुभव की यह पहली दशा है, किन्तु 'सतगुरु' द्वारा प्रभावित अतएव, प्रायः आरम्भ से ही आध्यात्मिक होने के कारण, यह साथ ही, विरह-गर्भित सा भी दीख पड़ती है। इसकी जड़ गहराई तक पहुँच चुकी है। आगे की दूसरी दशा में यही अनुभूति, अज्ञान-जनित असावधानता के कारण (देखो पद ४८, ४९), स्फुट विरहानुभव बनकर आती है और,

देश, काल वा परिस्थिति द्वारा उत्पन्न भिन्न-भिन्न यातनाओं में प्रकट होकर, उनकी अन्तरात्मा को स्वर्णवत् तपाकर और भी विशुद्ध कर देती है। अपनी तीसरी वा अन्तिम दशा में पहुँच कर यह उक्त भाव भी पूर्णता को तब प्राप्त होता है जब आत्म समर्पण पूर्वक अभीष्ट मिलन का अनुभव उन्हें सर्वतोभावेन होने लगता है।

मीराँबाई का उक्त माधुर्य भाव, परमभाव वा गोपीभाव, निरा उच्छृंखल आवेश-प्रदर्शन नहीं था। वह, वास्तव में, ज्ञानमूलक एवम् सन्त परम्परानुमोदित निर्गुणोपासना द्वारा मर्यादित भी था, जैसा कि

मर्यादित रूप

हम उनके 'पञ्चरंग चोला' के आवरण में 'झिरमिट' खेलने, 'त्रिकुटी महल' से झाँकी लगाने, 'सुरत' जमाने अथवा 'सुरत निरत का दिवला' सँजोने आदि के प्रयोगों द्वारा पहले ही देख चुके हैं। वे अपने 'प्रिय' के जिस 'पलंग' पर पौढ़ना' चाहती थीं 'वह गँगन मँडल' में बिछी हुई सेज है (पद ७२) और उनका आदर्श प्रदेश वह 'अगम का देस' है जहाँ 'प्रेम का हौज' सदा भरा पूरा रहता है और जहाँ पर 'हंस' अर्थात् जीवात्मा नित्य 'केल्याँ' वा आत्मानुभव के आनन्द में मग्न रहा करता है अथवा जहाँ जाने से काल को भी भय लगता है (पद १९२)। वहाँ तक पहुँचने की 'राह' ऊँची-नीची व पथरीली अर्थात् अत्यन्त दुर्गम है और 'सोच-सोच' कर वा खूब सँभाल कर पैर रखने पर भी उसके 'बार-बार डिग' जाने का अन्देशा बना रहता है, तथा इस विकट एवम् 'झीणों' अर्थात् तंग रास्ते के लम्बे भी होने से, कई बार 'सुरत' वा लगन को, अनेक विघ्न बाधाओं के कारण 'झँकोला' खाना अर्थात् डाँवाडोल भी हो जाना पड़ता है (पद १९३)। परन्तु सद्गुरु की कृपा द्वारा कदाचित् उन्हें सभी साधनाएँ सुगम हो गई थीं। सद्गुरु की सहायता से उन्हें 'पिछाणी' अर्थात् परमात्मा के साथ पूर्ण परिचय-सम्बन्धी भेद की बात यकायक सूझ गई थी और उनका मन 'सुख' में मगन हो गया था (पद १९७)। 'सबद' के 'लखते' व आत्मानुभव के होते ही उनका 'ध्यान' उस 'धुन' में लग गया था (पद १९०) और 'नाम का पियाला' पीते ही उस पर ऐसा रंग चढ़ गया था कि अन्य सभी रंगों अर्थात्

विषयों से सदा के लिए विरक्ति हो गयी थी (पद ६४)। तब से उन्होंने 'सील बरत' अर्थात् शीलव्रत का श्रृङ्गार धारण कर संतोचित मार्ग का आश्रय ले लिया (पद २३) और उनके आदर्श 'सोलह सिणगार', धैर्य, क्षमा, सत्य, सुमति, औदार्य, संतोष, चित्त की उज्वलता, आदि हो गए (पद १६२) जो एक सदाचारी नैतिक जीवन के लिए परमावश्यक गुण हैं। मीराँबाई ने, इसीलिए, अपनी आदर्श 'सुहागण नार' (पद २०१), वासकसज्जा प्रेमिका (पद १२६) व 'वैरागिण' (पद १९२) का भी वर्णन, उक्त भावनाओं के ही अनुसार किया है और, वैसे नियमों की ही पद्धति पर, होली खेलने (पद १९१) वा कीर्तन करने (पद ६२) के रूपक भी बाँधे हैं। अतएव मीराँबाई की प्रेम-साधना में, देश, काल वा अन्य परिस्थितियों के अनुसार, उक्त व्रज-सुन्दरियों के गोपी भाव से बहुत कुछ अन्तर तो था ही, वह, अपने मौलिक सिद्धान्तों एवम् उच्च नैतिक आदर्शों के कारण, उन तांत्रिक साधनाओं से भी नितान्त भिन्न थी जिनके भ्रष्ट परिणामों से व्यथित-हृदय हो कर उससे लोग भ्रमवश साहित्य में अश्लीलता व समाज में कामुकता के प्रचार का भय कर सकते हैं। केवल साहित्यिक व सामाजिक रूढ़ियों के दृष्टिकोण से किसी को हानिकारक दीख पड़ने से ही हम उक्त प्रेमसाधना को मीराँनुमोदित उच्च दार्शनिक व आध्यात्मिक सिद्धान्तों के अनुसार; सहसा दूषित नहीं ठहरा सकते।

(५) काव्यत्व—मीराँबाई हमारे सामने अपने पदों द्वारा, कवियित्री से पहले, एक भक्तिन के रूप में ही प्रकट होती हुई जान पड़ती हैं। उनका सारा जीवन कतिपय निश्चित एवम् अंतर्निविष्ट भावनाओं से परिपूर्ण रहा और उनकी रचनाओं पर उनके व्यक्तित्व की विशेषताओं की गहरी छाप सर्वत्र पड़ती रही। उनके भाव उनके तल्लीन हृदयस्थल से सदा स्वतः प्रसूत से निकल पड़ते रहे; उन्हें अपने कलेवर वा बाह्यरूप की कोई अपेक्षा न थी। अतएव मीराँबाई के पदों पर विचार करते समय, हमारा ध्यान, सर्वप्रथम, उनके विषय की ओर ही आकृष्ट होता है, उनके रूपरंग की ओर नहीं। तो भी, अर्थात् कलापक्ष से कहीं अधिक उनमें भावपक्ष की ही प्रधानता होने पर, भी

भावपक्ष की प्रधानता

इमें उनके पद काव्य के अनेक लक्षणों से संयुक्त भी दिखलाई पड़ते हैं।

उनके पूर्वानुराग में मधुर आकर्षण, स्नेहसिक्त लगाव, अपूर्व उलझन एवं दृढ़ निश्चय के भाव हैं। उनके हृदय में श्री गिरधरलाल के प्रति जो मधुर रति

पूर्वराग

है वही, उनके अनेक पदों में प्रदर्शित विभाव, अनुभावादि द्वारा क्रमशः परिपुष्ट होकर, मधुररस का रूप ग्रहण करती हुई दीख पड़ती है। आलंबन सर्वत्र वही श्री गिरधरलाल हैं जो गिरधर नागर, नंदनँदन, मदनमोहन, गोविंद, हरि, कान्हा, रमैया, जोगिया, सइयाँ व सतगुर, आदि नामों द्वारा भी सम्बोधित किये गए हैं। वे सौंदर्य के निधान व मूर्तिमान् शृंगार हैं। उनके सिर पर चंद्रकलायुक्त 'मोर मुगट' शोभा दे रहा है और टेढ़ी पाग भी रक्खी है जिससे, लरें लटक रही हैं, माथे पर केशर का तिलक है, जिसकी दोनों ओर काली-काली टेढ़ी अलकें दीखती हैं, कानों में कुंडल झलक रहे हैं जिनकी छाया कपोलों पर पड़ती है, नासिका अति सुन्दर है और दाँतों की 'दुति' दाड़िम के समान है, नेत्र लाल लाल व विशाल हैं और उनपर टेढ़ी भवें विचित्र शोभा दे रही हैं। इसी प्रकार ग्रीवा पर तीन रेखायें पड़ी हैं, वक्षः स्थल पर वैजयन्ती की माला है, कटि की करधनी में छोटी-छोटी घूँघरें लगी हैं और पैरों में नूपुर ध्वनि कर रहे हैं। उनकी 'सूरत' साँवली व 'मूरत' मोहनी है और वे, पीताम्बर धारण किये हुए गौओं के साथ कालिंदी के तीर पर 'डोलते' फिरते हैं अथवा 'कदम की छहियाँ' में खड़े होकर मधुर अधरों पर वंशीवादन करते हैं। उनके, उक्त प्रकार से अंग-अंग वा रोम-रोम द्वारा छलके पड़ते हुए, अनन्त सौन्दर्य अथवा टेढ़ी चितवन और 'मंदमुसकान' से प्रभावित हो सुप्त आभ्यंतरिक रति मानो उद्दीप्त हो उठती है और, अनुभावों के रूप में, हम, उन पर बलि-बलि जाने वाली मीराँबाई के 'हरिनाम' के साथ 'पण' लगा जाने, उठते-बैठते 'रामराम' की रट लगाने, 'सीपभरयोपाणी' पीने व 'टाँकभरयो अन्न' खाने, किन्तु तो भी, 'दिन दिन दूनों लाभ' की ही आशा रखने की चर्चा सुनने लगते हैं (पद ४७)। उन्हें सदा 'दरस की भूखी' और प्रियतम के बिना पल भर भी चैन से न रहने वाली पाते हैं। वे, आत्मीयता के आवेश में, कभी-कभी (पद ५६ से ६२ तक में)

उस 'निरमोहिया' वा 'धूतारा जोगी' के प्रति उपालंभ के भाव व्यक्त करती हुई मिलती हैं तो अन्यत्र (पद ४८ से ५५ तक में), उसके साथ मिलन के उपलक्ष में, अपनी चूड़ियाँ फोड़ने, माँग बखेरने, आँखों के काजल धोने, 'चीर' को फाड़ व उसको गले में डालने के लिए कंथा बना, 'बैरागिण' होने अथवा 'अगर चँदण की चिता' रचकर उसके 'अपणे हाथ' लगायी गई आग में 'जल बल' कर 'भस्म की ढेरी' हो जाने तथा, ऐसे रूप में भी, उसके अंग लगाने के लिए उद्यत हो, उसी से अनुनय विनय करती हुई भी दीख पड़ती हैं। ये सभी बातें पूर्वराग से सम्बन्ध रखती हैं।

मीराँबाई ने अपने विरह का वर्णन भी बड़े सुन्दर ढंग से किया है। इनके पदों में विरह का एक अलग महत्व है। वह उक्त पूर्वानुराग में ही किसी न किसी प्रकार से दीख पड़ने लगता है। हम ऊपर देख चुके हैं कि मीराँबाई का प्रेम, लौकिक रूप में व्यक्त होता हुआ भी, परमात्मा से संबद्ध होने के कारण, वास्तव में अलौकिक, अतएव, आध्यात्मिक व विरह-गर्भित भी था। मीराँबाई को यह बात सिद्धान्तरूप से स्वीकृत है कि उनमें और उनके इष्टदेव वा प्रियतम में, जीवात्मा एवं परमात्मा की मौलिक एकता के कारण, कोई वास्तविक अन्तर नहीं। जीवात्मा को ज्योंही अपने पूर्व सम्बन्ध वा उक्त मौलिकता का ज्ञान हो जाता है त्योंही वह, अपने काल्पनिक आवरण रूपी शरीर एवं तत्सम्बद्ध प्राकृतिक परिस्थितियों के असली रहस्य को समझ, उनके प्रति उदासीन हो जाता है और एक बार फिर उस मिलन के लिए आतुर हो उठता है जिसे, निरे अज्ञान के कारण, वह भूल सा गया था। अपने उस अविनाशी प्रियतम के प्रति प्रदर्शित इस प्रकार की 'आर्त्ति' को ही विरह-गर्भित प्रेम की संज्ञा दी जाती है। इस प्रेम के रूप को समझाने के लिए प्रसिद्ध सूफ़ी कवि जायसी ने कहा है कि—

विरह गर्भित प्रेम

'प्रेमहि मांह बिरहरसरसा। मैन के घर मधु अमृत बसा॥'—
'जायसी ग्रंथावली' (का० ना० सभा पृ० ६२)।

अर्थात् जिस प्रकार मोम के घर अथवा मधुकोश में अमृत रूपी मधु

संचित रहा करता है, उसी प्रकार प्रेम के अन्तर्गत विरह भी निवास करता है।
विरह को सदा सच्चे प्रेम के भीतर निहित समझना चाहिए क्योंकि प्रेम का
अस्तित्व यदि है तो वह विरह के ही कारण है—विरह ही प्रेम का सार है।
इस प्रेम का आधार, जायसी के भी अनुसार, स्वयं परमात्मा एवं सारे ब्रह्मांड
की एकता में सन्निहित है जिसको भूल जाने के कारण सारी सृष्टि आरम्भ
ही पूर्ण विरही की भाँति निरन्तर बेचैन बनी डोलती चली आ रही है। अतएव
अपनी इस प्रकार की वास्तविक स्थिति का पता लगते ही मनुष्य को पुरानी
बातें जैसे स्मरण हो आती हैं और वह आपसे आप कह उठता है—

"हुता जों एकहि संग, हौं तुम काहे बीछुरा ?

अब जिउ उठै तरंग, मुहमद कहा न जाइ कछु ॥ वही, पद ३२६ ॥

अर्थात् सदा एक ही साथ रहने वालों में, आखिर किस प्रकार वियोग
गया जिससे आज हृदय में भाँति-भाँति के भाव पैदा हो रहे हैं और अपनी
विचित्र स्थिति का हाल कहते नहीं बनता[1] ! मीराँबाई ने अपने प्रेम की प्रा-
रम्भिक अवस्था को भी, इसी कारण, सद्गुरु उपदेशजन्य विरह के रूप में
दर्शाया है (देखो पद—१५५, १२६, १२९)।

मीराँबाई के प्रेम की दूसरी अवस्था वा विरह का दर्शन विप्रलंभ शृंगार
ही जैसा हुआ है किन्तु उसमें आंतरिक वेदना का समावेश अधिक होने से
मानसिक पक्ष की प्रधानता है; शारीरिक तपादि का वर्णन
कम होने से शारीरिक पक्ष गौण समझा जा सकता है।
शारीरिक कष्टों की तीव्रता व असह्यता का प्रदर्शन अधिक

विरह वर्णन

परम्परानुसार है और कई पदों (जैसे, पद ७४) में अत्युक्तियों से भरा है पर
स्वानुभूति के कारण, उसमें भी उतनी अस्वाभाविकता नहीं जान पड़ती।
मानसिक कष्टों के वर्णन प्रायः सभी अनूठे और स्वाभाविक हैं। उनमें प्रा-
सब कहीं बेचैनी व विवशता से भरी हुई मर्मान्तक वेदना की एक सच्ची झ-

---

[1]परशुराम चतुर्वेदीः 'जायसी और प्रेमतत्त्व'—हिन्दुस्तानी (भा-
सं० ३, १९३४ ई०) हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग।

सुन पड़ती है। उनका 'विश्वास-संघाती' प्रभु 'नेहड़ो' लगाकर चला गया है और उन्हें 'प्रेम की बाती बरा कर' एवं 'नेह की नाव चलाकर' 'विरह समँद में' छोड़ गया है, उसके बिना उन्हें रहा ही नहीं जाता (पद ६६); अवसर आने पर भी वे उसे भरपूर देख न सकीं और न उससे जी खोल कर बातें ही कर सकीं, अतएव, उन्हें इस बात का कष्ट है कि, कदाचित् हरि ने उनकी भीतरी 'आर्ति' वा चाह को भली-भाँति समझ न पाया हो। इस असह्य भावना से अत्यन्त दुःखिनी बन, वे कटारी से 'कंठसार' कर अथवा 'विष खाकर' भी अपने प्राण देने पर उतारू हैं क्योंकि उनकी समझ में नहीं आता है कि इस दुर्दशा में भी, आखिर ये 'पापी' उनके 'पंड' वा शरीर को आप से आप क्यों नहीं छोड़ भागते (पद ६८)? उन्हें खाना पीना तो भाता नहीं, रात को उनसे सोना तक नहीं बन पड़ता, उनकी अपनी सेज 'सूली' पर बिछी हुई जान पड़ती है (पद ७२)। उस पिता की 'जोत' बिना 'मंदिर अँधियारो' दीखता है किन्तु तो भी उसमें दीपक जलाना पसन्द नहीं आता (पद ७५); रात भर उसके बिना सूनी सेज पर सिसकते-सिसकते जी जाता रहता है (पद ७३)। कभी-कभी सुध भूलने पर आँख लगते ही, वे 'चमक' उठा करती हैं। उस समय उन्हें चन्द्रकला जैसी सुन्दर वस्तु भी नहीं सुहाती (पद ७६)। वे रात भर बैठी-बैठी तारा गिनती अथवा आँसुओं की माला पोवती रह जाती हैं (पद ८६)। दिन में भी उनका वही हाल है—उन्हें घर वा आँगन अच्छा नहीं लगता और वे निरयशः द्वार पर खड़ी-खड़ी उसी की बाट जोहती रहती हैं (प० ७३), उन्हें बराबर 'तालावेली' लगी रहती अर्थात् बेचैनी सताती रहती है (पद ८१)। जैसे चातक घन के लिए रटता वा जैसे मछली पानी के लिए तड़पती है, वैसे ही, वे भी सुध-बुध बिसरा कर 'पिव-पिव' करती रह जाती हैं (पद ८७)। 'विरह भवंग' ने उनके कलेजे को ही डस लिया है और 'हलाहल' की 'लहर' जाग उठी है (पद ६१)। ऐसी प्रत्येक लहर पर उनके प्राण मानो निकले पड़ते हैं और 'विरह की' 'आँच' उन्हें 'दुलायें' देती है (पद ७५)।

मीराँबाई को उक्त विरह-वेदना से भी कहीं अधिक यह कठिन समस्या सता

रही है कि "मुंक 'दरद दिवाणी' के 'दरद' का हाल कैसे प्रकट हो।" 'घाइल की गति' या तो स्वयं 'घाइल' ही जानता है अथवा वह जिसके कारण उसे चोट पहुँची हो, तीसरा नहीं समझ पाता (पद ७२); इसकी पहचान के लिए यदि किसी वैद्य के यहाँ दौड़ धूप की जाय तो वह भी, मर्म समस्या मूलक रूप से अनभिज्ञ रहने के कारण, कलेजे की 'करक' जानने के लिए 'बाँह' देखता रह जाता है (पद ७४)। वेदना भीतर व्यास है और 'वह' अर्थात् प्रियतम उस 'पीड़ा' की खबर नहीं रखता (पद ८७), अतएव उसके पास सन्देशा भेजने के प्रयत्न किये जाते हैं। परन्तु सन्देशपत्र लिखने बैठने पर भी कलम धरते ही हाथ काँपने लगता है, हृदय 'धर्रा' उठता है मुंह से बात नहीं निकलती और आँखें आँसुओं से भर जाती हैं। उस समय ऐसा सोचकर भी उनका अंग-अंग घर्राने लगता है कि 'उनके चरण-कमल को, किस प्रकार, वे कभी पकड़ पायँगी (पद ७७)। जो हो, उन्होंने अपने प्रियतम के प्रति अपने विरह का निवेदन कई पदों द्वारा बड़े अच्छे ढंग से किया है। वे उनसे अपनी शारीरिक दशा का परिचय देती हैं (पद ६६, १०७, १०८ आदि), मानसिक स्थिति बतलाती हैं (पद ६६, १०३, आदि), और भिन्न-भिन्न प्रेमियों के उदाहरण देकर उनसे अपनी अवस्था की समानता दिखलाती हैं (पद १०१, १०५, आदि) तथा कभी-कभी अपने किये प्रेम के लिए पछतावा तक करने लगती हैं (पद १०२)। परन्तु अधिकतर वे 'उन' पर 'जीवड़ांवार' देने (पद ६३) अथवा उनके कारण 'जोगण होने' (पद ६४, ११८ आदि) पर ही उद्यत जान पड़ती हैं। वे मीठा 'थाँरो बोल' कह कर (पद १००) वा 'भवनपति' अथवा 'राजा' द्वारा उन्हें सम्बोधित करके (पद ६६ व १०६) उनकी खुशामद करती, उन्हें गुणवंत व 'गुणसागर' तथा अपने को 'बहु औगणहारी' बता उनसे अपने अपराधों के लिए क्षमा चाहतीं (पद ११२, ११४) और, उन्हीं के कारण अपने स्वजनों की दृष्टि में भी शत्रुवत् हो जाने की ओर (पद ११६) उनका ध्यान आकर्षित कर उनकी दया जागृत करने के प्रयत्न भी करती हैं (पद १०६ व १२१)। इनके सब कुछ करने का और सब से बड़ा लक्ष्य 'साँवरिया' का

दर्शन ही जान पड़ता है (पद १५४)।

मीराँबाई द्वारा किये गये तीसरी अवस्था अथवा संयोग वा मिलन के वर्णनों में,स्वभावतः आनन्द एवं उत्साह के भाव प्रधानरूप से लक्षित होते हैं। उनकी शैली कहीं कहीं परम्परागत साहित्यिक पद्धति और अन्यत्र संयोग का वर्णन संत कवियों की वर्णन प्रणाली से मेल खाती हुई जान पड़ती है। उनकी विशेषता इनके अन्तर्गत, 'सावन' व 'होली' के उपयुक्त उल्लेखों के समाविष्ट कर लेने में अधिक दीख पड़ती है। 'सावन' के प्रसंग में आयी हुई—

"उमँग्यो इन्द्र चहूँ दिसि बरसै, दामणि छोड़ी लाज।
धरती रूप नवा नवा धरिया, इन्द्र मिलण कै काज" ॥

(पद १४१)

और उसी प्रकार 'होली' के प्रसंग की—

"उड़त गुलाल लाल भयो अम्बर, बरसत रंग अपार रे।
घट के सब पट खोल दिये हैं, लोकलाज सब डार रे ॥"

(पद १२१

पंक्तियों में, अपने प्रियतम से मिलती हुई, 'व्याकुल विरहिणी मीराँ' के हृदय का जीता जागता चित्र हमारे सामने आ जाता है। उनकी तन्मयता प्रदर्शित करने वाली पंक्तियों में इन्हें श्रेष्ठ स्थान मिलना चाहिए।

मीराँबाई के वर्णन-कौशल की कुछ बानगी हम उनके किये सौन्दर्य-वर्णन में ऊपर देख चुके हैं। उनमें तथा पद १७२ में आये राधा के वस्त्राभूषणों के विवरण में हम अधिकतर उनके परम्परानुसरण के ही उदाहरण पाते हैं। उनकी विशेषताओं द्वारा प्रभावित सबसे अच्छे सौन्दर्य वर्णन के नमूनों में तो हम उनके "कांनां किन गूँथी जुल्फाँ कारियाँ," आदि (पद १६९) और 'सखी, म्हारो कानूड़ो कलेजे की कोर' आदि (पद १६७) को ही उपस्थित कर सकते हैं। मीराँबाई द्वारा किये गये भगवान् की महिमा के वर्णन में हमें उनकी अलौकिक शक्ति एवं भक्तवत्सलता के उल्लेख प्रायः उसी रंग के मिलते हैं जैसे अन्य वैष्णव

वस्तु वर्णन

कवियों की रचनाओं में पाये जाते हैं। केवल कहीं-कहीं पर उनके व्यक्तित्व की छाप अवश्य झलक जाती है। उनके वस्तुवर्णनों में 'वृन्दावन' एवं 'अगम-देस' के चित्रण (पद १६३ व १६२) बड़े चित्ताकर्षक हैं। उनमें प्रदर्शित वस्तुस्थिति एवं दिनचर्या के विवरण स्वाभाविक उतरे हैं। इसी प्रकार ऋतु-वर्णन करते समय मीराँबाई ने वर्षा का वर्णन बड़े विशद रूप से किया है। इसमें विरहावस्था, प्रतीक्षा एवं मिलन, इन तीनों की भिन्न-भिन्न दशाओं के अनुसार एक ही ऋतु भिन्न-भिन्न प्रकार की सजावटें लेकर सामने आती जान पड़ती हैं। विरहावस्था में 'बादर' या तो 'मतवारो' बन कर आता है और 'हरि को सनेसों' तक नहीं लाता या 'काली-पीली' घटायें उमड़ पड़तीं हैं और सर्वत्र 'पानी ही पानी' दीखने लगता है, उस समय सभी वस्तुएँ विरहिणी के लिए भयंकर व डरावनी बन जाती हैं। परन्तु प्रतीक्षा की दशा में वही 'घन' गरजने के साथ-साथ 'बरजने' भी लगता है, बिजली सवाई चमक के साथ 'लाज' छोड़कर सामने आती है, 'पुरवाई' पवन चलने लगता है और धरती नये-नये रूप धारण करने लगती है, सब कहीं उत्साह व चंचलता है और मीराँ का चित्त भी 'चरण कमलों' में लीन होता जा रहा है। इसी भाँति मिलन की अवस्था में वही 'बदला' जल भर-भर आते हुए दीखते हैं, 'नन्हीं-नन्हीं' वा 'छोटी-छोटी' बूँदों में 'मेहा' बरसने लगता है और पवन 'सीतल' व 'सोहावन' बन जाता है, बारह मासे का वर्णन भी मीराबाँई के हृदय की कहानी ही प्रकट करता हुआ जान पड़ता है। होली के वर्णनों में उनकी तन्मयता के भाव बहुत स्पष्ट हैं।

घटनात्मक वर्णनों में मीराँबाई की पदावली के अन्तर्गत, बाललीला (पद १६५-१६८), वंसीवादन लीला (पद १६९), नागलीला (पद १७०), चीरहरण लीला (पद १७१), मिलनलीला (पद १७२-१७३), पनघटलीला (पद १७४-१७५), फागलीला (पद १७७)

घटना वर्णन

वा दधिबेचन लीला (पद १७८-१७९), के प्रसंग आते हैं और कुछ पदों (पद १८१ व १८३) में अक्रूर तथा अन्य (पद १८४-१८६) में उद्धव-सम्बन्धी कथाओं के भी उल्लेख हैं। इनमें से

पद (१६६, १६८, १७१, १७४, १७५, १७८, १७९ और १८३) में क्रमशः बालक्रीड़ा, गार्हस्थ्य-जीवन, करुण दशा, अनोखे प्रभाव, होली-रंग तल्लीनता एवं पछताने के भाव विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पद (१७९) में दधि बेचनेवाली ग्वालिन की आत्मविस्मृति तो एक दम अनूठी है। इनके अतिरिक्त मीराँबाई के दो पदों (पद १८१ व १८८) में पौराणिक भक्त गाथाओं के अनुसार किए गये, क्रमशः शबरी एवं सुदामा की कथाओं के दो इतिवृत्तात्मक वर्णन भी आये हैं जिनमें से दूसरे में, कम से कम, 'फाटी तो फूलड़ियाँ पाँव उभाणे, चलतैं चरण घसैं' द्वारा बालपने के 'मिंत' वा मित्र सुदामा की सच्ची व दयनीय दशा प्रत्यक्ष हो जाती है। मीराँबाई के अपूर्व वर्णन-कौशल के प्रमाण उनके कतिपय वाक्यों वा वाक्यांशों में किये गये शब्द-चित्रणों में भी देखे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए पद ५ में 'प्राण अँकोर', ७ में 'निपट बँकट छवि', १६ में 'भगति रसीली', १८ में 'चरणाँ लिपट परूँ', १० में 'खोल मिली तन गाती', ६२ में 'धूतारा जोगी' और 'ऊभी जोऊँ कपोल', ७५ में 'प्रेम की आंच ढुलावै', १०१ में 'बिरह कलेजा खाय', १०३ में, 'बह गई करवत अैन', १४३ में 'रँगीली गणगोर'; १४९ में 'म्हारा ओलगिया', १५६ में 'कसक कसक कसकानी', १६७ में 'कलेजे की कोर' और 'कुंडल की झकझोर', १६८ में 'कँगना के झनकारे', १६९ में 'मन की गांसुरी' १७४ में 'कछुक टोनो कर्‌यो', १८१ में 'पेंडो डोले', १८२ में 'हाथ मींजत रही', आदि की भाव-गम्भीरता पर विचार करना चाहिए।

मीराँबाई की कविता विशेषतः भावमयी होने के कारण, उसके काव्यत्व की प्रचुरमात्रा हमें, वस्तुतः, उक्त अपूर्व रसोद्भावना अथवा हृदयग्राही वर्णनों के ही अन्तर्गत मिल सकती है। तोभी पदावली का मुख्य विषय एक

अलंकार विधान परोक्ष वस्तु अर्थात् 'हरि अविनासी' प्रियतम होने से, उसके साथ प्रेम एवं सम्बन्ध को भावोत्तेजन द्वारा स्पष्ट करने के लिए, सादृश्य-योजना का आश्रय भी लेना ही पड़ा है और फलस्वरूप उसमें यत्रतत्र कुछ अलंकारों का विधान भी, स्वभावतः हो गया है। पदावली में सबसे अधिक हमें 'रूपकों' के उदाहरण मिलते हैं और उनमें भी कई एक, जैसे, पद

७५ में सर्पदंश, पद ४२ में 'ज्ञान को ढोल', पद १२४ में 'तनका दिवला', व पद १६२ में, 'सोलह सिणगार' सम्बन्धी सांगरूपक से बन गए हैं। रूपक तथा अन्य अलंकारों के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

रूपक— 'अँसुवन जल सींचि-सींचि प्रेम बेलि बोई' । (पद १५)
'भौसागर अति ज़ोर कहिये, अनँत ऊँड़ी धार ।
रामनाम का बाँध बेड़ा, उतर परले पार ॥' (पद १६५)

उपमा— पानाँ ज्यूँ पीली पड़ी रे', (पद ७४)
'घायल ज्यूँ घूमूँ सदा री', (पद ७४)
'जल बिन कँवल चन्द बिन रजनी,
ऐसे तुम देख्याँ बिन सजनी ।' (पद १०१).
'मैं कोइल ज्यूँ कुरलाऊँजी', (पद १२६)

उत्प्रेक्षा—
'कुंडल की अलक-झलक, कपोलन पर धाई
मनो मीन सरवर तजि, मकर मिलन आई ।' (पद ४)
'धरती रूप नवा-नवा धरिया, इन्द्र मिलण कै काज ।' (पद १४१)

अत्युक्ति—
'माँस गले गल छीजियारे, करक रह्या गल आहि ।
आँगलियारो मूँदड़ो, म्हारे आवण लागो बाँहि ।' (पद ७४)
'गिणताँ गिणताँ घँस गईं रेखा आँगरिया की सारी ।' (पद ७८)

उदाहरण—
'मीराँ प्रभु गिरधर मिले, (जैसे) पाणी मिलगयो रंग ।' (पद १०५)
'तुम बिच हम बिच अंतर नाहीं, जैसे सूरज घामा ।' (पद ११५)

विभावना—
बिनि करताल पखावज बाजै, अणहद की झणकार रे ।
बिनि सुर राग छतीसूँ गावै, रोम-रोम रंगसार रे ।' (पद १५१)

विभावोक्ति—
'बसो मोरे नैनन में नँदलाल ॥ टेक ॥

मोहनी मूरति साँवरी सूरति, नैणा बने विसाल।
अधर सुधारस मुरली राजति, उर बैजंती माल।
छुद्र घंटिका कटि तट सोभित, नूपुर सबद रसाल।' (पद ३)

अर्थांतरन्यास—

'हेरी मैं तो दरद दिवाणी होइ, दरद न जाणै मेरो कोइ॥ टेक॥
घाइल की गति घाइल जाणै, की जिण लाई होइ।
जौहरि की गति जौहरी जाणैं, की जिन जौहर होइ।' (पद ७२)

श्लेष—

'थोइ झिरमिट माँ मिला साँवरो, खोल मिली तन-गाती।' (पद २०)

वीप्सा—

'अँगि-अँगि व्याकुल भई, मुखि पिय-पिय बानी हो।' (पद ८७)
'रामनाम रस पीजे मनुआँ, रामनाम रस पीजे।' (पद १४६)

अनुप्रास—

'समरथ सरणा तुम्हारी सइयाँ, सरब सुधारण काज।' (पद ६४)
'बावल बैद बुलाइयारे, पकड़ दिखांई म्हाँरी बाँह।' (पद ७४)
सूनो गाँव देस सब सूनो, सूनी सेज अटारी।' (पद ७८)
'भोजन भवन भलो नहिं लागै, पिया कारण भई गेली।' (पद ८०)
'मनकूं मार सजूँ सतगुरु सूँ, दुरमत दूर गमाऊँ, ए माय।'
(पद ९२)

(६) छंद—पदावली के अंतर्गत आये हुए पदों को ध्यानपूर्वक देखने से पता चल जाता है कि मानो उनकी रचना पिंगल के नियमादि को दृष्टि में रख कर नहीं की गई थी अथवा, उनके विशेष रूप से गाने कठिनाई व विस्तरण योग्य होने के कारण, पीछे से उनमें, संगीत की सुविधाओं के अनुसार, परिवर्त्तन कर दिये गये हैं। पिंगल की दृष्टि से नाप जोख करने पर पदावली का, कदाचित्, कोई भी पद नियमानुसार बना हुआ प्रतीत नहीं होता। किसी में मात्राएँ बढ़ती हैं तो किसी में घट जाती हैं; किसी में दो तीन तक शब्द बढ़ जाते हैं तो कहीं यतिभंग का दोष पड़

जाता है; और कहीं-कहीं पर नियमादि की उपेक्षा के कारण, यह कहना कठि
हो जाता है कि किसी पंक्ति वा किन्हीं पंक्तियों की, किन लक्षणों को दृष्टि
रखकर, परीक्षा की जाय। तो भी पदावली के अंतर्गत कम से कम १५ प्रकार
छंद अवश्य आये हैं। इनमें से मुख्य-मुख्य छंदों के नाम, लक्षणादि एवं, उन
अनुसार समक्ष पड़ने वाले कुछ दोषों के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :—

१. सारछंद—इस छंद का प्रयोग पदावली के लगभग एक तिहाई प
के अन्तर्गत हुआ है। यह एक मात्रिक छंद है जिसमें, १६ और १२ के विश्रा
से २८ मात्राएँ होती हैं। इसके अन्त में दो गुरु आते हैं, किन्तु किसी-किसी
उनकी जगह केवल एक वा तीन गुरु भी माने हैं। इसकी रचना मुख्यतः १
मात्राओं तक चौपाई के तुल्य होती है और पिछली १२ मात्राओं में ३ चौक
अथवा २ त्रिकल '१ चौकल' और १ गुरु आते हैं, पदावली में प्रयुक्त सार छं
पद २६, ४०, ८१, ६८, १३६, व १४५, में 'रे' १२, व ६१, में 'री'; १०
१०७, व १५२, में 'हो'; तथा ११२, १२७, व १४६, में 'जी' के अतिरि
प्रयोगों के कारण और उसी प्रकार, पद ६२, व १७१, में 'एमाय' एवं उद
'हो माई' के आजाने से, सदोष कहा जा सकता है। पद ८५ में प्रयु
'भुलावना' 'सतावणा' आदि भी मात्रा बढ़ा देते हैं।

२. सरसी छंद—इस छंद का प्रयोग भी पदावली के अंतर्गत बहुत हु
है। सार छंद से इसके उदाहरण केवल १०-१२ ही कम होंगे। यह छंद
मात्रिक है और, १६ और ११ के विश्राम से, इसमें २७ मात्राएँ होती हैं
इसके अन्त में गुरु व लघु आते हैं और इसका दूसरा दल दोहे के सम चरण
के समान ही होता है। इस छंद के प्रयोगों में भी हम प्राय उक्त सारछंद के
समान त्रुटियाँ पाते हैं। पद ४८ में 'री'; १५१, १६६, में 'रे'; १७५ में 'री'
व 'रे'; १४२ में 'छैजी' तथा १६५ में 'मां' के बढ़ जाने से छंद सदोष
जाता है और उसी प्रकार ७७ के अन्त में गुरु के आ जाने से पद ४४,
२०१ में एक ही पद के अन्तर्गत सरसी व दोहा छंदों का सम्मिश्रण है।

३. विष्णुपद—यह मात्रिक छंद भी पदावली के अंतर्गत १४ बार प्रयु
हुआ है। इसमें, १६ और १० के विराम से, २६ मात्राएँ होती हैं और इ

अन्त में गुरु लघु आवे हैं। इसके भी पद २०० में 'रे' अधिक है; और १३६, १८६, १८८, १८९, १६०; आदि में बहुत फेरफार है।

४. दोहा छंद—संख्या के अनुसार पदावली के अन्तर्गत इस छंद का ही क्रम आता है। इसके ११ उदाहरणों में से बहुत कम जगह नियम का अनुसरण हुआ है। इसके विषम चरणों में १३ तथा सम चरणों में ११ मात्राएँ होनी चाहिए, अन्त में लघु आना चाहिए तथा पहले एवं तीसरे चरणों के आदि में 'जगण' (अर्थात लघु गुरु लघु) न होना चाहिए; परन्तु यहाँ भी पद ८४, व १०२, में 'हूं'; २५, में 'हे'; तथा (२७) में 'जी' के बढ़ जाने से मात्राएँ बढ़ गई हैं और २१, ४७, ७४, आदि में बहुत फेर फार आ गया है। पद २१ में 'दोहे' के साथ सार छंद का तथा पद ३० में उसी के साथ 'शोभन' छन्द का सम्मिश्रण हुआ है।

५. उपमान छंद—इस मात्रिक छन्द में नियमानुसार, १३ और १० के विश्राम से, २३ मात्राएँ होती हैं और अन्त में दो गुरु आवे हैं। परन्तु इसके प्रायः सभी उदाहरणों में, गाने की सुविधा को ध्यान में रखकर, 'हो' शब्द अन्त में लगा दिया गया है।

६. समान सवैया—इस मात्रिक छन्द में, १६ व १६ के विराम से ३२ मात्राएँ होतीं हैं और इसके अन्त में 'भगण' (अर्थात गुरु, लघु लघु) आता है। यह छन्द चौपाई का दूना होता है। इस छन्द के ७ उदाहरणों में से पद ६७ के अन्त में 'भगण' न आकर 'मगण' (अर्थात् गुरु गुरु गुरु) आया है और अन्य कई पदों में भी बहुत फेरफार है।

७ शोभन छंद—यह छन्द, १४ व १० के विश्राम से, २४ मात्राओं का होता है और इसके अन्त में 'जगण' (अर्थात् लघु गुरु लघु) हुआ करता है। यदि अन्त में केवल लघु गुरु आ जाँय तो इसे 'रूपमाला' कहा करते हैं। परन्तु पद १ के अन्त में न 'जगण' है और न लघु गुरु है, बल्कि उनकी जगह 'नगण' (अर्थात लघु लघु लघु) का प्रयोग हुआ है। पद ११७ व १६२ में शोभन छन्द सरसी के साथ प्रयुक्त हुआ है और पद १७४ व १६५ में शोभन व रूपमाला दोनों ही आये हैं।

८. ताटंक छंद—यह मात्रिक छन्द, १६ व १४ के विश्राम से मात्राओं का होता है। इसके अन्त में साधारणतः 'मगण' (अर्थात् गुरु गुरु) आना चाहिए, किन्तु कभी-कभी केवल एक गुरु के भी प्रयोग देखे हैं। पदावली के ताटङ्क वाले प्रायः सभी उदाहरण एक गुरु वाले हैं। १४६ में 'री' का अतिरिक्त प्रयोग गाने के लिए हुआ है।

९. कुण्डल छंद—इस मात्रिक छन्द में, १२ और (६ व ४ मिलकर) १० के विराम से, २२ मात्राएँ होती हैं और अन्त में दो गुरु आते हैं। इ ४ उदाहरणों में से २ अर्थात् पद १६ व १८५ नियम विरुद्ध से दीख पड़ते हैं।

१०. चान्द्रायण—यह छन्द भी मात्रिक है और, ११ एवं १० विश्राम से, २१ मात्राओं का होता है। इनमें से ११ वाला दल जगणान्त (अर्थात् गुरु लघु गुरु वाला) तथा १० वाला रगणान्त (अर्थात् गुरु लघु गु वाला) होना चाहिए। इसके तीन उदाहरण—पद ४५, १२० व १६२ मिल हैं जिनमें से अन्तिम ही प्रायः शुद्ध है।

पदावली के अंतर्गत आनेवाले यही १० मुख्य मात्रिक छन्द हैं। इ अतिरिक्त अतिवरवै, सखी, आदि कुछ और छंद भी आये हैं, किन्तु उन केवल एक-एक दो-दो ही उदाहरण मिलेंगे। वर्णिक छंदों में से दो उदाहर इसमें मनहर व कवित्त के मिलते हैं जिसमें साधारणतः ८, ८, ८, ७ व ३ वर्णों के प्रयोग से १६ व १५ वर्णों पर यति हुआ करती है। मनहर वा पद १७६ व १८७ में से, उक्त नियमानुसार, दूसरा अर्थात् १८७ ही अधि शुद्ध व निर्दोष है।

कुछ संकेत

'किसी एक ही पद के अन्तर्गत एक से अधिक भिन्न-भिन्न छन्दों का एक प्रयोग हो जाना, पद-रचना-परम्परा के नियमानुसार, कदाचित्, कोई दोष नहीं समझा जाता, अतएव ऊपर उल्लिखित दो-दो भिन्न-भि छन्दों के सम्मिश्रण के उदाहरण अनुचित नहीं कहे ज सकते, परन्तु जिस किसी छन्द का भी प्रयोग हुआ हो अपने नियमों के अनुकूल अवश्य होना चाहिए। भिन्न-भिन्न रागों व रागिनि के अनुसार पंक्तियों की लय दुरुस्त करने अथवा भिन्न-भिन्न तालों के नियम

नुसार उनके विराम, आदि के स्थलों का संशोधन कर देने से बहुधा पिंगल के नियम ठीक-ठीक लग नहीं पाते। पदावली के अंतर्गत जिन-जिन पदों के ऊपर किसी राग का नाम दिया है अथवा जिन-जिन की प्रथम पंक्ति किसी टेक वा स्थायी के रूप में आयी हैं उनके पढ़ते समय, विशेषरूप से, यह बात ध्यान देने योग्य है। किसी ह्रस्व को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व भी ऐसी दशा में बहुधा कर दिया जाता है।

(७) भाषा—मीराँबाई की पदावली उनके फुटकर पदों का एक संग्रहमात्र है और उसके प्रत्येक पद की भाषा एक ही प्रकार की नहीं है। उसमें बहुत से पद ऐसे हैं जो राजस्थानी में हैं और कुछ की भाषा ब्रजभाषा वा गुजराती कही जा सकती है। किन्तु अधिकांश में राजस्थानी, ब्रजभाषा, गुजराती अथवा कहीं-कहीं पंजाबी, खड़ी बोली व पूरबी तक का न्यूनाधिक सम्मिश्रण है। कई स्थलों पर, राजस्थानी के अतिरिक्त, ब्रजभाषा के भी विकारी रूपों के प्रयोग हुए हैं और ब्रजभाषा, पञ्जाबी गुजराती तथा खड़ी बोली की विभक्तियों का भी व्यवहार है। व्याकरण के नियम, साधारणतः, भाषा के अनुसार ही बरते गये हैं। मीराँबाई के पदों के विषय में भी, कबीर साहब आदि की रचनाओं की ही भाँति यह कहना कठिन है कि जिस रूप में वे पाये जाते हैं ठीक उसी रूप में वे रचे गए भी होंगे। मीराँबाई मेड़ता वा मेवाड़ से लेकर, कुछ न कुछ दिनों तक, वृंदावन अथवा द्वारकापुरी में भी रह चुकी थीं, अतएव उनकी रचनाओं में उन स्थानों की भाषाओं के भिन्न-भिन्न प्रयोगों का भी पाया जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं, इसके सिवाय मीराँबाई के पदों की भाषाशैली भी अधिकतर सीधी-सादी, सरल व चलती सी रही और अपने सुन्दर भावों के कारण माधुर्यपूर्ण होने से वे, सर्वसाधारण द्वारा, बहुधा अपनाये जाते रहे। लोकप्रिय एवं गाने योग्य होकर ही वे बहुत दिनों तक एक से अधिक प्रान्तों में बराबर प्रचलित रहते आये और समयानुसार उन पर भिन्न-भिन्न भाषाओं का प्रभाव, स्वभावतः पड़ता गया। बहुत से पदों की आधुनिकता देखकर इसीलिए, उन्हें कम से कम भाषा की दृष्टि से ही, मीराँ रचित कहने का साहस नहीं होता।

मिश्रित भाषा

राजस्थानी भाषा अपभ्रंश के एक पुराने विकसित रूप का नाम है।
भ्रंश की उत्पत्ति, विशेष कर पश्चिम व पश्चिमोत्तर भारत में, विक्रम की
एवं तीसरी शताब्दियों में हुई थी। उस समय के लगभग एक आभीरी
गुर्जर नामक विदेशी जाति ने, बाहर से आकर, उक्तप्रदेश के कुछ अं
अधिकार कर लिया और उसकी आभीरी भाषा उनके दक्षिणी भा
राजभाषा के रूप में, बरती जाने लगी। इस आभी
प्रभाव में आकर वहाँ की प्रचलित प्राकृत भाषा का
क्रमशः विकृत होता हुआ, अपभ्रंश कहला कर प्र
हुआ और आगे चल कर, यही अपभ्रंश भाषा, सातवीं शताब्दी में,
साहित्यिक रूप में भी परिणत हो गई। उसके प्रचार की सीमा, क्रमशः फै
हुई, अन्त में दसवीं शताब्दी तक, पश्चिम से लेकर पूर्व में मगध और द
में सौराष्ट्र तक पहुँच गई थी। परन्तु ११वीं शताब्दी के लगभग, प्रान्त भे
कारण एक ही भाषा के अन्तर्गत उपभाषाएँ भी बनने लगीं और धीरे
उसके भीतर उस रूप का भी आविर्भाव हुआ जिसे नागर व शौरसेनी
दिया जाता है। यह भाषा उस समय अवन्ती से लेकर दक्षिणी पंजाब
सारे देश की एवं ब्रज की मुख्य भाषा हो चली थी।

राजस्थानी

१३वीं व १४वीं शताब्दियों के अनन्तर, स्थानभेद के कारण, उक्त नाग
शौरसेनी के भीतर भी बहुत कुछ अन्तर लक्षित होने लगा। आरंभ में, पश्चि
की ओर, इसका साहित्यिक रूप में प्रयोग करने वा
तो चारण-भाट या जैन कवि थे अथवा ढाढी आ
जातियाँ थीं जो बहुधा गाती बजाती फिरा करती थीं
संस्कृत के साथ इनका कम सम्बन्ध रहने के कारण, इनकी भाषा पर त
अथवा तद्भव शब्दों तक का प्रभाव बहुत ही कम पड़ पाया। इस कारण इ
भाषा में प्राकृत व अपभ्रंश की अनेक विशेषताएँ संरक्षित रह गईं और
अन्य कारणों से भी वह पूर्व की भाषा की अपेक्षा अपने प्रांतीय रूप
अधिकतर सीमित रह गई। परन्तु पूर्व की ओर की भाषा पर संस्कृत का प्र
बहुत अधिक पड़ा और, अपने लोकप्रिय साहित्य की विशेषताओं के कारण,

विकास

अन्य स्थानों में भी अपनायी जाने लगी। आगे चल कर उक्त दोनों भाषाएँ ही क्रमशः राजस्थानी व ब्रजभाषा कहलाकर प्रसिद्ध हुईं। और जब राजस्थानी वालों ने, ब्रजभाषा के प्रभाव में आकर, लिखना-पढ़ना आरंभ किया तो उनकी इस नवीन पद्धति पर की गई रचना को 'पिंगल' और प्राचीन ठेठ पद्धति पर प्रस्तुत हुई रचना को, कदाचित् उसी के तुक पर, 'डिंगल' कहने लगे। इसी कारण पिंगल भाषा के काव्य में यदि संस्कृत व प्राकृत के रीतिशास्त्र का अनुसरण होता है तो डिंगल-काव्य में एक स्वतंत्र परम्परा का।

कहना न होगा कि मीराँबाई की पदावली के अन्तर्गत आये हुए राजस्थानी भाषा के पद उक्त पिंगल भाषा की परम्परा के ही अनुसार रचे गए हैं। अतएव शुद्ध ब्रजभाषा के साथ इसकी भिन्नता समझने के लिए राजस्थानी की कुछ विशेषताओं का ज्ञान लेना बहुत उपयोगी होगा।

विशेषताएँ

(१) उच्चारण की विशेषता :—

१—'ल' का उच्चारण कहीं 'ल' और, कहीं-कहीं वैदिक, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं की भाँति, मूर्धन्य 'ळ' के रूप में होता है।

२—मूर्धन्य 'ष' तथा 'ख' का उच्चारण सदा 'ख' तथा 'श' का अधिकतर 'स' एवं 'य' का 'ज' के रूप में हुआ करता है।

३—'छ' का उच्चारण 'स' से मिलता जुलता होता है।

४—डिंगल भाषा का मुख्य चिह्न 'ड' वर्ण, स्वार्थिक प्रत्यय की भाँति, इसकी संज्ञाओं में बहुधा लग जाया करता है।

५—अनुस्वार व अनुनासिक के स्थान पर सदा अनुस्वार के ही प्रयोग देखे जाते हैं; और

६—जिन शब्दों में हिन्दी में 'न' प्रयुक्त होता है उनमें राजस्थानी में प्रायः 'ण' कर दिया जाता है।

(२) बहुवचन बनाने के नियमों में विशेषता :—

१—हिन्दी के प्रायः सभी पुलिंग आकारान्त शब्द राजस्थानी में ओकारान्त हो जाते हैं और उनका बहुवचन हिन्दी की भाँति एकारान्त न होकर,

आकारान्त हो जाता है, जैसे—दूसरो से दूसरा, म्हांरो से म्हांरा, नेहरो नेहरा, रूठ्यो से रूठ्या, आदि।

२—आकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों का बहुवचन बनाने के लिए 'आं' 'आवां' प्रत्यय लगाये जाते हैं, जैसे—माला से मालां अथवा मालावां।

३—इकारान्त वा ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के बहुवचन बनाते समय 'यां' वा 'इयां' प्रत्यय लगते हैं; जैसे—सहेली से सहेल्यां वा सहेलियां।

४—उकारान्त वा ऊकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों का बहुवचन बनाने के लिए 'वां' वा 'उवां' प्रत्यय लगाये जाते हैं; और

५—अन्य शब्दों के बहुवचन प्रायः एकवचन से ही होते हैं। अकारान्त शब्दों के बहुवचन में 'आं' प्रत्यय ही लगते हैं, जैसे—नैण से नैणां।

(३) विभक्ति-प्रयोग की विशेषताएँ :—

१—करण वा अपादान कारक में, अधिकतर विकारी रूपों के आगे, से, सें, वे, तें वा तैं के विभक्ति-चिन्हों का प्रयोग होता है, जैसे—कालव्याल सूँ, आदि।

२—कर्म व सम्प्रदानकारक में, अधिकतर विकारी रूपों के आगे, नूं, ने, कूँ, कौ, को वा हि के विभक्ति चिन्हों का प्रयोग होता है, जैसे—रमैय्योंकूँ, त्‍स्यांकूँ, आदि।

३—अधिकरण कारक में, अधिकतर विकारी रूपों के आगे, मैं, में, इ, ए अथवा पै, पर, परि, बिच, माँह, माँहिने, मही", मँझार आदि विभक्ति चिन्हों वा शब्दों के प्रयोग हुआ करते हैं, जैसे—उरि, लोक मँझार आदि।

४—सम्बन्ध कारक में, अधिकतर विकारी रूपों के आगे पुल्लिंग में, को, नो व स्त्रीलिंग में री, की, नी, दी के विभक्ति-चिन्हों के प्रयोग होते हैं, जैसे—मोतीडाँरो, संतोंनी, आदि।

५—कविता में विभक्तियों का प्रायः लोप भी हो जाया करता है, जैसे—
कर्म कारक—नैणाँ वाण पड़ीं (पद ११); लियो गोविन्दो मोल (पद १...
करणकारक—नैणाँ रस पीजै हो (पद १३);
अपादान कारक—प्रीति कियाँ दुख होइ (पद १०२);

सम्बन्ध कारक—तुम चरणाँ आधार (पद ४३);

अधिकरण कारक—चरणाँ लिपट परूँरी (पद १८); अरौं देसाँ (पद ७४) आदि।

(४) सर्वनाम की विशेषताएँ :—

१—उत्तम पुरुष 'हूँ'=मैं—

कर्त्ता कारक—	म्हे, म्हाँ, हम;
करण व अपादान —	मोसूँ; म्हाँसूं;
कर्म व संप्रदान—	मने, म्हाँने, मोकूँ;
अधिकरण—	मोपरि, हम पर;
सम्बन्ध—	मो, म्हाँरो, म्हाँरा, मौरा;

२—मध्यम पुरुष 'तू'

कर्त्ता कारक—	थे, तुम;
करण व अपादान—	तोसूँ, तोसैं;
कर्म व संप्रदान—	थाँने, तोइ;
सम्बन्ध—	थारो, थाँरो, थाँको, तुमरी, रावरी;

वो = वह	यो = यह	कुण = कौन	जो = जौन, अन्य पुरुष
वो, सो, ऊ,	यो, ये, ए	कुण, कूँण	जो, जे;
ओहि, उण;	इण, इन	किण, किस	जिण, जा,
			जिन, जिस;

(५) क्रिया की विशेषताएँ :—

१—क्रियाओं के साधारण रूपों के अंत में 'णो' लगा रहता है, जैसे—करणो, मरणो, बोलणो, सोवणो, मिलणो, आदि।

२—परन्तु धातु के अंत में मूर्धन्य अक्षर होने पर उक्त 'णो' का 'नो' बन जाता है—जैसे, पढ़नो, जाणनो, आदि।

३—सकर्मक क्रियाओं के रूपों में लिंग वा वचन के भेद कर्म के अनुसार

४

होते हैं और कर्म प्रायः विकारी रूप में ही आता है।

४—धातु के आगे 'ईज' प्रत्यय लगाकर कर्मवाच्य बनाया जाता है; कर्मवाच्य की क्रिया कभी-कभी कर्तृवाच्य का अर्थ भी देती है तथा विधि भी प्रयुक्त होती है। जैसे—कोइल कुरलीजे हो (पद ११६)।

५—वर्त्तमान, विधि एवं भविष्यत् कालों में लिंग भेद का विचार न किया जाता, वचन व पुरुष के ही भेद हुआ करते हैं।

६—भविष्यत् काल के रूप तो प्राकृत का अनुसरण करते हैं अ अंत में, 'गा' वा 'ला' 'लगाकर बनाये जाते हैं—जैसे, गास्याँ, थासे, का डारूँगी, आदि।

७—और, हेतुहेतुमद्भूत और अपूर्ण भूत में लिंग व वचन का भेद है, पुरुष भेद नहीं होता, सामान्यभूत, पूर्णभूत व आसन्न भूत में भी प्र यही नियम देखने में आते हैं।

(६) 'पदावली' में आई हुई कुछ क्रियाओं के रूप इस प्रकार हैं:

१. वर्त्तमान व विधि :—

	उत्तम पुरुष	मध्यम पुरुष	अन्य पुरुष
एकवचन—	जाऊँ, जोऊँ, कुरलाऊँ	जाज्यो, राखज्यो, बखावत;	सतावै, आय, मरजाई;
बहुवचन—	चालाँ, कराँ, पावाँ	न्हालो, आवो;	बसत है, जाणत

२. भविष्यत्—

	उत्तम पुरुष	मध्यम पुरुष	अन्य पुरुष
एकवचन—	देस्यूँ, रहस्यूँ, डारूँगी;	जासी	पालेली, करे
बहुवचन—	धमकास्याँ;	करोला;	तजैंगे, देहैं

३. हेतुहेतुमद्भूत—

एकवचन—जाणती, फेरती;

४ सामान्यभूत (अकर्मक क्रिया)—

एकवचन—डरी, चल; परी, द विकानी,

बहुवचन— ....मिल्या, आया, ... बोल्यां;

सामान्यभूत (सकर्मक क्रिया)—

एकवचन—जाण्यो, लियो; ... मोकल्यो;

बहुवचन— ... बसाया, करिया;

(७) वाक्य-विन्यास आदि कुछ बातों में राजस्थानी, ब्रजभाषा की अपेक्षा गुजराती का ही अधिक अनुसरण करती है :—

१—संज्ञाओं के कारक रूपों में विभक्ति लगाते समय वह प्रायः गुजराती के समान चलती है।

२—बोलने का अर्थ देने वाली क्रियाओं का प्रयोग करते समय ब्रजभाषा में जिससे बोला जाय उसका रूप अपादान कारक में हुआ करता है, किन्तु राजस्थानी में, गुजराती की भाँति, सम्प्रदान कारक सा होता है।

३—राजस्थानी में कर्मणि प्रयोग के उदाहरण बराबर मिला करते हैं, किन्तु ब्रजभाषा में ऐसा कम देखा जाता है।

४—ब्रजभाषा के वाक्यों में किसी सर्वनाम का प्रयोग दुहराया नहीं जाता; उसकी जगह 'अपना' शब्द के रूप प्रयुक्त होते हैं, किन्तु राजस्थानी में ऐसा नहीं किया जाता, जैसे—मैं तो मेरे नारायण कौं पद (पद २१), वचन तुम्हारे तुम ही बिसरे (पद ४६), क्रिया रावरी कीजै हो (पद १०७), मैं तो म्हाँरा रमैयाने (पद १८), आदि।

भाषाओं के उदाहरण — पदावली में प्रयुक्त भिन्न-भिन्न भाषाओं के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

१राजस्थानी—

थेतो पलक उघाड़ो दीनानाथ, मैं हाजिर नाजिर कब की खड़ी।
साजनियां दुसमण होय बैठ्यां, सबने लगूँ कड़ी, आदि (पद ११९)।
'इण सरवरियां री पाल मीरांबाई साँपड़े।
साँपड़ किया असनान, सूरज सामी जप करे, आदि (पद १३०)।
'राम मोरी बांहडली जी गहो, आदि (पद १२६)।

मुझ अबलाने रोटी नीरांत थई, सामलो घरेनु म्हांरे सांचु रे,
आदि (पद १३१)।

२—ब्रजभाषा—

'मीराँ मन मानी सुरत सैल असमानी।
जब-जब सुरत लगे वा घर की, पल-पल नैनन पानी, आदि (पद १५१)।
'यहि विधि भक्ति कैसे होय।
मन की मैल हियते न छूटी, दियो तिलक सिर धोय,'। आदि
(पद १६२)।

'सखीरी लाज वैरन भई।
'श्री लाल गोपाल के सँग, काहे नाहीं गई' आदि (पद १८३)।

३—पंजाबी—

'हो काँनाँ किन गूंथी जुल्फाँ कारियाँ', आदि (पद १६५)
'लागी सोही जाणै कठण लगण दी पीर' आदि (पद १६१)।

४—गुजराती—

'प्रेमनी प्रेमनी रे प्रेमनी मने लागी कटारी प्रेमनी।
जल जमुना माँ भरवा गमाँताँ, हती गागर माथे हेमनीरे, आदि
(पद १७५)

५—खड़ी बोली—

'श्री गिरधर आगे नाचूँगी।
नाचि-नाचि पिव रसिक रिझाऊँ', आदि (पद १४)।

६—पूरबी—

'जसुमति के दुवरवां, ग्वालिन सब जाय।
बरजहु आपन दुलरुवा, हमसों अरुझाय'। आदि (पद ६)।

सूचना—इस भाषा-प्रकरण के लिखने में, कई स्थलों पर, श्रीनरोत्तम स्वामी एम० ए० द्वारा सम्पादित 'मीराँ-मन्दाकिनी, की 'प्रस्तावना' पृ० १४-२३ से भी सहायता ली गई है। (सम्पादक)।

(उ) मीराँबाई तथा अन्य भक्त व कवि

किसी भी व्यक्ति अथवा रचना की किसी अन्य व्यक्ति वा रचना के साथ तुलना कर सहसा निष्कर्ष निकाल बैठना सदा प्रियकर नहीं कहा जा सकता, क्योंकि कोई भी दो व्यक्ति अथवा रचनाएँ ठीक एक समान नहीं हो सकतीं और न किन्हीं ऐसे दो व्यक्तियों वा रचनाओं में से एक को दूसरे से बढ़कर वा घटकर कह देने के लिए, कोई निश्चित व न्याय-संगत अधार हो सकता है। किन्तु तो भी वाह्यरूप से न्यूनाधिक समान दीख पड़ने वाली दो वस्तुओं को एक साथ अपनी दृष्टि में रखकर उनपर विचार करने से उनकी भिन्न-भिन्न विशेषताओं के हृदयङ्गम करने में सुभीता हमें अवश्य मिल जाता है और यदि, अपनी मर्यादा को सदा ध्यान में रखते हुए, अपने किसी निर्णय को अन्तिम रूप न दे डालें, तो वैसा कोई दोष भी नहीं आ पाता। मीराँबाई के जीवन तथा उनकी रचनाओं की विशेषता की परीक्षा करते समय, यदि हम उनकी तुलना किसी अन्य भक्त व कवि से करें तो इसी कारण कदाचित् अनुचित न समझा जायगा।

तुलनात्मक अध्ययन

मीरांबाई की प्रगाढ़भक्ति और उनके गार्हस्थ्य-जीवन के वैषम्य पर विचार करते समय, सर्वप्रथम, हमारा ध्यान गुजरात के प्रसिद्ध भक्त नरसी मेहता की ओर आकृष्ट हो जाता है जिनका जन्म, उनसे लगभग ८५ वर्ष पूर्व, जूनागढ़ के एक नागर ब्राह्मण कुल में हुआ था। दोनों अपने-अपने परिवार के लिए एक वृत्ताकार छिद्र के लिए चौकोर दंड की भांति, सर्वथा अनुपयुक्त थे। दोनों, अपने-अपने क्रमशः वर्ण वा वंश की उच्चता व प्रतिष्ठा में बट्टा लगाने के कारण, तिरस्कृत हुए और दोनों को क्रमशः जाति-बहिष्कार वा विषपान द्वारा, यातना पहुँचाने के प्रयत्न किये गये, दोनों को ही अपने-अपने आत्मीयों के आकस्मिक वियोग से कुछ न कुछ शोक प्रकट करने का अवसर मिला और दोनों ने ऐसे विषाद से वैराग्य की ही शिक्षा पाई; और दोनों किसी

मीराँबाई व नरसी मेहता

विघ्न व बाधा से विचलित न होकर अपनी टेक पर पूर्ववत् दृढ़ रह गये, और सदा की भांति, भगवान के भजन व कीर्तन को ही अपनी दिनचर्या मान, एक भाव से उस एकमात्र कार्यक्रम को ही निरन्तर निभाते ही रह गये। भक्त नरसी ने अपने एकलौते पुत्र की मृत्यु पर भी कहा था कि, "भलुं थयुं भांगी जंजाल, सुखे भजीशुँ श्रीगोपाल" अर्थात् अच्छा ही हुआ विघ्न दूर हुए, अब मैं सुखपूर्वक भगवद्भजन में प्रवृत्त रहा करूँगा; वे जीविकोपार्जन न करने के कारण डांटे-डपटे जाने पर बहुधा यही कह देते थे कि "एवा रे अमे एवा रे एवा, तमे कहो छो वली तेवारे" अर्थात् भाई मैं तो सदा ऐसा ही रहता आया, विवश हूँ, तुम्हारा कुछ कहना व्यर्थ है; और उनका दृढ़ विश्वास था कि भगवान 'प्रीत करूँ प्रेमथी प्रगट थारो' अर्थात् प्रेम करने से अथवा प्रेम द्वारा ही उपलब्ध हो सकता है। मीरांबाई की मनोवृत्ति भी सदा इन जैसी भावनाओं से ही प्रेरित हुआ करती और वे भी इसी कारण, सुख दुःखादि से नित्य निर्द्वन्द सी रहती हुई, 'बदनामी' को भी 'मीठी' मान और 'भली बुरी' कहे जाने पर उसे अपने 'सीस चढ़ा' प्रेमोन्माद में 'मस्त डोलती' रहा करती थीं। इन दोनों भक्त कवियों ने पदों की रचना की है। विनय के पद इन दोनों के प्रायः एक समान हैं। शृंगार वर्णन नरसी का अधिक स्पष्ट व नग्न सा है, मीराँ का अधिक संयत व मर्यादित है। परन्तु नरसी की प्रायः सभी रचनाएँ गुजराती भाषा में हैं और मीरा के अधिकतर हिन्दी भाषा के ही पद मिलते हैं।

मीराँबाई व सूरदास

समान पदरचना के आधार पर, हिन्दी भाषा की दृष्टि से, हम उनकी तुलना, इसी कारण महाकवि सूरदास से कर सकते हैं। सूरदास मीराँ से पहले उत्पन्न हुए थे और पीछे मरे थे, अतएव मीराँ उनकी सदा समसामयिक ही रहीं। दोनों उच्च कोटि के कृष्णभक्त थे, परन्तु सूर की उपासना सख्य भाव की थी और मीराँ की माधुर्य भाव की। सूर ने ब्रजसुंदरियों के प्रेम व विरह के वर्णनों में माधुर्य-भावपूर्ण रचना की है, किन्तु सूर की गोपियों और मीराँबाई में कुछ अंतर भी दीख पड़ता है। सूर की गोपियां श्रीकृष्ण की परकीया प्रेमिकाएँ थीं और वे उनकी प्रेयसी भी हो जाती थीं, किन्तु मीराँ

प्रतिकूल परिस्थितियों के रहते हुए भी, सदा पत्नीभाव से ही उनकी आराधना करती रह गईं। मीराँ का प्रेम भी, एक प्रकार से, रूपासक्ति से ही प्रारम्भ हुआ था और, एक प्रकार के साहचर्य की अनुभूति से ही उसकी पुष्टि भी हुई थी तो भी सूर द्वारा किये गये गोपियों के विरह वर्णन में कदाचित् रचयिता की स्वाभाविक विनोद-प्रियता के कारण, मीराँ की सी गंभीरता, स्पष्ट रूप से, लक्षित नहीं हो पाती। इसके सिवाय सूर की गोपियों का निर्गुण के प्रति नैसर्गिक विरोध है, किन्तु मीराँ उसका सगुण के साथ सामंजस्य स्थापित करने में कभी नहीं चूकतीं। मीरांबाई ने ब्रज की गोपियों को ही अपना आदर्श मान रक्खा था और, कदाचित् उन्हीं के साथ साम्य की भावना करतीं-करतीं, वे उन्मुक्त स्वभाव की भी हो गई थीं। सूर ने श्रीकृष्ण को बालरूप में भी अंकित कर उनकी बाल-लीलाओं का बड़ा ही विशद वर्णन किया है, किन्तु मीराँ, कदाचित् अपने गहरे दाम्पत्यभाव के कारण, उधर उतनी आकृष्ट न हो सकीं। सूर ने श्रीकृष्ण की अन्य लीलाओं का भी यथा-स्थान सुन्दर व विस्तृत वर्णन किया है, किन्तु मीराँ, इसकी अपेक्षा कहीं अधिक, उनके रूप-वर्णन एवं उनके साथ अपने तादात्म्य स्थापन में ही संलग्न दीखती हैं। सूर ने, इसी प्रकार, श्रीकृष्ण का सौन्दर्य वर्णन करते समय उनके शील एवं शक्ति को भी यथेष्ट स्थान दिया है। किन्तु प्रेमिका मीराँ का ध्यान, स्वभावतः उधर उतना नहीं जाता। प्रेम के प्रति प्रदर्शित सूर व मीराँ की भावनाओं में भी हमें कुछ न कुछ विभिन्नता का ही आभास मिला करता है। मीराँ द्वारा प्रदर्शित प्रेम में, कदाचित् उसके मूलतः विरह-गर्भित होने के कारण, सदा "मिल बिछुड़न जनि होय" की ही आशंका बनी रहती है और उसी प्रकार, उनके विरह में भी हमें बहुधा "प्रेम नदी के तीरा" पर होने वाले मिलन की ही झलक दीख पड़ती है, परन्तु सूर हमें सदा मिलन के अमिश्रित आनन्द तथा विरह की अमिश्रित वेदना के ही भाव दर्शाया करते हैं। सूर में जहाँ-जहाँ मिलन की दशा है, वहाँ-वहाँ लीला वा क्रीड़ाओं का भरपूर सुअवसर मिल जाता है और, उसी प्रकार, जहाँ विरह की भावना जागृत हुई है वहाँ वह नितान्त एकरस ही बनी रह गई है। सूर की रचनाओं में ऐसे स्थल कम मिलेंगे

जहाँ चणिक विरह के वर्णन हों। सूर ने, कदाचित् शृंगार के सर्वश्रेष्ठ
होने के नाते, संयोग व वियोग दोनों के ही वर्णन पूर्ण सफलता के साथ
हैं, किन्तु मीराँ का विप्रलंभ-वर्णन ही बहुत उत्कृष्ट उतरा है। सूर के पदों
इसी प्रकार कला-पत्त एवं हृदय-पत्त दोनों ही प्रायः एक ही भाँति प्रबल
किन्तु मीराँ की रचनाओं में हृदय पक्ष की ही प्रधानता है और इस अंतर
कारण बनने में कदाचित् मीराँबाई के स्त्रीत्व का ही अधिक हाथ है।

सूरदास एवं मीराँबाई के बीच एक बहुत बड़ा अन्तर इस बात का
कि सूर का अन्तिम लक्ष्य अपने इष्टदेव के समक्ष केवल 'लीलापदगान'
का ही जान पड़ता है, किन्तु मीराँ का ध्येय अपने 'सां
के प्रति एक तड़पते हृदय की 'दरद' को भी प्रकट करना
मीराँबाई की तुलना हम इस बात को दृष्टि में रखते
विरही, कवि घनानंद के साथ कहीं अधिक उपयुक्त ढं
कर सकते है। घनानंद का जन्म मीराँबाई से लगभग दे
से भी अधिक वर्ष पीछे हुआ था[१] और उनकी रचनाएँ, पदों में न हो
अधिकतर कवित्त व सवैयों में ही पाई जाती हैं। दोनों का प्रेम,
ईश्वरोन्मुख होने के कारण, अत्यन्त गूढ़ किन्तु नैसर्गिक था और दोनों ने,
गहरे अनुभव के कारण, आत्मसमर्पण को ही अपना सीधा व सरल मार्ग
रक्खा था। दोनों की विरह-वेदना अत्यन्त तीव्र जान पड़ती है, किन्तु
गहरी पीर का भी प्रकाशन वे किसी आवेश के साथ करते हुए नहीं दीखते
अपने हृदय के मधुर भाव को सहर्ष वहन करते हैं और ऐसी दशा में, वे
कुछ बोल भी उठते हैं तो किसी कटुता के भाव से नहीं, केवल आत्मीयता
नाते और उपालम्भ के ही रूप में। दोनों के विरह-वर्णन में मानसिक वेदना
प्रधानता है, किन्तु घनानन्द ने शारीरिक यातना की उत्कटता को भी बड़े
ढंग से दर्शाया है। घनानंद ने 'विरह-लीला' की 'अजौं धुनि बाँसरी की कान

मीराँबाई व घनानन्द तथा नागरीदास

---

१ परशुराम चतुर्वेदी, 'विरही कवि घनानंद', हिन्दुस्तानी (भाग
२, १९३१) हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग।

आदि पंक्तियों एवं 'सुधि सब भाँतिन सों बेसुधि करति है' में पूर्ण होने वाले कवित्त द्वारा अपने स्मृति-जनित कष्ट का जो स्पष्ट व सुन्दर शब्द-चित्रण किया है वह, कदाचित्, एकदम बेजोड़ है। इसी प्रकार उनके 'बावरे' 'मन' की दशा और 'धरनी में धँसौ कै अकासहिं चीरौं' उद्वेगमयी उक्ति में जिस अनोखी, किन्तु स्वाभाविक, भावनाओं का दिग्दर्शन कराया गया है उनका अन्यत्र मिलन दुर्लभ है। तो भी विरह की गहरी अनुभूति और उसके प्रदर्शन की स्पष्टता में मीराँ घनानंद से किसी प्रकार घटकर नहीं दीखतीं। विरह-निवेदन की क्रिया में घनानंद मीराँ से अवश्य बढ़ जाते हैं। घनानंद के विरह-निवेदन में एक असमर्थता व निरुपायता-प्रेरित आश्रित का अनूठा अनुरोध है जो विवशता से भरी हुई मीराँ की बेचैनी से भी कहीं अधिक प्रभावशाली बन जाता है। उसके एक-एक शब्द से किसी बैठते हुए दयनीय हृदय की दर्द भरी आह निकलती जान पड़ती है। घनानंद अपने विरह-निवेदन में, वास्तव में, अद्वितीय हैं। घनानंद में कलापक्ष भी मीराँ से कहीं अधिक स्पष्ट है और कवि-कौशल में वे मीराँ से अधिक प्रवीण हैं। इसी प्रकार घनानंद की भाषा साफ़-सुथरी व निखरी हुई ब्रजभाषा है किन्तु मीराँ के पदों में अनेक भाषाओं की पुट देख पड़ती है। मीराँबाई के साथ कभी-कभी घनानंद के प्रियमित्र भक्त नागरीदास की भी तुलना की जाती है। नागरीदास ने, श्रीराधाकृष्ण की भक्ति से प्रेरित हो अनेक सुन्दर ग्रन्थों की रचना की है। वे अपने प्रेम की तन्मयता में बहुत कुछ मीराँ के ही समान थे और उनका भी हृदय, मीरा की ही भाँति, अलौकिक सौन्दर्य द्वारा प्रभावित था। परन्तु उनके प्रेमोन्माद-प्रदर्शन पर सूफ़ियों अथवा सम्प्रदाय वालों की छाप मीराँ से कहीं अधिक दीख पड़ती है।

मीराँबाई की तुलना, उनके अनेक पदों द्वारा प्रदर्शित रहस्योन्मुख भावनाओं के कारण, सूफ़ी कवियों से भी की जा सकती है। सूफ़ी लोग दार्शनिक दृष्टि से अद्वैतवादी होते थे और अपनी रचनाओं द्वारा सदा आत्म-विद्या, आचार व नीति के उपदेश दिया करते थे। उनकी वर्णन शैली भी, उनकी मसनवियों के कारण, किसी भी बात को 'कथाच्छलेन' कहनेवाली परिपाटी का ही अनुसरण करती थी। तो

मीराँबाई व सूफ़ी कवि

भी अपनी साधनाओं के विचार से वे कई बातों में, वैष्णव भक्तों से भी बहुत
कुछ समानता रखते थे। उनका 'महबूब' माधुर्य-भाव के 'प्रियतम' का
अन्य रूप था और उनकी 'शरीअत', 'तरीक़त 'हक़ीक़त' व 'मारफ़त' ना
की चार अवस्थाओं में भी एक प्रकार से, वैष्णवों की नवधाभक्ति के प्रायः स
भाव आ जाते थे। दोनों के लिए अन्तःकरण की निर्मलता एवं प्रेम
एकांतिकता अपेक्षित थी और दोनों ही अपने इष्टदेव के रूप की झलक स
देखा करते थे। दोनों को ही भजन व कीर्तन प्रिय थे और मौलाना रूम द्वा
प्रचारित मौलवी पंथ में मीरा की भाँति प्रेमावेश में आकर नृत्य करना
प्रचारित था। सूफ़ी अपनी 'मारफ़त में' वैष्णवों के आत्मनिवेदन की ही भाँ
पूर्ण आत्मसमर्पण का भाव रखते थे। मौलाना रूम के शब्दों में वे सदा
यही कहा करते थे;

मन ध्ज़ आज़ल तुरा तनहा गुज़ीनम्।
रवादारी के मन ग़मगीं नशीनम् ॥
... ...
बजुज़ आँचे तू ख़ाही मनचे ख़ाहम्।
बजुज़ आँचे नुमाई मनचे बीनम् ॥
... ...
मरा गर तू चुनादारी चुनानम्।
मरा गर तू चुनी ख़ाही चुनीनम् ॥ आदि[1]. ॥

अर्थात् सारे संसार में केवल एक तुझको ही प्यार करता हूँ और तेरी ही इ
के अनुसार मैं अकेला बैठा वक़्त गुज़ारता हूँ। जो कुछ भी तेरी इच्छा है उस
अतिरिक्त मेरी कोई दूसरी इच्छा हो ही क्या सकती है ? जो कुछ तू मु
दिखाता है उसके अतिरिक्त मैं और कुछ देख ही क्या सकता हूँ ?...तू मु
जिस प्रकार भी रखना चाहे उसी प्रकार रहूँ, इस भाँति रक्खे तो ऐसे ही
अन्य प्रकार से रक्खे तो वैसे ही। कहना न होगा कि इन पंक्तियों में

---

[1]श्री बाँकेविहारी व श्री कन्हैयालाल : 'ईरान के सूफ़ी कवि' पृष्ठ २०

गिरधर के घर' जाने को उद्यत और उसके ऊपर अपना सर्वस्व तक 'बार-बार बलि' करने वाली मीरां के हार्दिक भाव स्पष्ट रूप से लक्षित होते हैं (देखो पद १७)।

वैष्णवों का अवतारवाद सूफियों के सर्वात्मवाद से सर्वथा भिन्न प्रतीत होने पर भी, अपने मूर्त्तिवाद एवं नवधाभक्ति की रहस्य भरी भावनाओं के कारण, वस्तुतः व्यापक रहस्यवाद के ही अन्तर्गत आ जाता है और तदनुसार, इन दोनों आदर्शों पर अलग-अलग चलनेवाले साधकों की विचार-धाराओं व चेष्टाओं में भी हमें कोई मौलिक अन्तर नहीं दीख पड़ता। निर्गुणवाद एवं सगुणवाद में, व्यापक दृष्टि से विचार करने पर, कोई भेद नहीं है। अस्तु,.........

मीरांबाई की रचनाओं पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करते समय इसी कारण, हमारे सामने, उक्त विवेचना के अनुसार, हिन्दी कवि जायसी का भी नाम स्वभावतः आ जाता है। मलिक मुहम्मद जायसी अवस्था में मीरांबाई से कदाचित् कुछ बड़े थे और इनकी मृत्यु के अनन्तर बहुत दिनों तक वे जीवित भी रहे थे। उन्होंने दोहा चौपाइयों में 'पद्मावत' नामक प्रेमगाथा की रचना की और, उक्त मसनवी पद्धति के अनुसार, उसके द्वारा अपने सूफ़ी सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण भी किया। जायसी की उक्त रचना एक प्रबन्ध काव्य है और उसकी भाषा भी अवधी है, किन्तु मीरा ने अपने फुटकर पदों की रचना अधिकतर व्रजभाषा एवं राजस्थानी में की है। जायसी एवं मीरां दोनों द्वारा वर्णित प्रेम आरम्भ से ही विरह-गर्भित व अलौकिक है और दोनों ने ही उसके कारण-स्वरूप किसी पूर्व-सम्बन्ध की ओर संकेत किया है। जायसी ने पद्मावती से 'सपन विचारूँ' बतलाती हुई सखी द्वारा उसका 'पच्छिउँ खंड कर राजा' के साथ विवाह होना निश्चित कहलाया है और इस बात को 'मेटि न जाइ लिखा लिखा'[1] द्वारा अधिक दृढ़ भी करा दिया है और, प्रायः इसी प्रकार, मीरां ने भी अपने 'सुपनें में परण' जाने का विवरण देखकर उसका समर्थन 'पूर्व जनम भाग' द्वारा ही किया है (देखो पद २१) तथा बार-बार अपने और गिरधर

मीरांबाई व जायसी

---

[1] जायसी ग्रन्थावली, (का० ना० प्र० सभा) पृ० ६२।

की 'प्रीत पुराणी', का उल्लेख भी किया है। इसके सिवाय जिस प्रकार
प्रेम गाथा में, जायसी ने पद्मावती को प्रेमपथ पर लाने में 'गुरुसुआ' से सहा
ली है उसी प्रकार मीरां ने अपने इस ओर प्रवृत्ति होने का सम्पूर्ण श्रेय
रैदास को दिया है—मीरां ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि उनके 'सुरत सहद
देते ही 'मैं मिली जाय पाय पिय अपना' (देखो पद १५६)।

सैद्धान्तिक दृष्टि से बहुत कुछ साम्य होने पर भी; इन दोनों कवियों
रचनाओं में, परिस्थिति भेद के कारण, पूरी भिन्नता भी दीख पड़ती
उदाहरण के लिए जायसी ने अपने प्रबन्ध-काव्य के साधन द्वारा प्रेमी
प्रेमपात्र दोनों पक्षों—की दशा व पारस्परिक आकर्षणादि सम्बन्धी व्यापा
चित्रित करने की चेष्टा की है, किन्तु मीराँ ने केवल एक पक्ष अर्थात् प्रेमिक
ही अवस्था को—और वह भी स्वयं उसी के शब्दों द्वारा—अंकित किया
जायसी के प्रेम का रूप; इसी कारण, अधिक व्यापक तथा सर्वाङ्गीण है
मीराँ का प्रेम, कुछ व्यक्तिगत सा दीख पड़ने से जैसे किसी माधुर्य-भाव के
के लिए ही आदर्श बन कर रह जाता है। जायसी की उक्त रचना के अ
एक राजा अथवा उसकी रानी के ही विरह का यथास्थल वर्णन है, किन्तु
उपकरण बन कर आये हुए प्राकृतिक दृश्यादि के प्रसङ्ग उसके द्वारा स
विश्व के मौलिक एकता का सन्देश देते हुए से जान पड़ते हैं। जाय
अपने बारह-मासा वर्णन द्वारा भी, इसी प्रकार, नागमती की विरहद
साथ-साथ एक आदर्श हिन्दू रमणी के हृदय की कोमल वृत्तियों
परिचय बड़ी सफलता पूर्वक दे डाला है। मीरांबाई ने भी अपने प
(११६) द्वारा बारह-मासे का वर्णन किया है, किन्तु उन्होंने बारहों मह
भिन्न-भिन्न प्राकृतिक घटनाओं के व्याज से अपने विरह-व्यथित हृदय
दशा संक्षिप्त रूप से निवेदित की है। इनके विरह-वर्णन में वाह्य-प्र
परिस्थिति की ओर उतना ध्यान गया हुआ नहीं दीखता जितना अन्तः
अथवा अपनी आन्तरिक वेदना की ओर। इनकी वृत्ति अत्यन्त अन्तर्मु
वहिर्मुखी होने की दशा में वह परम्परानुसरण मात्र से अधिक प्रयास
में असमर्थ हो जाती है—बाहर स्वच्छन्द विचरण करने के लिए बा

उसे कभी अवकाश ही नहीं मिलता।

जायसी की 'पिउ हिरदय महँ भेंट न होई' और मीराँ की 'गँगन मँडल पै सेज पिया की किस विध मिलणा होइ' (पद ७२) पंक्तियों की तुलना करने पर हमारा ध्यान संत कवियों की ओर भी सहसा आकृष्ट हो जाता है। संत कवियों में नामदेव मीराँ से कदाचित् सवा दो सौ से भी अधिक वर्ष पहले उत्पन्न हुए थे और उनकी रचनाएँ, हिन्दी में न होकर, मराठी भाषा में हैं। किन्तु, साकारोपासना के प्रति अनुकूल मनोवृत्ति एवं भजनभाव में पूर्ण आस्था रखने के कारण, वे मीराँ के बहुत कुछ समान थे। उनका अपने स्वामी 'विट्ठल' के प्रति उतना ही प्रगाढ़ अनुराग था जितना मीराँ का अपने 'प्रियतम' 'श्री गिरधरलाल' की ओर और वे उनकी मूर्त्ति के सामने खड़े हो और हाथों में करताल लेकर, कदाचित् उसी भाँति आवेशमय कीर्तन करते थे जिस प्रकार मीराँ 'ज्यूँ त्यूँ वाहि' रिझाने में प्रवृत होती थीं। नामदेव के 'सब गोविंद हैं, सब गोविंद बिन नही कोई' १ से भी हमें मीराँ के 'सब घट दीसै आतमा' (पद १४८), का स्मरण हो आता है।

मीरांबाई व नामदेव तथा रैदास

परन्तु मीराँ के हृदय की असाधारण कोमलता व 'परम वैराग' में उनकी पूर्ण निष्ठा देखकर उनका रैदास जी के साथ भी तुलना करना अनुचित नहीं जान पड़ता। रैदास जी कदाचित् विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य में उत्पन्न हुए थे और मीराँबाई का जन्म विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के मध्य में हुआ था, किन्तु मीराँ के समय राजस्थान की ओर अधिकतर रैदासी संतों द्वारा ही, संत मत का प्रचार होते रहने के कारण, उन्होंने रैदासजी को अपने प्रत्यक्ष गुरु की भाँति समझ रखा था। रैदास जी, संसार की गति विधि का अनुभव करके उसके कारण, अत्यन्त दुखी थे और, सांसारिक जनता की विविध विडम्बनाओं द्वारा मर्माहत से होकर, उन्होंने 'हम जानी प्रेम, प्रेम-रस जाने नौ विधि भगति

---

१ 'नामदेवा जी की गाथा' (पृ० ५२१)।

कराई'१ के सिद्धान्त को ही अधिक महत्त्व दिया था तथा, परमात्मा के आत्म-निवेदन करते समय भी, वे अधिकतर 'जो हम बांधे मोह फांस, प्रेम बँधनि तुम बांधे'२ जैसे ही उद्‌गार प्रकट किया करते थे। प्रेम-सा मीरां भी, प्रायः उसी प्रकार, संसार 'को कुवधि को भांडो' समझा करती और लोगों को सदा व्यर्थ के झमेलों में ही अपना 'जनम गँवाता' देख उन मूर्खता-पूर्ण बुद्धि पर तरस खाकर कभी-कभी 'रोई' अर्थात् रो तक करती थीं। रैदासजी की 'परम वैराग' वाली भावना से भी मीरांबाई के 'स वैराग' की बहुत बड़ी समानता है। इसी प्रकार रैदासजी के प्रसिद्ध पद ' तुम गिरिवर तउ हम मोरा', आदि की निम्नलिखित पंक्तियों में हमें मीरां ही हृदय अपने भाव व्यक्त करता हुआ जान पड़ता है, जैसे—

"सांची प्रीति हम तुम सिउ जोरी, तुम सिउ जोरि अवर सँगि तोरी।
जहँ-जहँ जाउँ तहाँ तोरी सेवा, तुम सो ठाकुर अउरु न देवा॥"३

किंतु रैदासजी के साथ मीरां के भावसाम्य की उक्त सामग्रियों को देखते भी, हम कई बातों में, उन्हें संत परम्परा के प्रमुख प्रवर्त्तक कवीर साहब ही कहीं अधिक प्रभावित पाते हैं। कबीर साहब रैदासजी समकालीन थे और, कदाचित्, वय में कुछ उनसे बड़े थे। हिन्दी वाङ्मय के अन्तर्गत विशेष कर उन्हीं के आधार पर, संतमत का पीछे से प्रचार में आना बतलाया जाता है।

मीरांबाई व कबीर

कबीर एवं मीरां की रचनाओं में भाव-साम्य के उदाहरण प्रचुर मात्रा में दीख पड़ते हैं।४ वास्तव में कबीर एवं मीरां—इन दोनों—की ही भावनाएँ मुख्यतः अपने निजी अनुभव पर आश्रित थीं और दोनों में स्वातन्त्र्य-प्रेम तथा निर्भयता के भाव कूट-कूट कर भरे थे। ये दोनों अपने-अपने सांसारिक व सामाजिक बन्धनों

---

१ 'रैदास जी की बानी', पृ० ४।
२ 'श्री गुरु ग्रंथ साहबजी', पृ० ६५७।
३ श्री गुरुग्रंथ साहब जी, पृ० ६५७-८।
४ इसके लिए 'पदावली' की 'की टिप्पणी' भी देखी जा सकती है।

परिस्थितियों को सदा उपेक्षा की दृष्टि से ही देखते रहे और सर्वसाधारण की कड़ी आलोचनाओं का भी इन दोनों ने पूर्णतया तिरस्कार किया। मीराँ ने अपने पदों द्वारा सदा दाम्पत्य-भाव के गीत गाये और कबीर ने भी, बहुत कुछ उसी ढंग से, माधुर्य भाव से ओत-प्रोत अनेक दोहों चौपाइयों एवं पदों की भी रचना की। मीरां जिस प्रकार 'जगदीस' द्वारा 'सुपने में' अपने 'परण' दिये जाने की ब्यौरेवार कहानी कहती हैं (पद २७), प्रायः उसी प्रकार कबीर भी 'पुरिष एक अविनासी' द्वारा अपने 'ब्याहि' दिये जाने की प्रत्यक्ष विधि का वर्णन करते हैं[१] तथा जिस प्रकार मीरां उनके प्रति 'ओढ़ी चूनर प्रेम की, गिरधर जी भरतार' (पद ३०) कहती हैं, प्रायः उसी प्रकार कबीर भी 'हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया' कहकर अपने 'राम' से 'मिलन कै ताईं', 'स्यंगार किये' बैठे दीख पड़ते हैं[२] और जिस प्रकार मीरा अपने 'साहिब' को पाकर उन्हें अपने 'नैनन बनज' बसाने को उद्यत हैं और उन्हें देखती हुई भयवश पलक तक मारना नहीं चाहतीं (पद १२), प्रायः उसी प्रकार कबीर भी इस बात के लिए लालायित हैं कि उन्हें किस प्रकार अपने 'नैनां अंतरि' स्वागत करके बिठाऊँ और 'निस-दिन' 'निरषा' भी करूँ।[३] इसी प्रकार यदि मीरां के 'कलेजो' को 'विरह भँवग' डँस देता है (पद ६१) तो कबीर के 'साधू' के विषय में भी वही 'विरह भुवंगम पैसिकरि' 'कलेजै घाव' कर देता है[४] तथा यदि मीरां की 'काया' को 'विरह नागण' डस लेती है और उसके विष की प्रत्येक 'लहर' पर उनका 'जिव' जाने लगता है (पद ७९) तो कबीर के भी 'तनमन' को प्रायः उसी प्रकार की 'भुजङ्ग भामिनी' ऐसे डसती हैं कि लहरों का कोई वारापार ही नहीं रहता[५] और यदि 'विरहणि' मीरां सारे 'जगत के सोने पर भी जागती बैठी हुई 'अँसुवन की

---

१ 'कबीर ग्रन्थावली, पद, १ पृ० ८७।

२ वही, पद ११७, पृ० १२५।

३ वही, साखी पद २, पृ० १६।

४ वही, साखी पद १८, पृ० ६।

५ वही, पद ३०८, पृ० १६२।

माला' गूंथा करती हैं (पद ८६) तो 'दुखिया दास कबीरु' भी 'सुखि
संसार' को सदा चैन पूर्वक खाता और सोता पाकर जागते व रोते रहा कर
हैं।१ मीरां जिस प्रकार एक 'रंगमहल' की रमणी की स्थिति में रहकर अप
प्रियतम के वियोग में निरंतर तड़पा करती हैं, ठीक उसी प्रकार, कबीर
आत्मा भी अपने 'कायामहल' के भीतर, बंद दुलहिन की भांति, सदा वि
वेदन सहा करती है।

परन्तु कबीर का प्रेम, तो भी किसी कोरे भावुक की भावुकता मात्र
है और न, इसी कारण, उसमें मीराँ के स्त्री-सुलभ हृदय के उन्माद को ही स्था
है। वह, मूलतः, अद्वैतवाद के आत्मानुभव द्वारा अनुप्रा
वही एवं दास्य भाव की भावना द्वारा भी व्यवहारतः, प्रभावित हो
के कारण अधिक संयत व निस्तरंग है। कबीर की प्रेम-प्र
शनशैली में, इसी कारण अन्य रहस्यवादी कवियों की जैसी कल्पना एवं संके
को ही प्रधानता दी गई है। उसमें मीरां की जैसी वास्तविक भावनाओं
प्रत्यक्षीकरण नहीं है बल्कि भावों की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए अन्योक्तियों
से काम लिया गया है। कबीर के राम की भावना भी इसी प्रकार, निर्गुण
सगुण दोनों से 'परे' किसी 'परमपद' के द्वारा प्रभावित है, किन्तु मीराँ के '
अविनासी' में उक्त दोनों का सामंजस्य है तथा यदि आत्मज्ञानी कबीर
लय अपने 'राम' के साथ 'ज्यूँ जल मैं जल पैसि न निकसै, त्यूं ढुरि' वा
मिल कर एक हो जाना है तो प्रेम-पुजारिन मीरां अधिकतर अपने 'पिय
पलँगा' पर अन्त में जाकर 'पौढ़ना' और उस हरि के रङ्ग में रञ्जित हो
ही चाहती हैं (पद १४) मीरां को कबीर की भांति न तो अवतार-वाद के
अनास्था है और न मूर्त्तिवाद से ही कोई विरोध है—वे अपने 'गिरधरगोपा
को नित्य नाच गाकर रिझाना तक पसन्द करती हैं। मीरांबाई सन्त कवि
द्वारा अनुमोदित आत्मानुभव सम्बन्धी साधना मार्ग से भी, कदाचित

१कबीर ग्रन्थावली, साखी ४५, पृ० ११।
२वही, पद ४०२, पृ० २२१।

परिचित रहीं, किन्तु मुख्य रूप से उन्होंने अपने लिए कीर्तन को ही स्वीकार किया। कहना न होगा कि पुरुष कबीर द्वारा माधुर्य-भाव का निर्वाह कवि की प्रतिभा अथवा अभिनय चातुर्य का भी परिणाम हो सकता है, किन्तु मीराँ का माधुर्यभाव एक रमणी-हृदय की ही सच्ची मनोवृत्ति है जिसे स्वरूप प्रदान करने में उनके जीवनवृत्त की अनेक शृंखलाबद्ध घटनाओं ने भी अपना हाथ बँटाया था।

मीराँबाई की तुलना हम, इसी प्रकार, उक्त पुरुष भक्तों व कवियों के सिवाय कतिपय सन्त, भक्त व प्रेमी की श्रेणियों वाली कवयित्रियों के साथ पृथक् रूप से, भी कर सकते हैं।

मीराँबाई व सन्त तथा भक्त स्त्री कवि

हिन्दी साहित्य के इतिहास में मीराँबाई की तुलना में आने योग्य उनके पूर्व की किसी भी कवयित्री का नाम हमें नहीं मिलता। उनके अनन्तर आनेवाली सन्त श्रेणी की कवयित्रियों में अठारहवीं ईस्वी शताब्दी की सहजोबाई व दयाबाई के नाम लिये जाते हैं। ये दोनों आपस में गुरु बहनें थीं और अपनी भावनाओं के अनुसार, अपने गुरु श्री चरणदास जी को स्वयं भगवान् से भी ऊँचा स्थान देती हुई जान पड़ती थीं। इनमें से सहजोबाई ने प्रेम एवं दयाबाई ने विरक्ति का विशेष रूप से विशद वर्णन किया है। सहजोबाई द्वारा किया हुआ 'प्रेम दिवाने' का वर्णन बहुत सुन्दर है और उनके पद 'मेरे इक सिर गोपाल और नहीं कोउ भाई',[1] आदि में मीराँ के 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई', आदि (देखो पद १९) की छाप, स्पष्ट लक्षित होती है, किन्तु तो भी इनकी पंक्तियाँ सर्वत्र सन्त-मत से ही पूर्ण प्रभावित हैं और उनमें व्यक्त किया हुआ हृदय-पक्ष मीराँ की गम्भीरता को प्राप्त करने में असमर्थ है। इसी प्रकार भक्तश्रेणी की कवयित्रियों में इनके साथ तुलना के लिए रसिक बिहारी व बनीठनी जी (मृ० सं० १८२२ वि०=सन् १७६५ ई०) तथा सुन्दर कुँवरि बाई (ज० सं० १७९१ वि०=सन् १७३४

---

[1] मीराँबाई, सहजोबाई, दयाबाई का पद्यसंग्रह (साहित्यभवन, प्रयाग) पृ० ५३।

ई०) के नाम लिए जाते। इनमें से बनीठनी जी प्रसिद्ध भक्त नागरी की दासी और पासवान थीं और सुन्दर कुँवरिबाई उन्हीं की बहिन थीं, अतएव इन दोनों में एक प्रकार से भावज ननद का सम्बन्ध था। बनीठनी जी की भाषा अधिक साफ़ सुथरी है और उनके पदों में मीराँबाई की शैली का प्रभाव स्पष्ट दीख पड़ता है, किन्तु उनके भावों में उस तन्मयता का अभाव है जिसके कारण मीराँ की कविता उच्च श्रेणी की समझी जाती है। सुन्दरि कुँवरिबाई के जीवनकाल की अनेक घटनाएँ, बहुत कुछ मीराँबाई की ही भाँति पीहर व सुसराल दोनों जगह अत्यन्त कलह रंजित व-बाधापूर्ण थी[1] किन्तु मीराँबाई के समान उन्होंने इन जैसी विपत्तियों द्वारा वैसे वैराग्य की शिक्षा ग्रहण नहीं की और न एक सुयोग्य कवि परिवार में पली जाने पर भी उन्होंने वैसी प्रतिभा दिखलाई। उन्होंने इन रचनाओं द्वारा भगवान् की लीलाओं का वर्णन किया है और भिन्न-भिन्न छन्दों के प्रयोग द्वारा अपना कविकौशल भर ही दिखलाया है। भगवल्लीलाओं के वर्णन में इनसे कहीं अधिक सफल हम गंगाबाई को कहेंगे जिनका जीवन काल सं० १६२८ वि० (सन् १५७१ ई०) से लेकर १३८ वर्षों तक बतलाया जाता है[2]। गंगाबाई वल्लभ सम्प्रदाय की अनुगामिनी थीं और कहा जाता है कि उन्हें भगवल्लीलाओं की प्रत्यक्ष अनुभूति भी हुआ करती थी। वे उन्हीं घटनाओं को अपने पदों द्वारा वर्णन कर सदा श्रीनाथ जी को समर्पित कर देती थीं और, कदाचित्, इनका रचयिता स्वयं भगवान को ही मानकर इनकी अन्तिम पंक्तियों में, अपने नाम की जगह, प्रायः सर्वत्र 'विट्ठल गिरधरन' लिखा करती थीं। परन्तु जान पड़ता है, कि, उन्होंने लीला वर्णन के अतिरिक्त और कुछ नहीं लिखा। उनकी उपलब्ध रचनाओं में हमें उच्चकोटि के कतित्व के उदाहरण अवश्य मिलते हैं, किन्तु मीराँबाई जैसी निजी अनुभव की सफल अभिव्यक्ति के दर्शन उनमें हमें कहीं नहीं होते।

---

[1] 'महिला मृदुवाणी' पृ० १०५-६।

[2] डा० पी० द० बड़थ्वाल : 'गंगाबाई,' (सुधा, वर्ष ६, खंड २ संख्या पृ० ६३)।

प्रेमी की श्रेणी में आनेवाली सफल हिन्दी कवयित्रियों में, इसी प्रकार प्रसिद्ध 'आलम'कवि की प्रेयसी 'सेख' का नाम लिया जा सकता है। इन दोनों प्रेमियों का कविता-काल, कदाचित् अधिकतर अठारहवीं ईस्वी शताब्दी में पड़ता है और ये दोनों रीति-कालीन हैं। 'सेख' ने, इसी कारण, अपनी प्रायः सभी रचनाओं में अपने समय की स्वीकृत परम्परा का ही अनुसरण किया है तो भी इनकी उपलब्ध कविताएँ कुछ न कुछ कृष्ण भक्ति द्वारा प्रभावित भी जान पड़ती हैं। इनकी कविताओं में पूर्ण प्रवाह व कवित्व की झलक आने पर भी मीराँ के अलौकिक प्रेम की छटा कहीं नहीं दीख पड़ती और इनका लीला-वर्णन भी प्रायः सब कहीं रूढ़िसंगत होकर ही रह गया है।

मीराँबाई व सुभद्रा तथा महादेवी

मीराँबाई की तुलना यदि हम आजकल की वैसी कवयित्रियों के साथ करने लगें तो भावों की सुकुमारता एवं हृदय की तन्मयता की दृष्टि से, सुभद्राकुमारी चौहान को उनके बहुत कुछ निकट पायेंगे। श्रीमती चौहान ने श्रद्धा, वात्सल्य-भाव एवं देश-प्रेम सम्बन्धिनी अनेक सुन्दर कविताएँ लिखी हैं और उनके द्वारा अपनी स्त्री-सुलभ कोमल वृत्तियों के व्यक्तीकरण में उन्हें अच्छी सफलता भी मिली है। उनके हृदय में भावुकता है, शब्दों में सरलता है और पद्यों में प्रवाह की कमी नहीं, किन्तु मीराँ के साथ उनकी तुलना करते समय कुछ अन्तर का भी आभास होने लगता है। सुभद्रा के हृदय में, अधिक से अधिक एक संयोगवश ठगी वा ठुकरा दी गई प्रेमिका की कसक है, उसमें मीराँ जैसी विरहिणी की व्यापक वेदना लक्षित नहीं होती, उसमें पुनः किसी प्रकार स्वीकृत कर लिए जाने की प्रबल उत्कंठा है, किन्तु मीराँ जैसी की बेचैनी का अभाव है; और इसी प्रकार, उसमें आत्म-निवेदन वा आत्मसमर्पण के भी सुन्दर भाव संचित हैं, किन्तु उनके साथ मीराँ का जैसा आत्मीयता जनित अनूठा उमंग नहीं दृष्टिगोचर होता। तो भी स्मृति-परिचय तथा त्याग के भाव सुभद्रा की कविताओं में बड़ी स्वाभाविकता के साथ व्यक्त किये गये हैं और उनमें देशभक्ति की भी भावनाएँ भरी हुई हैं।

मीराँबाई की विरक्ति अथवा 'भगति-रसीली' की अनन्यता कुछ भिन्न क्षेत्र की बातें हैं जिस विचार से उनके साथ, यदि हम चाहें तो, महादेवी वर्मा का

नाम ले सकते हैं। महादेवी वर्मा ने बहुत सी कविताएँ लिखी हैं और कदाचि
अभी आगे भी लिखती ही जायँगी। उनकी विचारधारा एवं रचना-कौशल
अभी बहुत कुछ परिवर्तन वा सुधार की सम्भावना है। परन्तु उपलब्ध कवि
ताओं के आधार पर उनके विषय में हम अब भी कुछ न कुछ विचार कर सक
हैं। महादेवी के हृदय में भी करुणा का, कुछ मीराँ जैसा ही, संचार है
प्रायः उन्हीं की भाँति वह अनुभूति पर आश्रित भी समझ पड़ता है। वर्तमा
संसार उनके मन के अनुकूल पड़ता नहीं दीखता, अतएव, उसकी प्रचलि
व्यवस्थाओं से मानो ऊब कर वे एक अपनी नवीन काल्पनिक सृष्टि की रच
में प्रवृत्त हो, स्वप्न लोक में विचरण करने लगती हैं। परन्तु, ऐसी चेष्टाओं
लगकर उनके बहुधा दार्शनिक आदर्शों के फेर में पड़ जाने के कारण, उन
कविताओं में क्लिष्ट कल्पना का अंश अधिक आ जाता है और भावों की न्यूनाधि
अस्पष्टता के कारण, उनमें उनके अभीप्सित माधुर्य की सफल अभिव्यक्ति
नहीं हो पाती। महादेवी की भी वृत्ति प्रायः मीराँ जैसी ही अन्तर्मुखी
परन्तु उसे, मीराँ की भाँति, अपनी रहस्यमयी भावनाओं तक ही केन्द्रित रख
वे, कदाचित् 'मगन' हो जाना नहीं जानतीं। वे मीराँ से कहीं अधिक चिन्त
शील होने के कारण, अपने भावों के विश्लेषण एवं उपयुक्त चित्रण पर भी
जाती हैं और कल्पना-बाहुल्य उनकी पंक्तियों को बहुधा भाराक्रान्त सा क
देता है। महादेवी की कविताओं में भी, इसी प्रकार, मीराँ की भाँति, इसे प्र
व संगीत के अनेक उदाहरण मिल जाते हैं, किन्तु उनका अधिकांश, वास्तव
एक वैराग्यशीला महिला की अनुभूत भावनाओं का सुव्यवस्थित संक
है। मीराँ की कविता एक भुक्त-भोगिनी के हृदय की सच्ची कहानी है।

मीराँबाई के साथ सब से अधिक समानता रखने वाली कवयित्रियों
तामिल प्रान्त की आलवार भक्तिन गोदा का भी नाम लिया जाता है जो अ

मीराँबाई व गोदा

लगभग साढ़े सात सौ वर्ष पूर्व सुदूर मदुरा ज़िले के 'विल्लि
पुत्तूर' ग्राम-निवासी पेरी वा विष्णुचित्त आलवार को, श्या
वटपत्रशायी-भगवान् की पूजा के लिए पुष्प-चयन करते सम
किसी तुलसी वृक्ष के निकट एक अलौकिक बालिका के रू

सर्व प्रथम, प्राप्त हुई थी और जिसका नाम भी, इसी कारण, पहले पहल 'कोदई' अर्थात् सुमनों की माला की भाँति 'कमनीय' रक्खा गया था। बड़ी होने पर 'कोदई' भगवान् के निमित्त गुँथी हुई मालाओं को कभी-कभी स्वयं अपने गले में भी चुपके-चुपके डालने लगी जिससे अप्रसन्न होकर विष्णुचित्त को उसे ऐसा करने से, डाँट कर, मना करना पड़ा, किन्तु पीछे जब उन्हें जान पड़ा कि भगवान् को उसकी पहनी हुई ही मालाएँ अधिक पसंद हैं तो उन्होंने उसे अनुमति प्रदान कर दी। 'कोदई' के कोमल हृदय पर इस घटना का एक बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा, उसमें भगवान् के प्रति अलौकिक प्रेम का संचार हो आया और वह तब से, उत्तरोत्तर, अपने को श्रीकृष्ण-मिलन की भूखी किसी गोपी का अवतार तक समझने लगी। अंत में विवाह योग्य होने पर, कहा जाता है कि, उसने अपने गुरुजनों से स्पष्ट बतला दिया कि मैं, श्रीरङ्गनाथ को छोड़कर, दूसरे किसी को भी वरण नहीं कर सकती और, स्वप्न द्वारा इसका समर्थन भी हो जाने पर, विष्णुचित्त उसे 'श्रीरङ्गम्' ले जाकर, वैवाहिक विधियों के साथ, भगवान् को समर्पित कर आये जहाँ पर, मूर्त्ति के निकट पहुँच कर, उससे मिलते ही वह सबके सामने, यकायक अंतर्धान हो गई। तभी से तामिल प्रान्त में उसकी पूजा देवताओं की भाँति, होती है और वह 'आंडाल' अर्थात् 'शासन करने वाली' वा 'स्वामिनी' नाम से ही अधिक प्रसिद्ध है। उसके तीसरे नाम 'गोदा' का अर्थ 'अपनी वाणी को श्रीभगवान् के प्रति समर्पित करने वाली' बतलाया जाता है।

०

गोदा की भक्ति भी, मीराँबाई की ही भाँति, पूर्ण 'गोपीभाव' से ओतप्रोत थी और उस परमभाव के आवेश में, उसने भी ठीक मीराँ की ही भाँति, अपने तद्विषयक अनुभवों को अपनी तामिल रचनाओं द्वारा प्रकट किया था। वह श्रीकृष्ण में इतनी तन्मय हो गई थी कि अपने गाँव "विल्लिपुत्तूर" को ही गोकुल (व्रज), वहाँ की लड़कियों को गोपियों और भगवान् के मन्दिर को नन्द का घर और मन्दिर में विराजमान भगवान् को ही श्रीकृष्ण समझ

कर अत्युत्कट भावना से, गोपियों का अनुकरण करती[1] रही। उसकी कृति
में से दो अर्थात् 'तिरुप्पावै' अथवा 'श्रीव्रत' एवं 'नाच्चियार तिरुमोळि' अथ
'गोदा की श्री सूक्तियाँ' अभी तक उपलब्ध हैं। श्री सूक्तियों के छठें द
में जो गोदा ने, स्वप्न में 'माधव' के साथ होने वाले, अपने विवाह
वर्णन किया है वह मीरांबाई वाले 'जगदीश' के साथ सम्पन्न स्वप्न वि
(पद २७) का ही एक बृहत् रूपान्तर जान पड़ता है और उनके चौदहवें
अन्तिम दशक में आये हुए विवरणों में वह प्रायः मीराँ की ही भाँति, श्रीकृ
दर्शनों का आनन्द अनुभव करती हुई भी दीख पड़ती है। इसके सिवाय, जि
प्रकार, मीराँबाई पपीहे को सम्बोधित कर अपनी विरह-दशा का वर्णन क
व कौए द्वारा 'पिव' के पास अपना 'कलेजा' भेजती हैं (पद ७४) प्रायः
प्रकार गोदा भी उनके पंचम दशक में अपनी विरह कथा किसी कोयल के प्र
निवेदन करती हुई उससे सहायतार्थं प्रार्थना करती है। अपने इष्टदेव को प्र
करने के लिए, इसी प्रकार, व्रतों का अनुष्ठान करने वाली गोदा, अपने
'श्रीव्रत' के दूसरे श्लोक में, कहती है कि, "ऐ संसार के भाग्यशाली लोगों
तुम ध्यान पूर्वक सुनो और जान लो कि हमें क्षीरसागर में शेष की शय्या
सोने वाले उस परम स्वामी के निमित्त व्रतपालनार्थं, उसके चरणों में
पूर्वक, क्या क्या करना आवश्यक है। हम ठीक सूर्योदय के समय स्नान क
घी दूध का परित्याग कर देंगी, आँखों में काजल न लगायँगी, केशों को
से न सजायँगी, कोई अयोग्य काम न करेंगी, और न कोई अनुचित शब्द ही
रण करेंगी, बल्कि दया दाक्षिण्य व आनन्द पूर्वक अपने मार्ग पर सदा
रह कर अपना जीवन-यापन करती रहेंगी। आह, इलोरेम्बावाय !"[2] और
है कि, मीराँबाई ने भी प्रायः ऐसी ही भावनाओं द्वारा प्रेरित होकर, अपने
समान पदों, विशेष कर पद २५, २७ अथवा ४८ की रचना की हैं। इसके सिवाय

---

१ का० श्री० निवासाचार्य: 'आलवार कवयित्री गोदा', (कल्या
जनवरी, सन् १९४१ ई०, पृ० ११७१)।

२ J. S. M. Hooper : 'Hymns of the Alvars' P. 50

काव्य के सातवें श्लोक में जो ग्वालिनों के प्रातःकालीन दधि-मथन का वर्णन आया है[1] वह भी, कई अंशों में, मीरांबाई के पद १६८ में किये गये सुन्दर चित्रण के ही अनुसार है। 'रंगनाथकी' की गोदा एवं श्री गिरधर की प्रेमिका' मीरां के जीवन की घटनाओं तथा कृतियों में कुछ ऐसी विचित्र समानता है कि उसके आधार पर लोग एक को दूसरी का अवतार तक समझने लगते हैं।

(ऊ) उपसंहार

मीरांबाई जोधपुर के एक प्रतिष्ठित राजपूत घराने में जन्मी व पली थीं और उनके जीवन-काल का एक महत्त्वपूर्ण अंश उदयपुर के प्रसिद्ध महाराणा-वंश के साथ व्यतीत हुआ था। उनके हृदय पर एक सच्ची राजपूत रमणी के साहस व निष्ठा की गहरी छाप लगी हुई थी और अपने लक्ष्य की रक्षा अथवा व्रतपालन की चेष्टा में वे उस आदर्श के अनुसार अपना सर्वस्व तक उत्सर्ग करने पर आमरण उद्यत रहीं। कठिनाइयों ने उन्हें निरुत्साहित करने की जगह, और भी शक्ति प्रदान की और स्वजन वियोग-जन्य कष्टों तक ने उनमें नैराश्य की जगह विषाद की एक अनोखी भावना जागृत कर दी। उनके 'सहज-वैराग' ने उनके उद्देश्य को अधिक स्पष्ट व आकर्षक बना डाला।

उनकी भक्ति का आदर्श अत्यन्त ऊँचा था। उनके 'परमभाव' का निर्वाह किसी साधारण भक्त के वश की बात नहीं—यदि पुरुष है तो उसपर अस्वाभाविकता का आरोप होगा और यदि स्त्री है तो उसे अपने ही समाज-द्वारा लांछित होना पड़ेगा। मीरां को भी, इसके कारण, विकट यातनाएँ झेलनी पड़ीं, किन्तु, अपनी धुन की पक्की होने से, वे आपत्तियों की अवहेलना बराबर करती गईं। उन्होंने, प्रसिद्ध सूफ़ी साधिका रबिया की भाँति, नितांत एकरस का जीवन यापन किया और, ईसाई भक्तिन टेरेसा की भाँति, अपने 'Wound of Love' वा 'प्रेम की पीर' का आस्वादन वे निरंतर आनन्दपूर्वक करती रहीं।

उन्होंने जो कुछ भी कहा वह उनकी आंतरिक अनुभूति की तीव्रता के

---

[1] Ibid, p. 52

कारण रागमय होकर वा गीत रूप में ही निकला। उनके पदों की छंदो-नियमानुसार परीक्षा करने की अपेक्षा कहीं अधिक आवश्यक उनके जीवन को ही किसी श्रेष्ठ काव्य का विषय बनाना होगा।

मीरांबाई के जीवन, आदर्श व काव्य सभी सदा स्वच्छंद रहे और अपनी इष्ट-सिद्धि के लिए भी उन्होंने रागानुगा भक्ति के ही अवैध साधनों को अपनाया। वे उन्मुक्त व निर्द्वंद भाव से रहकर सदा, आकाश विहारिणी कोयल की भाँति, अपनी हृदय-संचित प्रेमसुधा स्वतः प्रसूत गीतियों के रूप में, बरसाती रहीं। ऐसा किये बिना उनके लिए श्वास प्रश्वास-तक का लेना असह्य था। उनके दो सहस्र से भी अधिक पूर्व की ग्रीक कवियित्री सैफो (Sappho) के निमित्त कहे गए शब्द :—Love's priestess, mad with pain and joy of Song, Song's priestess, mad with joy and pain of Love.

"गीति-वेदना-सौख्य-मग्न, थी प्रेम-पुजारिन;
प्रेम-सौख्य-वेदना विकल, थी गीत-पुजारिन।"

आज उनके लिए भी, प्रायः उसी प्रकार, उपयुक्त समझे जा सकते हैं।

---

1. Quoted in Introduction to 'Sappho': One hundred Lyrics (King's Classics) p. XIV.

पद-सूची

(अकारादि क्रमानुसार पद संख्या की सूचना)

मीराँबाई की पदावली

द्वितीय भाग

(मूल पाठ व पाठान्तर)

प्रथम खंड

स्तुति-वंदना

राग तिलंग

मन रे परसि हरि के चरण ॥ टेक ॥
सुभग सीतल कँवल कोमल, त्रिविध ज्वाला हरण।
जिण चरण प्रहलाद परसे, इंद्र पदवी धरण।
जिण चरण ध्रुव अटल कीने, राखि अपनी सरण।
जिण चरण ब्रह्मांड भेट्यो, नखसिखाँ सिरी धरण।
जिण चरण प्रभु परसि लीने, तरी गोतम घरण।
जिण[1] चरण कालीनाग नाथ्यो, गोपलीला करण।
जिण चरण गोबरधन धार्यो, इन्द्र[2] को ग्रब हरण।
दासि मीराँ लाल गिरधर, अगम तारण तरण ॥१॥

राग ललित

हमरो प्रणाम बाँके बिहारी को ॥ टेक ॥
मोर मुगट माथे तिलक बिराजै, कुंडल अलकाकारी को।

पाठान्तर १. इसके पहले 'जिण चरण प्रभु परसि लीने, भये जग आमरण।' पंक्ति भी कहीं-कहीं मिलती है।
२. 'गर्व मघवा हरण'।

अधर मधुर पर बंशी बजावै, रीझ रिझावै राधाप्यारी को।
यह छवि देख मगन भई मीराँ, मोहन गिरवरधारी को ॥२॥

विनय

राग हमीर

बसो मोरे नैनन में नँदलाल ॥ टेक ॥
मोहनी मूरति साँवरी सूरति, नैणा बने बिसाल।
अधर सुधारस मुरली राजति, उर बैजंती माल[1]।
छुद्र घंटिका कटि तट सोभित, नूपुर सबद रसाल।
मीराँ प्रभु संतन सुखदाई, भक्त बछल गोपाल ॥३॥

हरि मोरे जीवन प्रान अधार ॥ टेक ॥
और आसिरो नाहीं तुम बिन, तीनूँ लोक मँझार।
आप बिना मोहि कछु न सुहावै, निरख्यौ सब संसार।
मीराँ कहै मैं दास रावरी, दीज्यौ मती बिसार ॥४॥

राग कान्हरा

तनक हरि चितवौजी मोरी ओर ॥ टेक ॥
हम चितवत तुम चितवत नाहीं, दिल के बड़े कठोर।
मेरे आसा चितवनि तुमरी, और न दूजी दोर।
तुमसे हमकूँ कबर[2] मिलोगे, हमसी लाख करोर।
ऊभी ठाढ़ी अरज करत हूँ, अरज करत भयो भोर।
मीराँ के प्रभु हरि अबिनासी, देस्यूँ प्राण अकोर ॥५॥

पाठान्तर—१. इसके पहले 'मोर मुकट मकराकृत कुंडल, अरुण तिलक दिये भाल।' पंक्ति भी कहीं कहीं मिलती है।
२. एक होजी।

शब्द

मेरो मन बसिगों गिरधरलाल सों ॥ टेक ॥
मोर मुकुट पीताम्बर हो, गल बैजंती माल ।
गउवन के सँग डोलत, हो जसुमति को लाल ।
कालिंदी के तीर हो, कान्हा गउवाँ चराय ।
सीतल कदम की छाहियाँ, हो मुरली बजाय ।
जसुमति के दुवरवाँ हो, ग्वालिन सब जाय ।
बरजहु आपन दुलरुवा, हमसों अरुझाय ।
वृन्दावन क्रीड़ा करै, गोपिन के साथ ।
सुर नर मुनि मोहे हो, ठाकुर जदुनाथ ।
इन्द्र कोप घन बरखो, मूसल जलधार ।
बूड़त ब्रज को राखेऊ, मोरे प्रान अधार ।
मीराँ के प्रभु गिरधर हो, सुनिये चितलाय ।
तुम्हरे दरस की भूखी हो, मोहि कछु न सोहाय ॥६॥

रूप राग

राग त्रिबेनी

निपट बँकट छबि अटके ।
मेरे नैना निपट० ॥टेक॥
देखत रूप मदन मोहन को, पियत पियूख न मटके ।
वारिज भवाँ अलक टेढ़ी मनो, अति सुगंधरस अटके ।
कमल टेढ़ी कटि टेढ़ी करि मुरली, टेढ़ी पाग लर लटके ।
मीराँ प्रभु के रूप लुभानी, गिरधर नागर नटके ॥७॥

राग गूजरी

या मोहन के मैं रूप लुभानी ॥टेक॥
सुंदर वदन कमल दल लोचन, बाँकी चितवन मँद मुसकानी ।

जमुना के नीरे तीरे धेन चरावै, बंसी में गावै मीठी बानी।
तन मन धन गिरधर पर वारूँ, चरण कँवल मीराँ लपटानी ॥८॥

जब से मोहिं नंदनँदन, दृष्टि पड़्यो माई।
तब से परलोक लोक, कछू न सोहाई।
मोरन की चंद्रकला, सीस मुकुट सोहै।
केसर को तिलक भाल, तीन लोक मोहै।
कुंडल की अलक झलक, कपोलन पर धाई[1]।
मनो मीन सरवर तजि, मकर मिलन आई।
कुटिल भृकुटि तिलक भाल, चितवन में टौना।
खंजन अरु मधुप मीन, भूले मृगछौना।
सुंदर अति नासिका, सुग्रीव तीन रेखा।
नटवर प्रभु भेष धरे, रूप अति विसेषा।
अधर बिंब अरुन नैन, मधुर मंद हाँसी।
दसन दमक दाड़िम दुति, चमके चपलासी।
छुद्र घंट किंकिनी, अनूप धुनि सोहाई।
गिरधर के अंग अंग, मीराँ बलि जाई ॥६॥

प्रेमासक्ति

राग नीलांबरी

नैणा लोभी रे बहुरि सके नहिं आइ ॥ टेक ॥
रूँम रूँम नखसिख सब निरखत, ललकि[2] रहे ललचाइ।
मैं ठाढ़ी ग्रिह आपणेरी, मोहन निकसे आई[3]।
बदन चंद परकासत हेली, मंद मंद मुसकाइ।
लोक कुटंबी बरजि बरजहीं, बतियाँ कहत बनाइ।

पाठान्तर१—. छाई। २. ललच। ३. साँरग ओट तजे कुल आँकुस बा[illegible]
. दिये मुसकाय।

चंचल[1] निपट अटक नहिं मानत, परहथ गये विकाइ।
भली कहौ कोइ बुरी कहौ मैं, सब लई सीसि चढ़ाइ।
मीराँ[2] कहे प्रभु गिरधर के बिनि, पल भरि रह्यो न जाइ ॥१०॥

राग कामोद

आली रे मेरे नैणाँ बाण पड़ी ॥टेक॥
चित्त चढ़ी मेरे माधुरी मूरत. उर विच आन अड़ी।
कब की ठाढी पंथ निहारूँ, अपने भवन खड़ी।
कैसे प्राण पिया बिनि राखूँ, जीवन मूर जड़ी।
मीराँ गिरधर हाथ बिकानी, लोग कहैं बिगड़ी ॥११॥

प्रेमाभिलाषा

शब्द

नैनन बनज बसाऊँरी, जो मैं साहिब पाऊँ ॥टेक॥
इन नैनन मेरा साहिब बसता, डरती पलक न नाऊँ, री।
त्रिकुटी महल में बना है झरोखा, तहाँसे झाँकी लगाऊँ, री।
सुन्न महल में सुरत जमाऊँ, सुख की सेज़ बिछाऊँ, री।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊँ, री ॥१२॥

राग मुल्तानी

असा पिया जाण न दीजै हो ॥टेक॥
तन मन धन करि वारणै, हिरदे धरि लीजै, हो।
आव सखी मिलि देखिये, नैणाँ रस पीजै, हो।
जिह जिह विधि रीझै हरी, सोई विधि कीजै, हो।
सुंदर स्याम सुहावणा, मुख देख्याँ जीजै, हो।
मीराँ के प्रभु रामजी, बड़ भागण रीझै, हो ॥१३॥

पाठान्तर—१. चपल। २. मीराँ प्रभु गिरधरलाल बिन।

राग मालकोस

श्री[1] गिरधर आगे नाचूँगी ॥टेक॥
नाचि नाचि पिवरसिक[2] रिझाऊँ, प्रेमी जन कूँ जाचूँगी।
प्रेमप्रीत की बाँधि घूँघरू, सुरत की कछनी काछूँगी।
लोक लाज कुल की मरजादा, यामें एक न राखूँगी।
पिव के पलँगा जा पौढ़ूँगी, मीराँ हरि रँग राचूँगी ॥१४॥

अपनी टेक

राग झिंझोटी

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।
छांड़ि[3] दई कुल की कानि, कहा करिहै कोई।
संतन ढिग बैठि बैठि, लोक लाज खोई।
अँसुवन[4] जल सींचि सींचि, प्रेम बेलि बोई।
अब तो बेल फैल गई, आणँद फल होई।
भगति[5] देखि राजी हुई, जगति देखि रोई।
दासी मीराँ लाल गिरधर, तारो अब मोहीं ॥१५॥

राग पटमंजरी

मैं तो साँवरे के रँग राची ॥टेक॥
साजि सिंगार बाँधि पग घुँघरू, लोकलाज तजि नाची।

पाठान्तर—१. रघुनन्दन। २. रघुनाथ।
३. इसके पहले 'तात, मात, भ्रात, बंधु अपना नहिं कोई।' पंक्ति भी मिलती है।
४. इसके पहले 'चुनरी के किये टूक टूक, ओढ़ लीन लोई। मोती मूँगे उतार बनमाला पोई।' पंक्तियाँ भी आती हैं।
५. इसके पहले 'दूध की मथनिया बड़े प्रेम से बिलोई। माखन जब काढ़ि लियो, छाछ पिये कोई।' पंक्तियाँ भी मिलती हैं।

गई कुमति लई साधु की संगति, भगतरूप भई साँची।
गाय गाय हरि के गुन निसदिन, काल ब्याल सूँ बाँची।
उण बिन सब जग खारो लागत, और बात सब काँची।
मीराँ श्री गिरधरनलाल सूँ, भगति रसीली जाँची ॥१६॥

राग गुनकली

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ ॥ टेक ॥
गिरधर म्हाँरो साँचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ।
रैंण पड़ै तब ही उठि जाऊँ, भोर गये उठि आऊँ।
रैंणदिना बाके सँगि खेलूँ, ज्यूँ ज्यूँ वाहि रिझाऊँ।
जो पहिरावै सोई पहिरूँ, जो दे सोई खाऊँ।
मेरी उणकी प्रीत पुराणी, उण बिनि पल न रहाऊँ।
जहाँ बैठावें तितही बैठूँ, बेचै तो बिक जाऊँ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊँ ॥१७॥

मैं तो म्हाँरा रमैयाने, देखबो करूँरी ॥ टेक ॥
तेरो ही उमरण, तेरो ही सुमरण, तेरो ही ध्यान धरूँरी।
जहाँ जहाँ पाँव धरूँ धरणी पर, तहाँ तहाँ निरत करूँरी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरणाँ लिपट परूँरी ॥१८॥

अविनाशी प्रियतम

राग माँड

माई री मैं तो लीयो गोविन्दो[1] मोल ॥ टेक ॥
कोई कहै छाने कोई कहै चौड़े,[2] लियोरी बजंता ढोल।
कोई कहै मुँहघो कोई सुँहघो, लियो री तराजू तोल।

पठान्तर—१. रमैयो। २. चोरी छुपके।

कोई कहै कारो कोई कहै गोरो, लियोरी अमोलिक[1] मोल।
याही कूँ सब लोग जाणत है, लियोरी आँखी खोल[2]।
मीराँ कूँ प्रभु दरसण दीज्यौ, पूरब जनम कौ कोल ॥१६॥

राग धानी

मैं गिरधर रँग राती, सैयाँ मैं०[3] ॥ टेक ॥
पचरंग चोला पहर सखी मैं, झिरमिट खेलन जाती।
ओह झिरमिट माँ मिल्यो साँवरो, खोल मिली तन गाती।
जिनका पियां परदेस बसत है, लिख लिख भेजैं पाती।
मेरा पिया मेरे हीय बसत है, ना कहुँ आती जाती।
चंदा जायगा सूरिज जायगा, जायगी धरणि अकासी।
पवन पाणी दोनु ही जायँगे, अटल रहै अविनासी।

पाठान्तर—१. आँखी खोली। २. 'तनका गहना मैं सब तज दीन्हा, दियो बाजूबंद खोल।'

३. इसका पाठ इस प्रकार भी मिलता है:—
सखी री मैं तो गिरधर के रँग राती।
पचरँग मेरा चोला रँगा दे, मैं झुरमुट खेलन जाती।
झुरमुट में मेरा साईं मिलेगा, खोल अडम्बर गाती।
चंदा जायगा सुरज जायगा, जायगा धरण अकासी।
पवन पाणी दोनों हीं जाँयगे, अटल रहे अबिनासी।
सुरत निरत का दिवला सँजोले, मनसा की कर बाती।
प्रेमहटी का तेल बनाले, जगा करे दिन राती।
जिनके पिय परदेस बसत हैं, लिखि लिखि भेजैं पाती।
मेरे पिय मो माहिं बसत हैं, कहूँ न आती जाती।
पीहर बसूँ न बसूँ सास, घर सतगुर शब्द सँगाती।
ना घर मेरा न घर तेरा, मीराँ हरि रँग राती॥

सुरत निरत का दिवला सँजोले, मनसा की करले बाती।
प्रेम हटी का तेल मँगा ले, जगे रह्या दिन ते राती।
सतगुर मिलिया सांसा भाग्या, सैन बताई साँची।
ना घर तेरा ना घर मेरा, गावै मीराँ दासी ॥२०॥

राग पीलू बरवा

बड़े घर ताली लागी रे, म्हाराँ मन री उणारथ भागी रे ॥टेक॥
छीलरिये म्हाँरो चित्त नहीं रे, डाबरिये कुण जाव।
गंगा जमना सूँ काम नहीं रे, मैं तो जाइ मिलूं दरियाव।
हालयाँ मोलयाँ सूँ काम नहीं रे, सीख नहीं सिरदार।
कामदाराँ सूँ काम नहीं रे, मैं तो जांब करूँ दरबार।
काच कथीर सूँ काम नहीं रे, लोहा चढ़े सिर भार।
सोना रूपा सूँ काम नहीं रे, म्हाँरे हीराँ रो बौपार।
भाग हमारो जागियो रे, भयो सँमद सूँ सीर।
इम्रित प्याला छांड़ि कै, कुण पीवै कड़वो नीर।
पीपा को प्रभु परचो दीन्हौ, दियारे खजीना पूर।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, धणी मिल्या छै हजूर ॥२१॥

अपना मार्ग

राग मालकोस

मैं अपणे सैया सँग साँची ॥टेक॥
अब काहे की लाज सजनी, परगट ह्वै नाची।
दिवस भूख न चैन कबहूँ, नींद निसि नासी।
वेधि वार पार ह्वैगो, ग्यान गुह गाँसी।
कुल कुटंबी आन बैठे, मनहु मधुमासी।
दासी मीराँ लाल गिरधर, मिटी जग हाँसी ॥२२॥

राग पटमंजरी

मीराँ लागो रंग हरी, औरन[1] रँग अटक परी ।।टेक।।
चूड़ो म्हाँ रे तिलक अरु माला, सील वरत सिणगारो ।
और सिंगार म्हाँ रे दाय न आवै, यों गुर ग्यान हमारो ।
कोई निन्दो कोई विन्दो म्हे तो, गुण गोविंद का गास्याँ ।
जिण मारग म्हाँरा साध पधारै, उण मारग म्हे जास्याँ ।
चोरी न करस्याँ जिव न सतास्याँ, काँई करसी म्हाँरो कोई ।
गज से उतर के खर नहिं चढ़स्याँ, ये तो बात न होई[2] ।।२३।।

मेरो मन लागो हरिसूँ, अब न रहूँगी अटकी ।
गुरु मिलिया रैदास जी, दीन्हीं ग्यान की गुटकी ।
चोट लगी निज नाम हरीकी, म्हाँ रे हिवड़े खटकी ।
मोती माणिक परत न पहिरूँ, मैं कबकी नटकी ।
गेणो तो म्हाँ रे माला दोवड़ी, और चंदन की कुटकी ।
राज कुल की लाज गमाई, साधाँ के सँग मैं भटकी ।
नित उठ हरिजी के मंदिर जास्याँ, नाच्याँ दे दे चुटकी ।
भाग खुल्यो म्हाँरो साध सँगत सूँ, साँवरिया की वटकी ।
जेठ बहू की काण न मानूँ, घूँघट पड़ गई पटकी ।
परम गुराँ के सरण में रहस्याँ परणाम कराँ लुटकी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जनम मरण सूँ छुटकी ।।२४।।

राग हमीर

आवो सहेल्या रली कराँ हे, पर घर गवण निवारि ।
झूठा माणिक मोतिया री, झूठी जगमग जोति ।
झूठा सब आभूखण री, साँची पियाजी री पोति ।
झूठा पाट पटंबरारे झूठा दिखणी चीर ।

पाठान्तर—१. सब । २. कहीं-कहीं इसके आगे और भी कुछ पंक्तियाँ मिलती

साँची पियाजी री गूदड़ी, जामे निरमल रहे सरीर।
छप्पन भोग बुहाइ दे हे, इन भोगनि में दाग।
लूण अलूणों ही भलो हे, अपणे पियाजी को साग।
देखि विराणै निवाँण कूँ हे, क्यूँ उपजावै खीज।
कालर अपणो ही भलो हे, जामें निपजै चीज।
छैल विराणो लाख को हे, अपणे काज न होइ।
ताके सँग सीधारताँ हे. भला न कहसी कोइ।
वर हीणो अपणो भलो हे, कोढ़ी कुष्टी कोइ।
जाके सँग सीधारताँ हे. भला कहै सब लोइ।
अविनासी सूँ बालवा हे, जिनसूँ साँची प्रीत।
मीराँ कूँ प्रभू मिल्या हे, एही भगति की रीत॥२५॥

कोई कछू कहे मन लागा॥ टेक॥
ऐसी प्रीत लगी मन मोहन ज्यूँ सोना में सोहागा।
जनम जनम का सोया मनुवाँ. सतगुर सब्द सुण जागा।
मात पिता सुत कुटुम कबीला, टूट गयों ज्यूँ तागा।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, भाग हमारा जागा॥२६॥

स्वजनों से मतभेद

मीराँ—माई म्हाँने सुपने में, परण गया जगदीस।
रूोती को सुपना आवियाजी, सुपना विस्वा बीस।
मा—गैली दीखे मीराँ बावली, सुपना आल जँजाल।
मीराँ—माई म्हाँने सुपने में परण गया. गोपाल।
अंग अंग हल्दी मैं करी जी, सुधे भीज्यो गात।
माई म्हाँने सुपने में, परण गया दीनानाथ।
छप्पन कोट जहाँ जान पधारे. दुलहा श्री भगवान।
सुपने में तोरन बाँधियो जी, सुपने में आई जान।

मीराँ को गिरधर मिल्या जी, पूर्व जनम के भाग।
सुपने में म्हाँने परण गयाजी, होगया अचल सुहाग ॥२७॥

मीराँ—तू मत गरजे माइड़ी, साधाँ दरसण जाती।
राम नाम हिरदे बसैं, माँहिले मद माती।
मा—माई कहे सुन धीहड़ी, काहे गुण फूली।
लोक सोवे सुख नींदड़ी, थे क्यूँ रैणज भूली।
मीराँ—गेली दुनिया बावली, ज्याँ कूँ राम न भावे।
ज्याँरे हिरदे हरि वसे, त्याँकूँ नींद न आवे।
चौबास्याँ की बावड़ी, ज्याँ कूँ नीर न पीजै।
हरि नारे अमृत झरै, ज्याँ की आस करीजै।
रूप सुरंगा राम जी, मुख निरखत जीजै।
मीराँ व्याकुल विरहिणी, अपनी कर लीजै ॥२८॥

मीराँ—म्हाँना गुरु गोविंद री आण, गोरल ना पूजाँ।
सास—ओरज पूजैं गोरज्याँ, जी थे क्यूँ पूजो न गोर।
मन बंछत फल पावस्यो जी, थे क्यूँ पूजे ओर।
मीराँ—नहिं हम पूज्याँ गोरज्याँ जी, नहिं पूजाँ अनदेव।
परम सनेही गोविंदो, थे काँई जानो म्हाँरो भेव।
सास—बाल सनेही गोविंदो, साध संताँ को काम।
थे बेटी राठौड़ की, थाँने राज दियो भगवान।
मीराँ—राज किये ज्यानाँ करणे दाज्यो, मैं भगतारी दास।
सेवा साधू जनन की, म्हाँरे राम मिलण की आस।
सास—लाजै पीहर सासरो, माइतणो मोसाल।
सबही लाजै मेड़तिया जी, थाँसू बुरा कहे संसार।
मीराँ—चोरी कराँ न मारगी, नहिं मैं करूँ अकाज।
पुन्न के मारग चालताँ, झक मारो संसार।

नहिं मैं पीहर सासरे, नहीं पिया जी री साथ।
मीराँ ने गोबिंद मिल्या जी, गुरु मिलिया रैदास ॥२६॥

ऊदाबाई—थाँने बरजबरज मैं हारी, भाभी, मानो बात हमारी।
राणे रोस कियो थाँ ऊपर, साधों में मत जारी।
कुल को दाग लगै छै भाभी, निंदा हो रही भारी।
साधों रे सँग बन बन भटकी, लाज गमाई सारी।
बड़ा घर थे जनम लियो छै, नाचो दे दे तारी।
बर पायो हिंदवाणें सूरज, थे काँई मनधारी।
मीराँ गिरधर साध सँग तज, चलो हमारी लारी।
मीराँबाई—मीराँ बात नहीं जग छानी, ऊदा समझो सुघर सयानी।
साधू मात पिता कुल मेरे, सजन सनेही ग्यानी।
संत चरण की सरण रैन दिन, सत्त कहतहूँ बानी।
राणाने समझावो जावो, मैं तो बात न मानी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, संताँ हाथ बिकानी।
ऊदाबाई—भाभी बोलो वचन विचारी।
साधों की संगत दुख भारी, मानो बात हमारी।
छापा तिलक गलहार उतारो, पहिरो हार हजारी।
रतन जड़ित पहिरो आभूषण, भोगो भोग अपारी।
मीराजी थे चलो महल में, थाँने सोगन म्हारी।
मीराँबाई—भावे भगत भूषण सजे, सील सँतों सिंगार।
ओढी चूनर प्रेम की, गिरधर जी भरतार।
ऊदाबाई मन समझ, जावो अपने धाम।
राज पाट भोगो तुम्हीं, हमें न तासूँ काम ॥३०॥

विरोध

राग कामोद

बरजी मैं काहू की नाहिं रहूँ ॥ टेक ॥

सुनौरी सखी तुम चेतन होइकै, मन की बात कहूँ।
साध सँगति करि हरि सुख लीजै, जगसूँ दूरि रहूँ।
तन धन मेरे सब ही जावो, भलि मेरो सीस लहूँ।
मन मेरो लागो सुमिरण सेती, सब का मैं बोल सहूँ।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, सतगुर सरण गहूँ ॥३१॥

राग पीलू

तेरा कोई नहिं रोकणहार, मगन होइ मीरां चली।
लाज सरम कुल की मरजादा, सिर सैं दूरि करी।
मान अपमान दोउ धर पटके, निकसी हूँ ग्यान गली।
ऊँची अटरिया लाल किंवड़िया, निरगुण सेज बिछी।
पँचरंगी झालर सुभ सोहै, फूलन फूल कली।
बाजू बन्द कडूला सोहै, सिन्दुर मांग भरी।
सुमिरन थाल हाथ में लीन्हा, सोभा अधक[1] खरी।
सेज सुखमणा मीराँ सोहै[2] सुभ है आज घरी।
तुम जावो राणा घर अपणे, मेरी तेरी नाहिं सरी ॥३२॥

आज म्हाँरो साधु जननो संगरे, राणा म्हाँरा भाग भल्याँ ॥टेक॥
साधु जननो संग जो करिये, चढ़े ते चौगणो रंगरे।
साकट जनन तो संग न करिये, पड़े भजन में भंगरे।
अठसठ तीरथ संतों ने चरणे, कोटि कासीने सोय गंगरे।
निन्दा करसे नरक कुंड मां जासे थासे आंधला अपंग रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, संतोंनीरज म्हाँरे अंग रे ॥३३॥

राग पूरया कल्याण

राणाजी म्हें तो गोविंद का गुण गास्याँ ॥ टेक ॥
चरणाम्रित को नेम हमारो, नित उठ दरसण जास्याँ।

पाठान्तर—१. अधिक भली। २. सोवे।

हरि मन्दिर में निरत करास्याँ, घूँघरिया घमकास्याँ।
रामनाम का झाझ चलास्याँ, भवसागर तर जास्याँ।
यह संसार बाड़ का काँटा, ज्याँ संगत नहिं जास्याँ।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, निरख परख गुण गास्याँ ॥३४॥

स्पष्टोक्ति

राग खम्माच

नहिं[1] भावै थाँरो देसलड़ो रँगरूड़ो ॥टेक॥
थाँरा देसाँ में राणा साध नहीं छै, लोग वसै सब कूड़ो।
गहणा गांठी राणा हम सब त्यागा, त्याग्यो कररो चूड़ो।
काजल टीको हम सब त्यागा, त्याग्यो छै बाँधन जूड़ो।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, वर पायो छै पूरो ॥३५॥

राणाजी मुझे यह बदनामी लगे मीठी ॥ टेक ॥
कोई निन्दो कोई बिन्दो, मैं चलूँगी चाल अपूठी।
साँकली गली में सतगुर मिलिया, क्यूँ कर फिरूँ अपूठी।
सतगुर जी सूँ बातज करताँ, दुरजन लोगाँ ने दीठी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, दुरजन जलो जा अँगीठी ॥३६॥

राग अगना

राणा जी थे क्याँने राखो म्हाँसूँ वैर ॥टेक॥
थे तो राणाजी म्हाँने इसड़ा लागो ज्यों ब्रच्छन में कैर।

पाठान्तर—१. राणाजी थाँरो देसड़लो रंगरूढो।
थाँरे मुलक में भक्ति नहीं छे, लोग बसें सब कूड़ो।
पाट पटम्बर सबही मैं त्यागा, सिर बाँधूली जूड़ो।
माणिक मोती सबही मैं त्यागा, तज दियो कर को चूड़ो।
मेवा मिसरी मैं सबही त्यागा, त्याग्या छै सक्कर बूरो।
तनकी आस कबहुँ नहिं कीनी, ज्यूँ रण माहीं सूरो।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, वर पायो मैं पूरो ॥

महल[1] अटारी हम सब त्याग्या, त्याग्यो थाँरो बसनो सहर।
काजल[2] टीकी राणा हम सब त्याग्या भगवीं चादर पहर।
मीराँ[3] के प्रभु गिरधर नागर, इमरित कर दियो जहर ॥३७॥

राग पहाड़ी

सीसोद्यो रूठ्यो तो म्हाँरो काँई करलेसी।
म्हें तो गुण गोविंद का गास्याँ, हो माई ॥टेक॥
राणो जी रूठ्यो वाँरो देस रखासी।
हरि रूठ्याँ कुम्हलास्याँ,[4] हो माई।
लोक लाज की काण न मानूँ।
निरभै निसाण घुरास्याँ, हो माई।
राम नाम का झाझ चलास्याँ।
भवसागर तर जास्याँ, हो माई।
मीराँ सरण सबल[5] गिरधर की।
चरण कँवल लपटास्याँ, हो माई ॥३८॥

राग पीलू

पग घुँघरू बाँध, मीरा नाची, रे ॥टेक॥
मैं तो मेरे नारायण की, आपहि होगइ दासी, रे।
लोग कहैं मीरा भई बावरी, न्यात कहैं कुलनासी, रे।
विष का प्याला राणाजी भेज्या, पीवत मीराँ हाँसी, रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सहज मिले अविनासी, रे ॥३९॥

पाठान्तर—१. मारू घर मेवाड़ मेरतो त्याग दियो थाँरो सहर।
२. थाँरे रूस्याँ राणा कुछ नहिं बिगड़ैं, अब हरि कीन्ही मेहर।
३. मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हठ करि पी गई जहर।
४. झेठें जास्याँ।
५. साँवल।

परीक्षा

राम तने रँगराची, राणा मैं तो साँवलिया रँगराची, रे ॥टेक॥
ताल पखावज मिरदंग बाजा, साधाँ आगे नाची, रे।
कोई कहे मीरा भई बावरी, कोई कहे मतमाती, रे।
विष का प्याला राणा भेज्या; 'अमृत कर आरोगी, रे।
मीराँ कहे प्रभु गिरिधर नागर, जनम जनम की दासी, रे ॥४०॥

राणाजी थे जहर दियो म्हे जाणी ॥ टेक ॥
जैसे कंचन दहत अगिन में, निकसत बाराबाणी।
लोक लाज कुल काण जगत की, दइ वहाय जस पाणी।
अपणे घर का परदा करले, मैं अबला बौराणी।
तरकस तीर लग्यो मेरे हियरे, गरक गयो सनकाणी।
सब संतन पर तन मन वारो, चरण कँवल लपटाणी।
मीराँ को प्रभु राखि लई है, दासी अपणी जाणी ॥४१॥

राग पीलू

राणा जो म्हाँरी प्रीत पुरबली मैं काँई करूँ ॥ टेक ॥
राम नाम बिन घड़ी न सुहावे, राम मिले म्हाँरा हियरा ठराय।
भोजनियाँ नहिं भावे म्हाँने, नींदलड़ी नहिं आय।
बिषको प्यालो भेजियोजी. जावो मीरा पास।
कर चरणामृत पीगई, म्हाँरे रामजी के विस्वास।
छापा[1] तिलक बनाविया जी, मन में निस्चय धार।
रामजी काज सँवारिया, म्हाँने भावे गरदन मार।

पाठान्तर—१. इसके पहले दो और पंक्तियाँ भी मिलती हैं :—
बिष का प्याला पीगई जी, भजन करे राठौर।
थाँरी मारी ना मरूँ, म्हाँरो राखणहारो और।

पेट्याँ वासक भेजिया जी, यो छै मोतीडाँरो हार ।
नाग गले में पहिरिया, म्हाँरै महलाँ भयो उजार ।
राठौडाँरी धीयड़ी जी, सीसोद्याँरै साथ ।
ले जाती बैकुंठ कूँ म्हाँरी नेक न मानी वात ।
मीराँ दासी राम की जी, राम गरीव निवाज ।
जन मीराँ को राखज्यो, कोई बाँह गहे की लाज ॥४२॥

राग जौनपुरी

मैं गोविंद गुण गाणा ॥ टेक ॥
राजा रूठै नगरी राखै, हरि रूठ्याँ कहँ जाणा ।
राणै भेज्या जहर पियाला, इमिरत करि पी जाणा ।
डविया में भेज्या ज भुजंगम, सालिगराम करि जाणा ।
मीराँ तो अब प्रेम दिवांणी, साँवलिया वर पाणा ॥४३॥

यो तो रंग धत्ताँ लग्यो ए माय ॥ टेक ॥
पिया पियाला अमर रस का, चढ़ गई घूम घुमाय ।
यो तो अमल म्हाँरो कवहुँ न उतरे, कोट करो न उपाय ।
साँप पिटारो राणाजी भेज्यो, द्यो मेडतणी गल डार ।
हँस हँस मीरा कंठ लगायो, यो तो म्हाँरे नौसर हार ।
विष को प्यालो राणा जी मेल्यो, द्यो मेड़तणी ने पाय ।
कर चरणामृत पीगई रे, गुण गोविंद रा गाय ।
पिया पियाला नाम का रे, और न रंग सोहाय ।
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, काचो रंग उड़ जाय ॥४४॥

राग खम्माच

मीराँ मगन भई हरि के गुण गाय ॥ टेक ॥
साँप पिटारा राणा भेज्यो, मीरा हाथ दियो जाय ।
न्हाय धोय जव देखण लागी, सालिगराम गई पाय ।
जहर का प्याला राणा भेज्या, अमृत दीन्ह बनाय ।

न्हाय धोय जब पीवण लागी, हो अमर अँचाय।
सूल सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीरा सुलाय।
साँझ भई मीरा सोवण लागी, मानो फूल बिछाय।
मीराँ के प्रभु सदा सहाई, राखे विघन हटाय।
भजन भाव में मस्त डोलती, गिरधर पै बलि जाय ॥४५॥

राग पहाड़ी

हेली म्हाँसूँ हरि विनि रह्यो न जाय ॥ टेक ॥
सास लड़ै मेरी नन्द खिजावै, राणा रह्या रिसाय।
पहरो[1] भी राख्यो चौकी बिठारयो, ताला दियो जड़ाय।
पूर्ब[2] जनम की प्रीत पुराणी, सो क्यूँ छोड़ी जाय।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, और न आवे म्हाँरी दाय ॥४६॥

अब नहिं विसरूँ, म्हाँरे हिरदे लिख्यो हरि नाम।
म्हाँरे सतगुरु दियो बताय, अब नहिं विसरूँ रे ॥ टेक ॥
मीरा बैठी महल में रे, ऊठत बैठत राम।
सेवा करस्याँ साध की, म्हाँरे और न दूजा काम।
राणा जी बतलाइया, कह देणो जवाब।
पण लागो हरिनाम सूँ, म्हाँरो दिन दिन दूनो लाभ।
सीप भरयो पाणी पिवे रे, टाँक भरयो अन्न खाय।
बतलायाँ बोली नहीं रे, राणोजी गया रिसाय।
बिष रा प्याला राणाजी भेज्या, दीजो मेड़तणी के हाथ।
कर चरणामृत पी गई, म्हाँरा सबल धणी का साथ।
विष को प्यालो पी गई, भजन करे उस ठौर।
थाँरा मारी ना मरूँ, म्हाँरो राखणहारो और।

पाठान्तर—१ चौकी मेलौ भले ही सजनी, ताला द्यो न जड़ाइ।
२ पूर्व जन्म की प्रीत हमारी, सो कहाँ रहे लुकाइ।

राणोजी मोपर कोप्यों रे, मारूँ एक ज सेल।
मारयां पराछित लागसी, म्हाँ ने दीजो पीहर मेल।
राणो मोपर कोप्यो रे, रती न राख्यो मोद।
ले जाती वैकुंठ में, यो तो समझ्यो नहीं सिसोद।
छापा तिलक वनाइया, तजियां सव सिंगार।
म्हें तो सरणे रामके, भल निन्दो संसार।
माला म्हाँरे देवड़ी, सील वरत सिंगार।
अवके किरपा कीजियो, हूँ तो फिर वाँधू तलवार।
रथाँ बैल जुताय कै, ऊटाँ कसियो भार।
कैसे तोड़ूँ राम सूँ, म्हाँरो भोभो रो भरतार।
राणो साँड्यो मोकल्यों, जाज्यो एकै दौड़।
कुल की तारण अस्तरी, या तो मुरड़ चली राठौड़।
साँड्यो पाछो फेरयां रे, परत न देस्याँ पाँव।
कर सूरापण नीसरी, म्हाँरे कुण राणे कुण राव।
संसारी निन्दा करे, दुखियो सव संसार।
कुल सारो ही लाजसी, मीरा थें जो भया जी ख्वार।
राती माती प्रेम की, विष भगत को मोड़।
राम अमल माती रहे, धन मीराँ राठोड़ ॥४७॥

वियोग

राग सोहनी

मैं जाण्यो नाहीं प्रभु को मिलण कैसे होइरी ॥ टेक ॥
आये मेरे सजना फिरि गये अँगना, मैं अभागण रही सोइरी।
फारूँगी चीर करूँ गल कंथा, रहूँगी बैरागण होइरी।
चुरियाँ फोरूँ माँग वखेरूँ, कजरा मैं डारूँ धोइरी।
निसवासर मोंहि विरह सतावै, कल न परत मोइरी।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, मिलि बिछुरो मति कोइरी ॥४८॥

जोगियाजी निसिदिन जोऊँ बाट ॥ टेक ॥
पाँव न चालै पंथ दुहेलो, आडा औघट घाट।
नगर आइ जोगी रम गया रे, मो मन प्रीत न पाइ।
मैं भोली भोलापन कीन्हौ, राख्यौ नहिं बिलमाइ।
जोगिया कूँ जोवत बोहो दिन बीता, अजहूँ आयो नाहिं।
विरह बुझावण अन्तरि आवो, तपत लगी तन माहिं।
कै तो जोगी जग में नहीं, कैर विसारी मोइ।
काँइ करूँ कित जाऊँरी सजनी, नैण गुमायो रोइ।
आरति तेरी अन्तरि मेरे, आवो अपनी जाणि।
मीराँ व्याकुल विरहिणी रे, तुम विनि तलफत प्राणि ॥४६॥

अनुनय

जोगी मत जा मत जा मत जा, पाँइ परूँ मैं चेरी तेरी हौं ॥टेक॥
प्रेम भगति को पैंड़ो ही न्यारा, हमकूँ गैल बता जा।
अगर चँदण की चिता बणाऊँ, अपणे हाथ जला जा।
जल बल भई भस्म की ढेरी, अपणे अंग लगा जा।
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, जोत में जोत मिला जा ॥५०॥

होजी म्हाँराज छोड़ मत जाज्यो ॥ टेक ॥
मैं अबला बल नाहिं गुसाईं, तुमहिं मेरे सिरताज।
मैं गुणहीन गुण नाहिं गुसाईं, तुम समरथ महराज।
रावली होइ के किणरे जाऊँ, तुमहो हिवड़ा रो साज।
मीराँ के प्रभु और न कोई, राखो अबके लाज ॥५१॥

राग बिहागरा

ऐसी लगन लगाइ कहाँ तूँ जासी ॥ टेक ॥
तुम देखे बिन कलि न परति है, तलफि तलफि जिव जासी।
तेरे खातिर जोगण हूँगी, करवत लूँगी कासी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कँवल की दासी ॥५२॥

राग बिलावल

पियाजी म्हाँरे नैणाँ आगे रहज्यो जी ॥ टेक ॥
नैणाँ आगे रहज्यो, म्हाँने भूल मत जाज्यो जी।
भौसागर में वही जात हूँ वेग म्हाँरी सुध लीज्यो जी।
राणाजी भेज्या विख का प्याला, सो इमरित कर दीज्यो जी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मिल बिछुड़न मत कीज्यो जी ॥५३॥

राग सोरठ

थाँने काँई काँई कह समझाऊँ, म्हाँरा वाला गिरधारी ॥ टेक ॥
पूर्व जनम की प्रीत हमारी, अब नहिं जात निवारी।
सुंदर बदन जोवते सजनी, प्रीत भई छे भारी।
म्हाँरे घरे पधारो गिरधर, मंगल गावै नारी।
मोती चौक पूराऊँ वाल्हा, तन मन तो पर वारी।
म्हारो सगपण तोसूँ साँवलिया, जुगसूँ नहीं विचारी।
मीराँ कहे गोपिन को वाल्हो, हमसूँ भयो ब्रह्मचारी।
चरण सरण है दासी तुम्हारी, पलक न कीजै न्यारी ॥५४॥

राग प्रभाती

जागो म्हाँरा जगपति राइक, हँसि बोलो क्यूँ नहीं ॥ टेक ॥
हरि छोजी हिरदा माँहि, पट खोलो क्यूँ नहीं।
तन मन सुरति सँजोइ, सीस चरणाँ धरूँ।
जहाँ जहाँ देखूँ म्हारो राम, जहाँ सेवा करूँ।
सदकै करूँ जी सरीर, जुगै जुग वारणैं।
छोड़ी छंड़ी कुल की लाज, साहिब तेरे कारणैं।
थोड़ी थोड़ी लिखूं सिलाम, वहोत करि जाणज्यौ।
वन्दी हूँ खानाजाद, महरि करि मानज्यौ।
हाँ हो म्हरा नाथ सुनाथ, विलम नहिं कीजियै।
मीराँ चरणाँ की दास, दरस अब दीजियै ॥५५॥

उपालंभ

राग सुखसोरठ

देखो सहियाँ[1] हरि मन काठो कियो॥ टेक ॥
आवन कह गयो अजूँ न आयो, करि करि वचन गयो।
खान पान सुध बुध सब विसरी, कैसे, करि[2] मैं जियों।
वचन तुम्हारे तुमही बिसारे, मन मेरो हर लियो।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, तुम विनि फटत हियो ॥५६॥

जोगिया से प्रीत कियाँ दुख होइ ॥ टेक ॥
प्रीत कियाँ सुख ना मोरी सजनी, जोगी मिंत न कोइ।
राति दिवस कल नाहिं परत है, तुम मिलियाँ विनि मोइ।
ऐसी सूरत या जग माँही फेरि न देखी सोइ।
मीराँ के प्रभु कवरे मिलोगे, मिलियाँ आँणद होइ ॥५७॥

जोगियारी प्रीतड़ी है दुखड़ा रो मूल ॥ टेक ॥
हिल मिल वात बणावत मीठी, पीछै जावत भूल।
तोड़त जेज करत नहिं सजनी, जैसे चँपेली के फूल।
मीराँ कहै प्रभु तुमरे दरस विन, लगत हिवड़ा में सूल ॥५८॥

राग सोरठ

कोई दिन याद करोगे रमता राम अतीत ॥ टेक ॥
आसण माड़ अडिग होय बैठा, याही भजन की रीत।
मैं तो जाणूँ जोगी संग चलेगा, छाँड गया अधबीच।
आत न दीसे जात न दीसे, जोगी किसका मीत।
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, चरणन आवे चीत ॥५९॥

पाठान्तर—१. सइयाँ। २. करीने।

जावो[1] निरमोहिया जाणो तेरी प्रीत ।। टेक ।।
लगन लगी जदि प्रीत और ही, अब कुछ औरि ही रीति ।
इमरत पाइ के विष क्यूँ दीजै, कूँण गाँव की रीति ।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, अपणी गरज के मीत ।।६०।।

जावादे जावादे जोगी किसका मीत ।। टेक ।।
सदा उदासी रहै मोरि सजनी, निपट अटपटी रीत ।
बोलत वचन मधुर से मानूँ[2], जोरत नाहीं प्रीत ।
मैं जाणूँ या पार निभैगी, छाँड़ि चले अधबीच ।
मीराँ के प्रभु स्याम मनोहर प्रेम पियारा मीत ।।६१।।

धूतारा जोगी एकर सूँ हँसि बोल ।। टेक ।।
जगत बदीत करी मनमोहन, कहा बजावत ढोल ।
अंग भभूति गले मृगछाला, तू जन गुढियाँ खोल ।
सदन सरोज वदन की सोभा, ऊभी जोऊँ कपोल ।
सेली नाद बभूत न बटवो, अजूँ मुनी मुख खोल ।
चढ़ती बैस नैण अणियाले, तूँ घरि घरि मंत डोल ।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, चेरी भई बिन मोल ।।६२।।

पाठान्तर—१. इसका एक दूसरा पाठ इस प्रकार है :—
जाओ हरि निरमोहड़ा रे, जाणी थाँरी प्रीत ।।टेक।।
लगन लगी जब और प्रीतछी, अब कुछ अँवली रीत ।
अमृत पाय विषै क्यूं दीजै, कौण गाँव की रीत ।
मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर, आप गरज के मीत ।।
२. मीठे ।

द्वितीय खंड

स्तुति प्रार्थना

राग श्यामकल्याण

हरि तुम[1] हरो जन की भीर ॥ टेक ॥
द्रोपता की लाज राखी, तुरत[2] वाढ्यौ चीर।
भक्त कारण रूप नरहरि, धर्यौ आप सरीर।
हिरणाकुश मारि लीन्ह, धर्यौ नाहिं न धीर।
बूड़तो गजराज राख्यौ,[3] कियौ वाहर नीर।
दासी मीराँ लाल गिरधर, चरण कँवल पै सीर ॥६३॥

राग रामकली

अबतो निभायाँ सरेगी, बाँह गहे की लाज ॥ टेक ॥
समरथ सरण तुम्हारी सइयाँ, सरब सुधारण काज।
भव सागर संसार अपरबल, जामें तुम हो भयाज।
निरधाराँ आधार जगत-गुरु, तुम बिन होय अकाज।
जुग जुग भीर हरी भगतन की. दीनी मोच्छ समाज।
मीराँ सरण गही चरणन की, लाज[4] रखो महाराज ॥६४॥

हरि विन कूण गती मेरी ॥ टेक ॥
तुम मेरे प्रतिपाल कहिये, मैं रावरी चेरी।
आदि अंत निज नाँव तेरो, हीया में फेरी।
वेरि वेरि पुकारि कहूँ, प्रभु आरति है तेरी।
यौ संसार विकार सागर, वीच में घेरी।
नाव फाटी प्रभु पाल बाँधो, बूड़त है बेरी।
विरहणि पिवकी वाट जोवै, राखिल्यौ नेरी।
दासि मीराँ राम रटत है, मैं सरण हूँ तेरी ॥६५॥

पाठान्तर—१. करिहो। २. तुम बढ़ायौ। ३. तार्यो। ४. पेज।

'विरहानुभव'

राग दरबारी

प्रभु जी थे कहाँ गया नेहड़ी लगाय ॥ टेक ॥
छोड़ गया विस्वास सँगाती, प्रेम की बाती बराय।
विरह समँद में छोड़ गया छो, नेह की नाव चलाय।
मीराँ के प्रभु कबर मिलोगे, तुम विनि रह्योइ न जाय ॥६६॥

राग मलार

डारि गयो मनमोहन पासी ॥ टेक ॥
आँबा की डालि कोइल इक बोलै, मेरो मरण अरुजग केरी हाँसी।
विरह की मारी मैं वन वन डोलूँ, प्रान तजूँ करवत ल्यूँ कासी।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी ॥६७॥

राग विहाग

माई म्हारी हरिहू न बूझी बातं ॥ टेक ॥
पिंड माँसूँ प्राण पापी, निकसि क्यूँ नहीं जात।
पाट न खोल्या मुखाँ न बोल्या, साँझ भई परभात।
अबोलणाँ जुग बीतण लागो, तो काहे की कुसलात[1]।
सावण आवण कह गया रे, हरि आवण की आस।
रैण[2] अँधेरी बीज चमंकै, तारा गिणत निरास।
लेइ कटारी कंठ सारू, मरूँगी विष खाइ।
मीराँ दासी राम राती, लालच रही ललचाइ ॥६८॥

पाठान्तर—१. इसके आगे ये पंक्तियाँ भी मिलती हैं :—
सुपन में हरि दरस दीन्हों, नैन जाण्यो हरि जात।
नैन म्हारा उघड़ि आया, रही मन पछतात।
२. रैण अँधेरी बिरह घेरी, तारा गिणत निस जात।
ले कटारी कंठ चीरूँ, करूँगी अपघात।

राग पूरिया धनाश्री

परम सनेही राम की निति ओलूँ री आवै ॥ टेक ॥
राम हमारे हम हैं राम के, हरि बिन कछू न सुहावै ।
आवण कह गये अजहुँ न आये, जिवड़ो अति अकुलावै ।
तुम दरसण की आस रमैया, कब हरि दरस दिखावै ।
चरण कँवल की लगनि लगी नित, बिन दरसण दुख पावै ।
मीराँ कूँ प्रभु दरसण दीज्यौ, आँणद बरण्यूँ न [illegible] ॥

जोगिया जी छाइ रह्या परदेस ॥ टेक ॥
जबका बिछड़्या फेर न मिलिया, बहोरि न दियां संदेस ।
या तन ऊपरि भसम रमाऊं, खोर करूँ सिर केस ।
भगवाँ भेख धरूँ तुम कारण, ढूँढत च्यारूँ देस ।
मीराँ के प्रभु राम मिलण कूँ, जीवनि जनम अनेस ॥ ७० ॥

विरहयातना

राग पीलू

रमइया बिनि रह्योइ न जाय ॥ टेक ॥
खान पान मोहि फीको सो लागै, नैणा रहे मुरझाइ ।
बार बार मैं अरज करत हूँ, रैण गई दिन जाइ ।
मीराँ कहै हरि तुम मिलियाँ बिनि, तरस तरस तन जाइ ॥७१॥

राग जोगिया

हेरी मैं तो दरद[1] दिवाणी होइ, दरद न जाणै मेरो कोइ ॥टेक॥
घाइल की गति घाइल जाणै, की जिण लाई होइ ।
जौहरि की गति जौहरी जाणै, की जिन जौहर होइ ।
सूली ऊपरि सेझ हमारी, सोवणा किस बिध होइ ।
गँगन मँडल पै सेझ पिया की, किस बिध मिलणा होइ ।

पाठान्तर—१. प्रेम ।

दरद की मारी बन बन डोलूँ, बैद मिल्या नहिं कोइ।
मीराँ की प्रभु पीर मिटेगी, जब बैद साँवलिया होइ॥ ७२॥

शब्द

पीया त्रिंनि रह्यौइ न जाइ॥ टेक॥
तन मन मेरो पिया पर वारूँ, बार बार बल जाइ।
निस दिन जोऊँ वाट पिया की, कबर मिलोगे आइ।
मीराँ के प्रभु आस तुमारी, लीज्यौ कंठ लगाइ॥ ७३॥

राग माँड

नातो नाम को मोसूँ तनक न तोड़्यो जाइ॥टेक॥
पानाँ ज्यूँ पीली पड़ी रे, लोग कहें पिंड रोग।
छाने लाँघण मैं किया रे, राम मिलण के जोग।
बावल बैद बुलाइया रे, पकड़ दिखाई म्हाँरी बाँह।
मूरिख बैद मरम नहिं जाणै, करक कलेजा माँह।
जा बैदा घरि आपणे रे, मेरो नाँव न लेइ।
मैं तो दाधी विरह की रे, तूँ काहे कूँ दारू[1] देइ।
माँस गले गल छीजिया रे, करक रह्या गल आहि।
आँगलियाँ री मूदड़ो, म्हारे आवण लागी बाँहिं।
रहो रहो पापी पपीहा रे, पिव को नाम न लेइ।
जे कोइ विरहणि साम्हले, (सजनी[2]) पिव कारण जीव देइ।
खिण मंदिर खिण आगणै रे, खिण खिण ठाढी होंइ।
घायल ज्यूँ घूमूँ सदारी[3], म्हाँरी विथा न बूझै कोइ।
काढ़ि कलेजा मैं धरूँ रे, कौवा तू ले जाइ।
ज्याँ देसाँ म्हाँरा पिव बसै, (सजनी[4]) वे देखै तू खाइ।
म्हाँरे नातो नाव को रे, और न नातो कोइ।
मीराँ व्याकुल विंरहणी रे, पिया दरसण दीजो मोइ॥७४॥

पाठान्तर—१. औषद। २. तो। ३. खड़ी। ४. रे।

राग होली

रमैया विन नींद न आवै ।
नींद न आवे विरह सतावे, प्रेम की आँच ढुलावै ।।टेक।।
विन पिया जोत मँदिर अँधियारो, दीपक दाय न आवै ।
पिया विन मेरी सेज अलूनी, जागत रैण विहावै ।
पिया कब रे घर आवै ।
दादुर मोर पपीहा बोलै, कोयल सबद सुणावै ।
घुमँट घटा ऊलर होइ आई, दामिन दमक डरावै ।
नैन झर लावै ।
कहा करूं कित जाऊँ मोरी सजनी, वेदन कूण बुतावै ।
विरह नागण मोरी काया डसी है, लहर लहर जिव जावै ।
जड़ी घस लावै ।
कोई सखी सहेली सजनी, पिया कूँ आन मिलावै ।
मीराँ कूँ प्रभु कबर मिलोगे, मन मोहन मोहि भावै ।
कबै हँस कर वतलावै ।।७५।।

नींदलड़ी नहिं आवै सारी रात, किस विधि होइ परभात ।।टेक।।
चमक उठी सुपने सुध भूली, चन्द्रकला न सोहात ।
तलफ तलफ जिव जाय हमारो, कबरे मिले दीनानाथ ।
भइहूँ दिवानी तन सुध भूली, कोई न जानी म्हाँरी वात ।
मीराँ कहै वीती सोइ जानै, मरण जीवण उन हाथ ।।७६।।

राग सुख सोरठ

पतियाँ मैं कैसे लिखूँ, लिखिही न जाइ ।।टेक।।
कलम धरत[1] मेरो कर कंपत, हिरदो रहो धराई ।
वात कहूँ मोहि वात न आवै, नैन रहै झराई ।

पाठान्तर—१.भरत ।

किस विध चरण कमल मैं गहिहौं, सबहि अंग थराई।
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, सबही दुख बिसराई ॥७७॥

राग होली

होली पिया विन लागै खारी, सुनो री सखी मेरी प्यारी ॥टेक॥
सूनो गाँव देस सब सूनो, सूनी सेज अटारी।
सूनी विरहन पिव विन डोलै, तज दइ पीव पियारी।
भई हूँ या दुख कारी।
देस विदेस सँदेस न पहुँचे, होय अँदेसा भारी।
गिणताँ गिणताँ घस गईं रेखा, आँगरियाँ की सारी।
अजहूँ नहिं आये मुरारी।
वाजत झाँझ मृदंग मुरलिया, वाज रही इकतारी।
आयो[1] वसंत कंथ घर नाहीं, तन में जर भया भारी।
स्याम मन कहा विचारी।
अबतो मेहर करो मुझ ऊपर, चित दे सुणो हमारी।
मीराँ के प्रभु मिलज्यो माधो, जनम जनम की कँवारी।
लगी दरसण की तारी।

राग होली

होली पिया विन मोहिं न भावै, घर आँगण न सुहावे ॥टेक॥
दीपक जोय कहा करूँ हेली, पिय परदेस रहावे।
सूनी सेज जहर ज्यूँ लागे, सुसक सुसक जिय जावे।
नींद नहिं आवे।
कब की ठाढ़ी मैं मग जोऊँ, निसदिन विरह सतावे।
कहा कहूँ कछु कहत न आवे, हिवड़ो अति अकुलावे।
पिया कब दरस दिखावे।
ऐसा है कोई परम सनेही, तुरत सँदेसो लावे।

पाठान्तर १. आई।

वा विरियाँ कब होसी मोकूँ, हँस कर निकट बुलावे।
मीराँ मिल होली गावे ॥७९॥

राग होली

किण सँग खेलूँ होली, पिया तज गये हैं अकेली ॥ टेक ॥
माणिक मोती सब हम छोड़े, गल में पहनी सेली।
भोजन भवन भलो नहिं लागै, पिया कारण भई गेली।
मुझे दूरी क्यूँ म्हेली।
अब तुम प्रीत और सूँ जोड़ी, हमसे करी क्यूँ पहेली[1]।
बहु दिन बीते अजहुँ न आये, लग रही ताला बेली।
किण बिलमाये हेली।
स्याम बिना जिवड़ो मुरझावे, जैसे जल बिन बेली।
मीराँ कूँ प्रभु दरसण दीज्यो, जनम जनम की चेली।
दरस बिन खड़ी दुहेली ॥८०॥

राग सावन

मतवारो बादर आए रे, हरि को सनेसो कबहुँ[2] न लाए रे ॥ टेक ॥
दादर मोर पपइया बोलै, कोयल सबद सुणाए रे।
(इक) कारी अँधियारी बिजरी चमकै, बिरहणि अति डरपाए रे।
(इक) गाजै बाजै पवन मधुरिया, मेहा अति झड़ लाए रे।
(इक) कारी[3] नाग बिरह अति जारी, मीराँ मन हरि भाएरे ॥८१॥

राग मलार

बादल देख डरी हो स्याम मैं बादल देख डरी[4] ॥ टेक ॥
काली पीली घटा ऊमटी[5], बरस्यो एक घरी।
जित जाऊँ तित पाणी[6] पाणी, हुई[7] हुई भोम हरी।

पाठान्तर— १. पहिली। २. कुछ। ३. फूंके कालीनाग बिरह की जारो।
४. झरी। ५. उमँगी। ६. पानिहि पानी। ७. हुई सब।

जाका पिया परदेस बसत है, भीजूँ[1] बहार खरी।
मीराँ के प्रभु हरि[2] अविनासी कीज्यौ प्रीत खरी ॥८२॥

विरहोद्गार

राग सावन

रे पपइया प्यारे कब को बैर चितार्‌यौ ॥ टेक ॥
मैं सूती छी अपने भवन में, पिय पिय करत पुकार्‌यो।
दाध्या ऊपर लूण लगायो, हिवड़ो करवत सार्‌यो।
उठि बैठो वा वृच्छ की डाली, बोल बोल कंठ सार्‌यो।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणाँ चित धार्‌यो ॥८३॥

राग सावनी कल्याण

पपइया रे पिव की वाणि न बोल ॥टेक॥
सुणि पावेली विरहणी रे, थारो रालैली आँख मरोड़।
चाँच कटाऊँ पपइया रे, ऊपरि कालर लूण।
पिव मेरा मैं पीव की रे, तू पिव कहै स कूण।
थारा सबद सुहावणा रे, जो पिव मेला आज।
चाँच मढाऊँ थारी सोवनी रे, तू मेरे सिरताज।
प्रीतम कूँ पतियाँ लिखूँ, कउवा तू ले जाइ।
जाइ प्रीतम जी सूँ यूँ कहै रे, थाँरी विरहणि धान न खाइ।
मीराँ दासी व्याकुली रे, पिव पिव करत बिहाइ।
बेगि मिलो प्रभु अंतरजामी, तुम विनि रह्योही न जाइ ॥८४॥

राग सारंग

हे मेरो मन मोहना।
आयो नहीं सखीरी, हे मेरो० ॥ टेक ॥
कैं कहुँ काज किया संतन का, कैं कहुँ गैल भुलावना।

पाठान्तर—१. बार। २. गिरधर नागर।

कहा करूँ कित जाऊँ मोरी सजनी, लाग्यो है बिरह सँतावना।
मीराँ दासी दरसण प्यासी, हरि चरणाँ चित लावणा ॥८५॥

राग बागेश्वरी

मैं विरहणि बैठी जागूँ, जगत सब सोवै री आली ॥टेक॥
विरहणि बैठी रंगमहल में मोतियन की लड़ पोवै।
इक विरहणि हम ऐसी देखी, अँसुवन की माला पोवै।
तारा गिण गिण रैण विहानी, सुख की घड़ी कब आवै।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मिल के बिछुड़ न जावै ॥८६॥

राग आनन्द भैरों

सखी मेरी नींद नसानी हो।
पिय को पंथ निहारत, सिगरी रैण विहानी हो ॥टेक॥
सब सखियन मिली सीख दई, मन एक न मानी हो।
बिनि देख्याँ कल नाहिं पड़त, जिय ऐसी ठानी हो।
अँगिअंगि[1] व्याकुल भई, मुखि पिय पिय वानी हो।
अन्तर वेदन विरह की, वह पीड़ न जानी हो।
ज्यूँ चातक घन कूँ रटै, मछरी जिमि पानी हो।
मीराँ व्याकुल विरहणी, सुध बुध विसराती हो ॥८७॥

जोगियारी सूरत मन में वसी ॥टेक॥
नित प्रति ध्यान धरत हूँ दिल में, निस दिन होत कुसी।
कहा करूँ कित जाऊँ मोरी सजनी, मानो सरप डसी।
मीराँ कहे प्रभु कबर मिलोगे, प्रीत रसीली वसी ॥८८॥

प्रभू विनि ना सरै माई।
मेरा प्राण निकस्या जात, हरी विन ना सरै माई ॥टेक॥

पाठान्तर—१ अंगछीन।

कमठ दादुर बसत जल में, जल से उपजाई।
मीन जल से बाहर कीना, तुरत मर जाई।
काठ लकरी वन परी, काठ घुन खाई।
ले अगन प्रभु डार आये, भसम हो जाई।
वन वन ढूँढ़त मैं फिरी, आली सुधि नहीं पाई।
एक बेर दरसण दीजै, सब कसर मिटि जाई।
पात ज्यूँ पीरी परी, अरु विपत तन छाई।
दास मीराँ लाल गिरधर, मिल्या सुख छाई ॥८९॥

राग भैरवी

मैं हरि बिनि क्यूँ जिवूँ री माइ ॥टेक॥
पिय कारण बौरी भई, ज्यूँ काठहिं घुन खाइ।
ओखद मूल न संचरै, मोहि लाग्यो बौराइ।
कमठ दादुर बसत जल में, जलहि तैं उपजाइ।
मीन जल के बिछुरै तन, तलफि करि मरि जाइ।
पिव ढूँढण वन वन गई, कहुँ मुरली धुन पाइ।
मीराँ के प्रभु लाल गिरधर, मिलि गये सुखदाइ ॥९०॥

राग पीलू

राम मिलण के काज सखी, मेरे आरति उर में जागी री ॥टेक॥
तलफत तलफत कल न परत है, बिरहबाण उरि लागी री।
निसदिन पंथ निहारूँ पीव को, पलकन पल भरि लागी री।
पीव पीव मैं रटूँ रात दिन, दूजी सुधि बुधि भागी री।
विरह भवँग मेरो डस्यो है कलेजो, लहरि हलाहल जागी री।
मेरी आरति मेटि गुसाईं, आइ मिलौ मोहि सागी री।
मीराँ व्याकुल अति उकलाणी, पिया की उमँग अति लागी री।

राग खंभावती

रामनाम मेरे मन बसियो, राम रसियो रिझाऊँ, ए माय।
मंद भागिण करम अभागिण, कीरत कैसे गाऊँ, ए माय।

विरह पिंजर की वाड़ सखीरी, उठकर जी हुलसाऊँ, ए माय।
मन कूँ मार सजूँ सतगुरु सूँ दुरमत दूर गमाऊँ, ए माय।
डाको नाम सुरत की डोरा, कड़ियाँ प्रेम चढ़ाऊँ, ए माय।
ज्ञान को ढोल बन्यो अति भारो, मगन होय गुण गाऊँ, ए माय।
तन करूँ ताल मन करूँ मोरचँग,[1] सोती सुरत जगाऊँ, ए माय।
निरत करूँ मैं प्रीतम आगे, तौ अमरा पुर पाऊँ ए माय।
मो अबला पर किरपा कीज्यो, गुण गोविंद के गाऊँ, ए माय।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, रज चरणाँ की पाऊँ, ए माय ॥६२॥

विरह निवेदन

राग पीलू

स्याम सुंदर पर वार।
जीवड़ा मैं वार डारूँगी, स्याम सुंदर० ॥टेक॥
तेरे कारण जोग धारणा, लोक लाज कुल डार।
तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है, नैन चलत दोउँ वार।
कहा करूँ कित जाऊँ मोरी सजनी, कठिन विरह की धार।
मीराँ कहै प्रभु कवर मिलोगे, तुम चरणाँ आधार ॥६३॥

राग पीलू

करणाँ सुणि स्याम मेरी।
मैं तो होइ रही चेरी तेरी ॥टेक॥
दरसण कारण भई बावरी, विरह बिथा तन घेरी।
तेरे कारण जोगण हूँगी, दूँगी नग्र विच फेरी।
कुंज सब हेरी हेरी।
अंग भभूत गले म्रिघ छाला, योतन भसम करूँ री।
अजहुँ न मिल्या राम अबिनासी, बन बन बीच फिरूँ री।

पाठान्तर—१. डफली।

रोऊँ नित टेरी टेरी।
जन मीराँ कूँ गिरधर मिलिया, दुख मेटण सुख भेरी।
रूम रूम साता भइ उर में, मिटि गई फेरा फेरी ॥६४

पिया अब घर आज्यो मेरे, तुम मोरे हूँ तोरे ॥टेक॥
मैं जन तेरा पंथ निहारूँ, मारग चितवत तोरे।
अवध वदीती अजहुँ न आये, दुतियन सूँ नेह जोरे।
मीराँ कहे प्रभु कवरे मिलोगे, दरसन बिन दिन दोरे ॥६५

राग देस

भवन पति तुम घरि आज्यो हो।
बिथा लगी तन माहिंने (म्हारी), तपत बुझाज्यो हो ॥टे
रोवत रोवत डोलाँत, सब रैण बिहावै हो।
भूख गई निदरा गई, पापी जीव न जावै हो।
दुखिया कूँ सुखिया करो, मोहि दरसण दीजै हो।
मीराँ व्याकुल विरहणी, अब विलम न कीजै हो ॥६६॥

जोगी म्हाँने, दरस दियाँ सुख होइ।
नातरि दुख जग माहिं जीवड़ो, निस दिन झूरैं तोइ।
दरद दिवानी भई बावरी, डोली सबही देस।
मीराँ दासी भईं हैं पंडर, पलट्या काला केस ॥६

म्हारे घर रमतो ही आई रे तू जोगिया।
कानाँ बिच कुंडल गले बिच सेली, अंग भभूत रमाई रे।
तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है, ग्रिह अँगणो न सुहाई रे।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, दरसण द्यौ मोकूँ आई रे ॥६

राग टोड़ी

आवो मन मोहना जी जोऊँ थाँरी वाट ॥टेक॥

खान पान मोहि नेक न भावै, नैण न लगे कपाट।
तुम आयाँ बिनि सुख नहिं मेरे, दिल में बोहोत उचाट।
मीराँ कहै मैं भई रावरो, छाँडो नाहिं निराट ॥९९॥

राग बिलावल

आवो मनमोहना जी मीठा थाँरो बोल ॥ टेक ॥
बालपनाँ की प्रीत रमइयाजी, कदे नांहिं आयो थाँरो तोल।
दरसण बिन मोहि जक न परत है, चित मेरो डाँवाडोल।
मीराँ कहै मैं भई रावरी, कहो तो बजाऊँ ढोल ॥१००॥

राग आसावरी

प्यारे दरसण दीज्यो आय, तुम बिन रह्यो न जाय ॥ टेक ॥
जल बिन कँवलचंद बिन रजनी, ऐसे तुम देख्याँ बिन सजनी।
आकुल व्याकुल फिरूँ रैण दिन, बिरह कलेजो खाय।
दिवस न भूख नींद नहिं रैणा, मुखसूँ कथत न आवै बैणा।
कहा कहूँ कुछ कहत न आवै, मिल कर तपत बुझाय।
क्यूँ तरसावो अंतरजामी, आय मिलो किरपा कर स्वामी।
मीराँ दासी जनम जनम की, परी तुम्हारे पाय ॥१०१॥

राग पहाड़ी

घड़ी एक नहिं आवड़े, तुम दरसण बिन मोय।
तुम हो मेरे प्राण जी, कासूँ जीवण होय।
धान न भावै नींद न आवै, बिरह सतावै मोहि।
घायल सी घूमत फिरूँ रे, मेरो दरद न जाणै कोय।
दिवस तो खाय गमाइयो रे, रैण गमाई सोइ।
प्राण गमायो झूरताँ रे, नैण गमाया रोइ।
जो मैं ऐसी जाणती रे, प्रीत कियाँ दुख होइ।
नगर ढँढोरा फेरती रे, प्रीत करो मत कोइ।
पंथ निहारो डगर बुहारूँ, ऊभी मारग जोइ।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे, तुम मिलियाँ सुख होइ ॥१०२॥

राग देस

दरस विन दूखण लागै नैण ॥ टेक ॥
जब के तुम बिछुरे प्रभु मोरे, कबहुँ न पायो चैन।
सबद सुणत मेरी छतियाँ काँपै, मीठे मीठे[1] बैन।
विरह कथा कासूँ कहूँ सजनी, वह गई करवत ऐन।
कल[2] न परत पल हरि मग जोवत, भई छमासी रैण।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे, दुख मेटण सुख दैण ॥१०३॥

धुन लावनी

तुमरे कारण सब सुख छाड्या, अब मोहि क्यूँ तरसावौ हो ॥टेक॥
विरह विथा लागी उर अन्तर, सो तुम आप बुझावौ हो।
अब छोड़त नहिं बणै प्रभूजी, हँसि करि तुरत बुलावौ हो।
मीराँ दासी जनम जनम की, अंग से अंग लगावौ हो ॥१०४॥

राग अलैया

तूँ नागर नंदकुमार, तोसों लाग्यो नेहरा ॥टेक॥
मुरली तेरी मन हर्‌यो, बिसर्‌यौ ग्रिह ब्योहार।
जबतैं स्रवननि धुनि परी, ग्रिह अँगना न सुहाइ।
पारधि ज्यूँ चूकै नहीं, मृगी बेधि दई आय।
पानी पीर न जाणई, मीन तलफि मरि जाइ।
रसिक मधुप के मरम को, नहिं समुझत कँवल सुभाइ।
दीपक को जु दया नहीं, उड़ि उड़ि मरत पतंग।
मीराँ प्रभु गिरधर मिले, (जैसे) पाणी मिल गयो रंग ॥१०५॥

राग प्रभावती

म्हाँरो जनम मरन को साथी, थाँने नहिं बिसरूँ दिन-राती ॥टेक॥
तुम देख्याँ विन कल न पड़त है, जानत मेरी छाती।
ऊँची चढ़चढ़ पंथ निहारूँ, रोय रोय अखियाँ राती।
यो संसार सकल जग झूँठो, झूँठा कुलरा न्याती।

पाठान्तर—१. लगे तुम। २. एक टकटकी पंथ निहारूँ।

दोउ कर जोड्यां अरज करत हूँ, सुण लीज्यो मेरी वाती।
यो मन मेरो बड़ो हरामो, ज्यूँ मदमातो हाथी।
सतगुरु दस्त धर्यो सिर ऊपर, आकुँस दे समझाती।
पल पल तेरा रूप निहारूँ, निरख निरख सुखपाती।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणाँ चित राती॥ १०६॥

राग पूरिया कल्याण

सजन सुध ज्यूँ जाणे त्यूँ लीजै हो॥ टेक॥
तुम विन मोरे और न कोई, क्रिपा रावरी कीजै हो।
दिन नहिं भूख रैण नहिं निंदरा,यूं तन पलपल छीजै हो।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मिल विछड़न मत कीजै हो॥१०७॥

राग प्रभाती

राम मिलण रो घणो उमावो, नित उठ जोऊँ वाटड़ियाँ॥टेक॥
दरस बिना मोहि कछु न सुहावै, जक न पड़त है आँखड़ियाँ।
तलफत तलफत वहु दिन वीता, पड़ी विरह की पाशड़ियाँ।
अव तो बेगि दया करि साहिव, मैं तो तुम्हारी दासड़ियाँ।
नैण दुखी दरसण कूँ तरसैं, नाभिन बैठे साँसड़ियाँ।
राति दिवस यह आरति मेरे, कव हरि राखै पासड़ियाँ।
लगी लगनि छूटण की नाहीं, अब क्यूँ कीजै आँटड़ियाँ।
मीराँ के प्रभु कवर मिलोगे, पूरो मनकी आसड़ियाँ॥१०८॥

राग सिंध भैरवी

म्हाँरे घर होता जाज्यो राज॥टेक॥
अव के जिन टाला दे जावो, सिर पर राखूँ विराज।
म्हे तो जनम-जन्म की दासी, थे म्हाँका सिरताज।
पावणड़ा म्हाँके भलाँ ही पधारो, सव ही सुधारण काज।
म्हे तो बुरी छाँ थाँके भली छै घणेरी, तुम हो एक रसराज।
थाँमे हम सवहिन की चिंता तुम, सबके हो गरिव निवाज।

सबके मुगट सिरोमनि सिर पर, मानु पुण्य की पाज।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बाँह गहे की लाज ॥१०९॥

कबहूँ मिलेगो मोहि आई, रे तूँ जोगिया ॥टेक॥
तेरे कारण जोग लियो है, घरि-घरि अलख जगाई।
दिवस न भूख रैंणनहिं निंदरा, तुम बिनु कछू न सुहाई।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, मिलि करि तपति बुझाई ॥११०॥

राग भीम पलासी

गोविंद कबहुँ मिलै पिया मेरा ॥टेक॥
चरण कँवल कूँ हँसि-हँसि[1] देखूँ राखूँ नैणाँ नेरा।
निरखण कूँ मोहि चाव घणेरो, कब देखूँ मुख तेरा।
व्याकुल प्राण धरत नहिं धीरज, मिलि तूँ मीत सबेरा।
मीराँ के प्रभु हरि गिरधर नागर, ताप तपन बहुतेरा ॥१११॥

राग कोशी

म्हाँरी सुध ज्यूँ जानो ज्यूँ लीजो जी ॥टेक॥
पल-पल भीतर पंथ निहारूँ, दरसण म्हाँने दीजो जी।
मैं तो हूँ बहु औगणहारी, औगण चित मत दीजो जी।
मैं तो दासी थाँरे चरण कँवल[2] की, मिल बिछुरन मत कीजो जी।
मीराँ तो सतगुर जी सरणे, हरि चरणाँ चित दीजो जी ॥११२॥

राग टोड़ी

म्हाँरे घर आज्यो प्रीतम प्यारा, तुम बिन सब जग खारा ॥टेक॥
तन मन धन सब भेंट करूँ, ओ भजन करूँ मैं थाँरा।
तुम गुणवंत बड़े गुणसागर, मैं हूँ जी औगणहारा।
मैं निगुणी गुण एको नाहीं तुझमें जी गुण सारा।
मीराँ कहै प्रभु कबहि मिलोगे, बिन दरसण दुखियारा ॥११३॥

पाठान्तर—१. हँस करि। २. जनाँ।

वारी-वारी हो राम हूँ वारी, तुम आज्या गली हमारी ॥टेक॥
तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है, जोऊँ बाट तुम्हारी।
कूण सखी सूँ तुम रँग राते, हम सूँ अधिक पियारी।
किरपा कर मोहिं दरसण दीज्यो, सब तकसीर बिसारी।
तुम सरणागत परमदयाला, भवजल तार मुरारी।
मीराँ दासी तुम चरणन की, बार बार बलिहारी ॥११४॥

तुम आज्यो जी रामा, आवत आस्याँ सामा ॥टेक॥
तुम मिलियाँ मैं बहु सुख पाऊँ, सरैं मनोरथ कामा।
तुम बिच हम बिच अंतर नाहीं, जैसे सूरज घामा।
मीराँ मन के और न माने, चाहे सुन्दर स्यामा ॥११५॥

राग देश

पिया मोहिं दरसण दीजै हो।
बेर बेर मैं टेरहूँ, अहे क्रिपा कीजै हो ॥टेक॥
जेठ महीने जल बिना, पंछी दुख होई, हो।
मोर आसाढ़ाँ कुरलहे, घन चात्रग सोई, हो।
सावण मैं झड़ लागियौ, साँख तीजाँ खेलै, हो।
भादरवै नदिया वहै, दूरी जिन मेलै, हो।
सीप स्वाति ही झेलती, आसोजाँ सोई, हो।
देव काती में पूजहे, मेरे तुम होई, हो।
मगसर ठंड बहोती पड़ै, मोहि बेगि सम्हालो, हो।
पोस मही पाला घणा, अबही तुम न्हालो, हो।
मह्रा महीं बसंत पंचमी, फागाँ सब गावै, हो।
फागुण फागा खेलहैं, बणराइ जरावै, हो।
चैत चित्त में ऊपजी, दरसण तुम दीजै, हो।
वैसाख बणराइ फूलवै, कोइल कुरलीजै, हो।

काग उड़ावत दिन गया, बूझूँ पिंडत जोसी, हो।
मीराँ विरहणि ब्याकुली, दरसण कब होसी, हो ॥११६॥

जोगिया जी आवो ने या देस ॥टेक॥
नैणज देखूँ नाथ मेरो, ध्याइ करूँ आदेस।
आया सावण मास सजनी, भरे जल थल ताल।
रावल कुण बिलमाइ राखो, बिरहनि है बेहाल।
बीछड़ियाँ कोइ भौ भयो (रे जोगी), ऐ दिन अहला जाय।
एक बेरी देह फेरी, नगर हमारे आइ।
वा मूरति मेरे मन बसे (रे जोगी), छिन भरि रह्यौ न जाइ।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, दरसण द्यौ हरि आइ ॥११७॥

जोगिया[1] ने कहज्यो जी आदेस ॥टेक॥
जोगियो चतुर सुजाण सजनी, ध्यावै संकर सेस।
आऊँगी मैं नाह रहूँगी (रे म्हारा), पीव बिना परदेस।
करि किरपा प्रतिपाल मोपरि, रखो न अपण देस।

पाठान्तर—१. जोगिया ने कहियो रे आदेस।
आऊँगी मैं नाहिं रहूँ रे, कर जटाधारी भेस।
चीर को फाड़ूँ कंथा पहिरूँ, लेऊँगी उपदेस।
गिणते गिणते घिस गई रे, मेरी उँगलियों की रेख।
मुद्रा माला भेषलूँ रे खप्पड़ लेउँ हाथ।
जोगिन होय जग ढूँढसूं रे, रावलिया के साथ।
प्राण हमारा वहाँ बसत है, यहाँ तो खाली खोड़।
मात पिता परिवार सूँ रे, रही तिनका तोड़।
पाँच पचीसो बस किये, मेरा पल्ला न पकड़ै कोय।
मीरा ब्याकुल विरहनी, कोइ आय मिलावै मोय।

माला मुदरा मेखला रे वाला, खप्पर लूँगी हाथ।
जोगणि होइ जुग ढूँढसूँ रे, म्हाँरा रावलियारी साथ।
सावण आवण कह गया वाला, कर गया कौल अनेक।
गिणता-गिणता घिस गई रे म्हाँरा आँगलियाँरी रेख।
पीव कारण पीली पड़ी वाला, जोवन वाली वेस।
दास मीराँ राम भजि कै, तन मन कीन्हौं पेस ॥११८॥

राग प्रभाती

थे तो पलक उघाड़ो दीनानाथ,
मैं हाजिर नाजिर कबकी खड़ी ॥टेक॥
साजनियाँ[1] दुसमण होय बैठ्या[2] सबने लगूँ कड़ी।
तुम बिन साजन[3] कोइ नहीं है, डिगी नाव मेरी समँद अड़ी।
दिन नहिं चैन रैण नहिं निंदरा, सूखूँ खड़ी खड़ी।
बाण विरह का लग्या हिये में, भूलूँ न एक घड़ी।
पत्थर की तो अहिल्या तारी, वन के बीच पड़ी।
कहा बोझ मीराँ में कहिये, सौ पर[4] एक घड़ी[5] ॥११९॥

राग मारवा

इण सरवरियाँ री पाल मीराँबाई साँपडे ॥टेक॥
साँपड किया असनान, सूरज सामी जप करे।
होय विरंगी नार, डगराँ विच क्यूं खड़ी।
काँई थारो पीहर दूर, घराँ सासू लड़ी।
चल्यो जा रे असल गुँवार, तनै मेरी के पड़ी।
गुरु म्हारा दीन दयाल, हीराँरा पारखी।

पाठान्तर—१. साऊ थे। २. लागे। ३. साऊ। ४. ऊपर। ५. इसके आगे कहीं कहीं ये पंक्तियाँ भी आती हैं:—
गुरु रैदास मिले मोहिं पूरे, धुर से कलम भिड़ी।
सतगुरु सैन दई जब आके, जोत में जोत रली।

दियो म्हाने ग्यान बताय, संगत कर साधरी।
खोई[1] कुल की लाज, मुकुंद थाँरे कारणे।
वेगहो लीज्यो सँभाल, मीरा पड़ी वारणे ॥१२०॥

राग दरबारी कान्हरा

पिय विनि सूनौ छै म्हाँरो देस ॥ टेक ॥
ऐसा है कोई पीवकूँ मिलावै, तन मन करूँ सब पेस।
तेरे कारण वन वन डोलूँ, कर जोगण को भेस।
अवधि वदीती अजूँ न आए, पंडर होइ गया केस।
मीराँ के प्रभु कबर मिलोगे, तजि दियो नगर नरेस ॥१२१॥

आशा किरण

राग कोसी

कोई कहियौरे प्रभु आवन की।
आवन की मनभावन की, कोई० ॥ टेक ॥
आप न आवै लिख नहिं भेजै; बाँण पड़ी ललचावन की।
ए दोइ नैण कह्यौ नहिं मानै, नदिया वहै जैसे सावन की।
कहा करूँ कछु नहिं वस मेरो; पाँख नहीं उड़ जावन की।
मीराँ कहै प्रभु कवर मिलोगे, चेरी भइ हूँ तेरे दाँवन की ॥१२२॥

भींजे म्हाँरो दाँवन चीर, सावणियो लूम रह्यो रे ॥ टेक ॥
आप तो जाय विदेसां छाये, जिवड़ो धरत न धीर।
लिख लिख पतियाँ सँदेसा भेजूँ, कव घर आवै म्हांरो पीव।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, दरसन दोने वलवीर ॥१२३॥

पाठान्तर—१. इसके पहले कहीं-कहीं ये पंक्तियाँ भी आती हैं :—
इण सरवदियारा हंस सुरङ्ग थारी पाँखड़ी।
राम मिलण कद होय, फड़ोके म्हारी आँखरी।

मेरे प्रीयतम प्यारे राम कूँ, लिख भेजूँ रे पाती ॥टेक॥
स्याम सनेसो कबहुँ न दीन्हो, जानि बूझ गुझबाती।
डगर[2] बुहारूँ पंथ निहारूँ, जोइ जोइ अँखियाँ राती।
राति[3] दिवस मोहि कल न पड़त है, हीयो फटत मेरी छाती।
मीराँ[4] के प्रभु कबर मिलोगे, पूरब जनम का साथी ॥१२४॥

सद्गुरु कृपा

राग धानी

मोहि लागी लगन गुरु चरनन की ॥टेक॥
चरन बिन कछुवै नाहिं भावै, जग माया सब सपनन की।
भवसागर सब सूखि गयो है, फिकर नहीं मोहिं तरनन की।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, आस वही गुरु सरनन की ॥१२५॥

सद्गुरुसे विरह निवेदन

म्हाँरा सतगुर वेगा आज्यो जी, म्हाँरे सुखरी सीर बुवाज्यो जी।
तुम बिछुडियाँ दुख पाऊँ जी, मेरा मन माँही मुरझाऊँ जी।
मैं कोइल ज्यूँ कुरलाऊँ जी, कुछ बाहरि कहि न जणाऊँ जी।
मोहि बाघड़ विरह सतावै जी, कोई कहियाँ पार न पावै जी।
ज्यूँ जल त्याग्या मीना जी, तुम दरसण बिन खीना जी।
ज्यूँ चकवी रैंण न भावै जी, वा ऊगो भाण सुहावै जी।
ऊ दिन कबै करोला जी, म्हाँरे आँगण पाँव धरोला जी।
अरज करै मीराँ दासी जी, गुर पद रज की मैं प्यासी जी ॥१२६॥
सत गुर म्हाँरी प्रीत निभाज्यो जी ॥ टेक ॥
थे छो म्हारा गुण रा सागर, औगण म्हारूँ मति जाज्यो जी।

पाठान्तर—१. ने । २. ऊँची चढ़ चढ़ पंथ निहारूँ रोय रोय अँखियाँ राती । ३. तुम देख्याँ बिन, इ० । ४. कहे।

लोकन धीजै (म्हारो) मन न पतीजै, मुखडा रा सबद सुणाज्यो जी।
मैं तो दासी जनम जनम की, म्हारे आँगणि रमता आज्यो जी।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, बेडो पार लँगाज्यो जी ॥१२

मिलता जाज्यो हो गुरु ज्ञानी, थाँरी सूरत देखि लुभानी ॥टेक
मेरो नाम बूझि तुम लीज्यो, मैं हूँ विरह दिवानी।
रात दिवस कल नाहिं परत है, जैसे मीन विन पानी।
दरस विना मोहिं कछु न सुहावे, तलफ तलफ मर जानी।
मीराँ तो चरणन की चेरी, सुन लीजे सुखदानी ॥१२

स्याम तेरी आरति लागी हो।
गुरु परतापे पाइया, तन दुरमति भागी हो ॥टेक॥
या तन को दियना करों, मनसा करों बाती हो।
तेल भरावों प्रेम का, बारों, दिन राती हो।
पाटी पारों ज्ञान की, मति माँग सँवारों हो।
तेरे कारन साँवरे, धन जोवन वारों हो।
या सेजिया वहु रंग कीं, वहु फूल विछाये हो।
पंथ मैं जो हौं स्याम का अजहुँ नहिं आये हो।
सावन भादों ऊमड़ो, वरषा रितु आई हो।
भौंह घटा घन घेरि के, नैनन झरि लाई हो।
मात पिता तुमको दियो, तुमही भल जानो हो।
तुम तजि और भतार को, मन में नहिं आनों हो।
तुम प्रभु पूरन ब्रह्म हो, पूरन पद दीजै हो।
मीराँ व्याकुल विरहनी, अपनी करि लीजै हो ॥१२६॥

तृतीय खण्ड

भगवन्

राग दरबारी

तुम सुणौ दयाल म्हाँरी अरजी ॥टेक॥

भवसागर में वही जात हूँ, काढ़ो तो थाँरी मरजी।
यो[1] संसार सगो नहिं कोई, साँचा सगा रघुवरजी।
मात पिता औ कुटम कवीलो, सब मतलब के गरजी।
मीराँ की प्रभु अरजी सुण लो, चरण लगावो थाँरी मरजी ॥१३०॥

राग सारंग

मैं तो तेरी सरण परी रे रामा, ज्यूँ जाणे त्यूं[2] तार ॥टेक॥
अड़सठ तीरथ भ्रमि भ्रमि आयो, मन नाहीं मानी हार।
या जग में कोई नहिं अपणा, सुणियौ श्रवण मुरार।
मीराँ दासी राम भरोसे, जम का फंदा निवार ॥१३१॥

राग भैरवी

अब मैं सरण तिहारी जी, मोहिं राखो कृपानिधान ॥टेक॥
अजामील अपराधी तारे, तारे नीच सदान।
जल डूबत गजराज उबारे, गणिका चढ़ी विमान।
और अधम तारे बहुतेरे, भाखत संत सुजान।
कुवजा नीच भीलणी तारी, जानै सकल जहान।
कहँ लगि कहूँ गिणत नहिं आवै, थकि रहै बेद पुरान।
मीराँ कहै मैं सरण रावली, सुनियो दोनों कान ॥१३२॥

राग पहाड़ी

मेरो वेड़ो लगाज्यो पार, प्रभुजी मैं अरज करूँ छूँ ॥टेक॥
या[2] भव में मैं बहु दुख पायो, संसा सोग निवार।
अष्ट करम की तलब लगी है, दूर करो दुख भार।
यो संसार सब बह्यो जात है, लख चौरासी री धार।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, आवागमन निवार ॥१३३॥

रावलो विड़द मोहिं रूड़ो लागे, पीड़ित पराये प्राण ॥टेक॥

पाठान्तर—१. ग्रेस। २. इण।

सगो सनेही मेरी और न कोई, वैरी सकल जहान।
ग्राह गह्यो गजराज उबारयो, वूड़ न दियो छै जान।
मीराँ दासी अरज करत है, नहिं जो सहारो आन ॥१३४॥

राग पीलू

हमने सुणीछै हरि अधम उधारण।
अधम उधारण सब जग तारण, हमने सुणीछै० ॥टेक॥
गज की अरजि गरजि उठि ध्यायो, संकट पड्यौ तब कष्ट निवा
द्रोपति सुता को चीर वधायो, दूसासन को मान मद मा
प्रहलाद की प्रतंग्या राखी, हरणाकस नख उद्र विदा
रिख पतनी पर किरपा कीन्हीं, विप्र सदामाँ की विपति विडा
मीराँ के प्रभु मो बंदी परि, एती अवेरि भई किण कारण ॥१

राग विहाग

राम[1] मोरी वांहड़ली जी गहो ॥टेक॥
या भव सागर मँझधार में, थे ही निभावण हो।
म्हाँ में ओगण घणा छै हो प्रभुजी, थेही सहो तो सहो।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, लाज विरद की वहो ॥१३६॥

म्हाँ रे नैणाँ आगे रहांजो जी, स्याम गोबिंद ॥टेक॥
दास कवीर घर वालद जो लाया, नामदेव की छान छवंद।
दास धना को खेत निपजायो, गज की टेर सुनंद।
भीलणी का वेर सुदामा का तन्दुल, भर मुठड़ी बुकंद।
करमावाई को खीच अरोग्यो, होइ परसण पावंद।
सहस गोप विच स्याम विराजे, ज्यों तारा विच चंद।
सब संतों का काज सुधारा, मीराँ सूँ दूर रहंद॥

पाठान्तर—१. स्याम।

पिया तेरे नाम लुभाणी हो ॥टेक॥
नाम लेत तिरता सुएया, जैसे पाहण पाणी, हो।
सुकिरत कोई ना कियो, वहु करम कुमाणी, हो।
गणिका कीर पढ़ावताँ, बैकुंठ वसाणी, हो।
अरध नाम कुंजर लियो, वाको अवध घटानी, हो।
गरुड़ छाँड़ि हरि धाइया, पसुजूण मिटाणी, हो।
अजामेल से ऊधरे, जम त्रास नसानी, हो।
पुत्र हेते पदवी दई, जग सारे जाणी हो।
नाम महातम गुरु दियो, परतीत पिछाणी, हो।
मीराँ दासी रावली, अपणी कर जाणी हो ॥१३८॥

विश्वास

मुझ अवला ने मोटी नीराँत थई,
सामलो घरेनु म्हाँरे साँचु रे ॥टेक॥
वालीं वड़ाऊँ वीठल वर केरी, हार हरी ने म्हाँरो हइये, रे।
चीन माल चतुरभुज चुड़लो, सिद सोनी घरे जइये, रे।
झाँझरिया जगजीवन केरा, किस्न गलाँरी कंठी, रे।
विछुवा घुँघरा रामनरायण, अनवट अंतरजामी, रे।
पेटी घड़ाउं पुरुसोत्तम केरी, टीकम नाम नूँ तालो, रे।
कूँची कराऊं करुनानंद केरी, ते मा घैणा नूँ मारूँ, रे।
सासर वासो सजी ने बैठी, हवे नथी काइ काँचूँ, रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरिनूँ चरणे जाचूँ, रे ॥१३९॥

राग सारंग

नंद नँदन विलमाई, वदराने घेरी माई ॥ टेक ॥
इत घन गरजे उत घन लरजे, चमकत विज्जु सवाई।
उमड़ घुमड़ चहूँ दिस से आया, पवन चलै पुरवाईं।
दादुर मोरं पपीहा वोलै, कोयल सवद सुणाई।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चितलाई ॥१४०॥

प्रतीक्षा

राग कलिंगड़ा

सुनी हो मैं हरि आवन की अवाज ॥ टेक ॥
म्हैल चढ़े चढ़ि जोऊँ मेरी सजनी, कब आवै महाराज ।
दादर मोर पपइया बोलै, कोइल मधुरे साज ।
उमँग्यो इन्द्र चहूँ दिसि बरसै, दामणि छोड़ी लाज ।
धरती रूप नवानवा धरिया, इन्द्र मिलण कै काज ।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, बेग मिलो महाराज ॥१४१॥

मिलन

राग सोरठ

जोसीड़ा ने लाख बधाई रे, अब घर आये स्याम ॥ टेक ॥
आजि आनंद उमँगि भयो है, जीव लहै सुखधाम ।
पाँच सखी मिलि पीव परसि कैं, आनँद ठामूँ ठाँम ।
बिसरि गई दुख निरखि पिया कूँ सुफल मनोरथ काम ।
मीराँ के सुख सागर स्वामी, भवन गवन कियो राम ॥१४२॥

राग नट बिलावल

रे साँवलिया म्हारे आज रँगीली गणगोर, छै जी ॥ टेक ॥
काली पीली बदली में बिजली चमके, मेघ घटा घनघोर, छै जी ।
दादुर मोर पपीहा बोलै, कोयल कर रही सोर, छै जी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरणाँ में म्हाँरो जोर, छै जी ॥१४[illegible]

राग मलार

झुक[1]आई बदरिया सावन की, सावन की मन भावन की ॥ टेक ॥
सावन में उमँग्यो मेरो मनवा, भनक सुनी हरि आवन की ।
उमड़ घुमड़ चहुँ दिस से आयो, दामण दमक झर लावन की ।

पाठान्तर—1. बरसै ।

नन्ही नन्ही बूँदन मेहा वरसै, सीतल पवन सोहावन की।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, आनंद मंगल गावन की ॥१४४॥

सावण दे रह्या जोरा रे, घर आयो जी स्याम मोरा, रे ॥ टेक ॥
उमड़ घुमड़ चहुँदिस से आया, गरजत है घन घोरा, रे।
दादुर मोर पपीहा वोलै, कोयल कर रही सोरा रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, ज्यो वारूँ सोई थोरा, रे ॥१४५॥

रँगभरी रँगभरी रँग सूँ भरीरी,
होली आई प्यारी रँग सूँ भरी, री ॥ टेक ॥
उड़त गुलाल लाल भये वादल, पिचकारिन की लगी झरी, री।
चोवा चंदन और अरगजा, केसर गागर भरी धरी, री।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चेरी होय पायन में परी, री ॥१४६॥

वदला रे तू जल भरि ले आयो ॥ टेक ॥
छोटी छोटी बूँदन वरसन लागीं, कोयल सवद सुनायो।
गाजै वाजै पवन मधुरिया, अंवर वदराँ छायो।
सेझ सँवारी पिय घर आये, हिलमिल मंगल गायो।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, भाग भलो जिन पायो ॥१४७॥

राग परज

सहेलियाँ साजन घरि आया हो ॥ टेक ॥
वहोत दिनाँ की जोवती, विरहणि पिव पाया, हो।
रतन करूँ नेवछावरी, ले आरति साजूँ, हो।
पिया का दिया सनेसड़ा, ताहि वहोत निवाजूँ, हो।
पाँच सखी इकठी भई, मिलि मंगल गावै, हो।
पिय का रली वधावणाँ, आँणद अंगि न मावै, हो।

हरि सागर सूँ नेहरो, नैणाँ बँध्या सनेह, हो।
मीराँ सखी के आँगणाँ, दूधाँ बूठा मेह, हो ॥१४८॥

राग कजरी

म्हाँरा ओलगिया घर आया जी ॥ टेक ॥
तन की ताप मिटी सुख पाया, हिलमिल मंगल गाया, जी।
घन की धुनि सुनि मोर मगन भया, यूँ मेरे आणँद आया, जी।
मगन भई मिलि प्रभु अपणासूँ, भौ का दरध मिटाया, जी।
चंद कूँ देखि कमोदणि फूलै, हरखि भया मेरी काया, जी।
रग रग सीतल भई मेरी सजनी, हरि मेरे महल सिधाया, जी।
सव भगतन का कारज कीन्हा, सोई प्रभु मैं पाया, जी।
मीराँ विरहणि सीतल होई, दुख दुन्द दूरि न्हसाया, जी ॥१
मैं तो राजी भई मेरे मन में, मोहि पिया मिले इक छिन में ॥ टे
पिया मिल्या मोहिं किरपा कीन्हीं, दीदार दिखाया हरि ने।
सतगुरु सवद लखाया असरी, ध्यान लगाया धुन में।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मगन भई मेरे मन में ॥१

राग होरी सिन्दूरा

फागुन के दिन चार रे, होरी खेल मना रे ॥ टेक ॥
विनि करताल पखावज बाजै, अणहद की झणकार रे।
विनि सुर राग छतीसूँ गावै, रोम रोम रँग सार रे।
सील सँतोख की केसर घोली, प्रेम प्रीत पिचकार रे।
उड़त गुलाल लाल भयो अंबर[1], बरसत रंग अपार रे।
घट के सव पट खोल दिये हैं, लोक लाज सब डार रे।
होरी खेलि[2] पीव घर आये, सोइ प्यारी प्रिय प्यार रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कँवल वलिहार रे ॥१५

पाठान्तर—१. बादल। २. खेलि प्यारी।

आत्म समर्पण

राग जोगिया

वाल्हा मैं बैरागण हूँगी हो।
जीं जीं भेष म्हाँरो साहिब रीझे, सोइ सोइ भेष धरूँगी, हो ॥ टेक ॥
सील सँतोष धरूँ घट भीतर, समता पकड़ रहूँगी, हो।
जाको नाम निरंजण कहिये, ताको ध्यान धरूँगी, हो।
गुरू ज्ञान रँगूँ तन कपड़ा, मन मुद्रा पेरूँगी, हो।
प्रेम प्रीत सूँ हरिगुण गाऊँ, चरणन लिपट रहूँगी, हो।
या तन की मैं करूँ कींगरी, रसना राम रटूँगी, हो।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, साधाँ सँग रहूँगी, हो ॥१५२॥

राग देस

चालाँ वाही देस प्रीतम, चालाँ वाही देस ॥ टेक ॥
कहो कसूमल साड़ी रँगावाँ, कहो तो भगवाँ भेस।
कहो तो मोतियन माँग भरावाँ, कहो छिटकावाँ केस।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सुणज्यो विड़द नरेस ॥१५३॥

मने चाकर राखोजी, मने[1] चाकर राखोजी ॥ टेक ॥
चाकर रहसूँ बाग लगासूँ, नित उठ दरसण पासूँ।
विन्द्रावन की कुंज गलिन में, तेरी[2] लीला गासूँ।
चाकर में दसरण पाऊँ, सुमिरण पाऊँ खरची।
भाव भगति जागीरी पाऊँ, तीनों वाताँ सरसी।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, गल बैजन्ती माला।
विन्द्रावन में धेनु चरावे, मोहन मुरली वाला।
हरे हरे[3] नित बन्न बनाऊँ, विच विच राखूँ क्यारी।

पाठान्तर—१. गिरधारी लाल। २. गोबिंद। ३. ऊँचे ऊँचे महल बनाऊँ बिच बिच राखूँ बारी।

साँवरिया के दरसण पाऊँ पहर कुसुम्भी सारी।
जोगी आया जोग करंण कूँ, तप करणे संन्यासी।
हरी भजन कूँ साधू आया, विन्द्रावन के वासी।
मीराँ के प्रभु गहिर गँभीरा, सदा[1] रहोजी धीरा।
आधीरात प्रभु दरसण देहैं, प्रेमनदी[2] के तीरा ॥१५४॥

सद्गुरु महिमा

राग धानी

री मेरे पार निकस गया, सतगुर मारया तीर ॥ टेक ॥
विरह भाल लगी उर अन्तरि[3], ब्याकुल भया सरीर।
इत उत चित्त चलै नहिं कबहूँ, डारी प्रेम जँजीर।
कै जाणैं मेरो प्रीतम प्यारो, और न जाणै पीर।
कहा करूँ मेरो बस नहिं सजनी, नैन झरत दोउ नीर।
मीराँ कहै प्रभु तुम मिलियाँ विनि, प्राण धरत नहिं धीर ॥१५५॥

झर मारी रे बानाँ मेरे सतगुरु विरह लगाय के ॥ टेक ॥
पावन पंगा कानन वहिरा, सूझत नाहीं नैना।
खड़ी खड़ी रे पंथ निहारूँ, मरम न कोई जाना।
सतगुरु ओषद ऐसी दीन्हीं, रूम रूम भइ चैना।
सतगुरु जस्या बैद न कोई, पूछो वेद पुराना।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, अमर लोक में रहना ॥१५६॥

मैंने राम[4] रतन धन पायौ ॥ टेक ॥
वसत अमोलक दी मेरे सतगुर, करि किरपा अपणायौ।
जनम जनम की पूँजी पाई, जग में सबै खोवायौ।

पाठान्तर—१. हृदे। २. जमुना जी। ३. अंदर। ४. नाम।

खरचै नहिं कोई चोर न लेवै, दिन दिन वधत सवायौ।
सत की नाव खेवटिया सतगुर, भवसागर तरि आयौ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरखि हरखि जस गायौ ॥१५७॥

राग मलार

लगी मोहि राम खुमारी हो ॥ टेक ॥
रमझम वरसै मेहड़ा, भीजै तन सारी, हो।
चहुँ दिन चमकै दामणी, गरजै घन भारी, हो।
सतगुर भेद वताइया, खोली भरम किंवारी, हो।
सवघट दीसै आतमा, सवहीं सूँ न्यारी, हो।
दीपक जोऊँ ग्यानका, चढ़ूँ अगम अटारी, हो।
मीराँ दासी राम की, इमरत वलिहारी, हो ॥१५८॥

मीराँ मन मानी सुरत सैल असमानी ॥ टेक ॥
जव जव सुरत लगे वा घर की, पल पल नैनन पानी।
ज्यों हिये पीर तीर सम सालत, कसक कसक कसकानी।
रात दिवस मोहिं नीद न आवत, भावै अन्न न पानी।
ऐसी पीर बिरह तन भीतर, जागत रैन विहानी।
ऐसा बैद मिलै कोइ भेदी, देस विदेस पिछानी।
तासों पीर कहूँ तन केरी, फिर नहिं भरमों खानी।
खोजत फिरों भेद वा घर को, कोई न करत वखानी।
रैदास संत मिले मोहि सतगुरु, दीन्हा सुरत सहदानी।
मैं मिली जाय पाय पिय अपना, तव मोरी पीर बुझानी।
मीराँ खाक खलक सिरडारी, मैं अपना घर जानी ॥१५९॥

राग बिहागरा

रमइया विनि यौ जिवड़ौ दुख पावै।
कहो कुण धीर बँधावै ॥ टेक ॥

यौ संसार कुवधि को भाँडो, साध सँगति नहिं भावै।
राम नाम की निंद्या ठाणै, करम ही करम कुमावै।
राम नाम विनि मुकुति न पावै, फिर चौरासी जावै।
साध सँगत में कवहुँ न जावै, मूरखि जनम गुमावै।
जन मीराँ सतगुर के सरणैं, जीव परमपद पावै ॥१६०॥

राग विलावल

लेताँ लेताँ रामनाम रे, लोकड़ियाँ तो लाजाँ मरे छै ॥ टेक ॥
हरि मंदिर जाताँ पाँवलिया रे दूखे, फिरि आवे सारो[1] गाम, रे।
झगड़ो थाय त्याँ दौड़ी ने जाय रे, मूकी ने घर ना काम, रे।
भाँड भवैया गणिका नित करताँ, वेसी रहे चारे जाम, रे।
मीराँना प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित हाम, रे ॥१६१॥

यहि विधि भक्ति कैसे होय ॥ टेक ॥
मनकी मैल हियतें न छूटी, दियो तिलक सिर धोय।
काम कूकर लोभ डोरी, वाँधि मोहिं चंडाल।
क्रोध कसाई रहत घट में, कैसे मिले गोपाल।
विलार विषया लालची रे, ताहि भोजन देत।
दीन हीन ह्वै छुधा रत से, राम नाम न लेत।
आपहि आप पुजाय के रे, फूले अँग न समात।
अभिमान टीला किये बहु कहु, जल कहाँ ठहरात।
जो तेरे हिय अंतर की जानै, तासों कपट न वनै।
हिरदे हरि को नाम न आवै, मुख तें मनिया गनै।
हरी हितु से हेत कर, संसार आसा त्यागि।
दास मीराँ लाल गिरधर, सहज कर वैराग ॥१६२॥

पाठान्तर—1. आखो।

व्रज भूमि

राग सारंग

आली म्हाँ ने लागे वृन्दावन नीको ॥टेक॥
घर-घर तुलसी ठाकुर पूजा, दरसण गोविंद जी को।
निरमल नीर वहत जमना में, भोजन दूध दही को।
रतन सिंघासण आप विराजे, मुगट धर्यो तुलसी को।
कुंजन-कुंजन फिरत राधिका, सबद सुणत मुरली को।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, भजन विना नर फीको ॥१६३॥

राग सूहा

चालो मन गंगा जमना तीर ॥टेक॥
गंगा जमना निरमल पाणी, सीतल होत सरीर।
बँसी वजावत गावत कान्हो, संग लियाँ बलवीर।
मोर मुगट पीतांवर सोहै, कुंडल झलकत हीर।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल पै सीर ॥१६४॥

बाल लीला

राग कनड़ी

हो काँनाँ किन गूँथी जुल्फाँ कारियाँ ॥टेक॥
सुघर कला प्रवीन हाथन सूँ, जसुमतिजू ने सँवारियाँ।
जो तुम आओ मेरी वाखरियाँ, जरि राखूँ चंदन किवारियाँ।
मीराँ के प्रभू गिरधर नागर, इन जुलफन पर वारियाँ ॥१६५॥

राग परज

गोकुला के वासी भले ही आए, गोकुला के वासी ॥टेक॥
गोकुल की नारि देखत, आनँद सुखरासी।
एक गावत एक नाँचत, एक करत हाँसी।
पीतांवर फेटा वांधे, अरगजा सुवासी।
गिरिधर से सुनवल ठाकुर, मीराँ सी दासी ॥१६६॥

राग छाया टोड़ी

सखी, म्हारो कानूड़ो कलेजे की कोर ॥टेक॥
मोर मुगट पीतांवर सौहै, कुंडल की झकझोर।
विन्द्रावन की कुंज गलिन में, नाचत नंद किसोर।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कँवल चितचोर ॥१६७॥

राग प्रभाती

जागो वंसीवारे ललना, जागो मोरे प्यारे ॥ टेक ॥
रजनी वीती भोर भयो है, घर घर खुले किंवारे।
गोपी दही मथत सुनियत है, कँगना के झनकारे।
उठो लाल जी भोर भयो है, सुर नर ठाढ़े द्वारे।
ग्वाल वाल सव करत कुलाहल, जय जय सवद उचारे।
माखन रोटी हाथ में लीनी, गउवन के रखवारे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सरण आयाँ कूँ तारे ॥१६८॥

वंशी-वादन लीला

राग कान्हरो

भई हौं वावरी सुनके वाँसुरी, हरि विनु कछु न सुहाये माई ॥टेक॥
श्रवन सुनत मेरी सुध बुध विसरी, लगी रहत तामें मन की गाँसु, री।
नेम धरम कोन कीनी मुरलिया, कोन तिहारे पासु, री।
मीराँ के प्रभु वस कर लीने, सप्त सुरन ताननि की फाँसु, री ॥१६९॥

नाग लीला

कमल दल लोचना, तैंने कैसे नाथ्यो भुजंग ॥ टेक ॥
पैसि पियाल काली नाग नाथ्यो, फणफण निर्त करंत।
कूद पर्यौ न डर्यो जल माहीं, और काहू नहिं संक।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, श्री वृन्दावन चंद ॥१७०॥

चीर हरण लीला

राग काफी

आज अनारी ले गयो सारी, बैठी कदम की डारी, हे माय ॥ टेक॥

म्हारे गैल पड्यो गिरधारी, हे माय, आज अनारी० ।
मैं जल जमुना भरन गई थी, आगयो कृश्न मुरारी, हे माय ।
ले गयो सारी अनारी म्हारी, जल मैं ऊभी उघारी, हे माय ।
सखी साइनि मोरी हँसत हैं, हँसि हँसि दे मोहि तारी, हे माय ।
सास बुरी अर नणद हठीली, लरि लरि दे मोहि गारी, हे माय ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल की वारी, हे माय ॥१७१॥

मिलन लीला

आवत मोरी गलियन में गिरधारी,
मैं तो छुप गई लाज की मारी ॥ टेक ॥
कुसुमल पाग केसरिया जामा, ऊपर फूल हजारी ।
मुकट ऊपर छत्र बिराजे, कुंडल की छवि न्यारी ।
केसरी चीर दरयाई को लेंगो, ऊपर अँगिया भारी ।
आवत देखी किसन मुरारी, छिप गई राधा प्यारी ।
मोर मुकट मनोहर सोहै, नथनी की छवि न्यारी ।
गल मोतिन की माल विराजे, चरण कमल बलिहारी ।
ऊभी राधाप्यारी अरज करत है, सुणजे किसन मुरारी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल पर वारी ॥१७२॥

छाँडो लँगर मोरी वहियाँ गहोना ॥ टेक ॥
मैं तो नार पराये घर की, मेरे भरोसे गुपाल रहोना ।
जो तुम मेरी वहियाँ गहत हो, नयन जोर मोरे प्राण हरोना ।
बृन्दावन की कुंज गली में, रीति छोड़ अनरीत करोना ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चितटारे टरोना ॥१७३॥

पनघट लीला

माई मेरो मोहने मन हर्यो ॥ टेक ॥
कहा करूँ कित जाऊँ सजनी, प्रान पुरुस सूँ वर्यो ।
हूँ जल भरने जात थी सजनी, कलस माथे धर्यो ।

साँवरी सी किसोर मूरत, कछुक टोनो कर्‌यो।
लोक लाज विसारि डारी, तवहीं कारज सर्‌यो।
दासि मीराँ लाल गिरधर, छान ये वर वर्‌यो ॥१७४॥

प्रेमनी प्रेमनी प्रेमनी रे, मने लागी कटारी प्रेमिनी ॥ टेक ॥
जल जमुनामां भरवा गयाँताँ हती नागर माथे हेमनी, रे।
काचे ते तातणे हरिजीए वाँधी, जेम खेंचे तेम तेमनी, रे।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, शामली सुरत शुभ एमनी, रे ॥१७५॥

राग हंस नारायण

आली साँवरो की दृष्टि, मानो प्रेम की कटारी है ॥ टेक ॥
लागत बेहाल भई तन की सुधि बुद्धि गई,
तन मन व्यापो प्रेम, मानो मतवारी है।
सखियाँ मिलि दुइ चारी, वावरी सी भई न्यारी,
हौं तो वाको नीको जानों, कुंज को विहारी है।
चंद को चकोर चाहै, दीपक पतंग दाहै।
जल विना मीन जैसे, तैसे प्रीत प्यारी है।
विनती करों हे स्याम, लागों मैं तुम्हारे पाम।
मीराँ प्रभु ऐसे जानो, दासी तुम्हारी है ॥१७६॥

फाग लीला

होली झझोटी

होरी खेलत हैं गिरधारी ॥ टेक ॥
मुरली चंग वजत डफ न्यारो, संग जुवति व्रजनारी।
चंदन केसर छिरकत मोहन, अपने हाथ विहारी।
भरि भरि मूठि गुलाल लाल चहुँ, देत सवन पै डारी।
छैल छवीले नवल कान्ह संग, स्यामा प्राण पियारी।
गावत चार धमार राग तँह, दै दै कल करतारी।

फाग जु खेलत रसिक साँवरो, वाढ़्यो रस ब्रज भारी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर[1], मोहन लाल विहारी ॥१७७॥

दधि बेंचन लीला

राग सारंग

या ब्रज में कछू देख्यो री टोना ॥ टेक ॥
ले मटुकी सिर चली गुजरिया, आगे मिले बाबा नँदजी के छोना।
दधि को नाम विसरि गयो प्यारी, 'लेलेहु री कोई स्याम सलोना'।
वृन्दावन की कुंज गलिन में, आँख लगाइ गयो मनमोहना।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सुंदर स्याम सुघर रसलोना ॥१७८॥

राग मारू

कोई स्याम मनोहर ल्योरी, सिर धरैं मटकिया डोलै ॥ टेक ॥
दधि को नाँव विसर गई ग्वालन, 'हरिल्यो, हरिल्यो,' बोलै।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चेरी भई बिन मोलै।
कृष्णरूप छकी है ग्वालनि, औरहि औरै बोलै ॥१७९॥

मथुरा-गमन

राग सोरठ

होजी हरि कित गये नेह लगाय ॥ टेक ॥
नेह लगाय मेरो मन हर लीयो, रस भरी टेर सुनाय।
मेरे मन में ऐसी आवै, मरूँ जहर विस खाय।
छाड़ि गये विसवासघात करि, नेह केरी नाव चढ़ाय।
मीराँ के प्रभु कबरे मिलोगे, रहे मधुपुरी छाय ॥१८०॥

राग दुर्गा

हो गये स्याम दूइज के चंदा ॥ टेक ॥
मधुवन जाइ भये[2] मधुवनिया, हम पर डारो प्रेम को फंदा।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, अब तो नेह परो कछु मंदा ॥१८१॥

पाठान्तर—१. मिले मन, मिलिया। २. रहे।

राग धमार

स्याम म्हांसूँ ऐंडो डोले हो, औरन सूँ खेलै धमाल।
म्हाँसूँ मुखहिं न बोले हो, स्याम म्हाँसूँ० ॥ टेक ॥
म्हाँरी गलियाँ नाँ फिरे, वाँके आँगण डोले, हो।
म्हाँरी अँगुली ना छुवे, बाँकी बहियाँ मोरे, हो।
म्हाँरो अँचरा न छुवो, वाँको घूँघट खोले, हो।
मीराँ के प्रभु साँवरो, रँग रसिया डोले, हो ॥१८२॥

राग जौनपुरी

सखीरी लाज वैरण भई ॥ टेक ॥
श्रीलाल गोपाल के सँग, काहे नाहीं गई।
गठिन क्रूर अक्रूर आयो, साजि रथ कहँ नई।
रथ चढ़ाय गोपाल लैगो, हाथ मींजत रही।
कठिन छाती स्याम बिछुरत, विरह तें तन तई।
दासि मीराँ लाल गिरधर, बिखर क्यूँ ना गई ॥१८३॥

ऊधव-संवाद

अपणें करम को वो छै दोस, काकूँ दीजै रे ऊधो अपणे० ॥टेक॥
सुणियो मेरी बगड़ पड़ोसण, गेले चलत लागी चोट।
पहली ग्यान मान नहिं कीन्हो, मैं ममता की बाँधी पोट।
मैं जाण्यूँ हरि नाहिं तजेंगे, करम लिख्यो भलि पोच।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, परो निवारोनी सोच ॥१८४॥

राग परज

गोहनें गुपाल फिरूँ, ऐसी आवत मन में।
अवलोकत वारिज वदन, विवस भई तन में।
मुरली कर लकुट लेऊँ, पीत वसन धारूँ।
काछी गोप भेष मुकट, गोधन सँग चारूँ।
हम भई गुलफामलता, वृन्दावन रैनाँ।
पसु पंछी मरकट मुनी, श्रवन सुनत बैनाँ।

गुरुजन कठिन कानि, कासौं री कहिए।
मीराँ प्रभु गिरिधर मिलि, ऐसे ही रहिए ॥१८५॥

कुण बाँचै पाती, विना प्रभु कुण बाँचै पाती।
कागद ले ऊधो जी आयो, कहाँ रह्या साथी।
आवत जावत पाँव घिस्यारे(वाला),अँखियाँभई रातीं।
कागद ले राधा वाँचण बैठी, भर आई छाती।
नैण नीरज में अंव वहे रे (वाला), गंगा वहि जाती।
पाना ज्यूँ पीली पड़ी रे (वाला), अन्न[1] नहिं खाती।
हरि विन जिवड़ो यूँ जलै रे(वाला),ज्यूँ दीपक सँग वाती।
म्हने भरोसो राम को रे (वाला), डूबतिरयो हाथी।
दास मीराँ लाल गिरधर, साँकड़ारो साथी ॥१८६॥

शबरी

अच्छे मीठे चाख चाख, बेर लाई भीलणी ॥टेक॥
ऐसी कहा अचारवती, रूप नहीं एक रती;
नोच कुल ओछी जात, अति ही कुचीलणी।
जूठे फल लीन्हें राम, प्रेम की प्रतीत जाण;
ऊँच नीच जाने नहीं, रस की रसीलणी।
ऐसी कहा वेद पढ़ी, छिन में विमाण चढ़ी;
हरि जी सूँ बाँध्यो हेत, दास मीराँ तरै जोइ;
पतित-पावन प्रभु, गोकुल अहीरणी ॥१८७॥

सुदामा

राग पीलू

देखत राम हँसे सदामाँ कूँ, देखत राम हँसे ॥ टेक ॥
फाटी तो फूलडियाँ पाँव उभाणे, चलतैं चरण घसे।

पाठान्तर—१: धान।

वालपणे का मिंत सुदामाँ, अब क्यूँ दूर वसे।
कहा भावज ने भेंट पठाई, तांदुल तीन पसे।
कित गई प्रभु मोरी टूटी टपरिया, हीरा मोती लाल कसे।
कित गई प्रभु मोरी गउवन वछिया, द्वारा विच हसती फसे।
मीराँ के प्रभु हरि अबिनासी, सरणे तोरे बसे ॥१८८॥

कर्मफल

तेरो मरम नहिं पायौ रे जोगी ॥ टेक ॥
आसण मांडि गुफा में बैठो, ध्यान हरी को लगायो।
गल विच सेली हाथ हाजरियो, अंग भभूति रमायो।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, भाग लिख्यो सो ही पायो ॥१८९॥

राग विहाग

करम गति टारे नाहिं टरे ॥ टेक ॥
सतवादी हरिचँद से राजा, (सो तो) नीच घर नीर भरे।
पाँच पांडु अरु सती[1] द्रोपदी, हाड़ हिमाले गरे।
राजा-बली जग्य कियो वलि लेण इन्द्रासण, सो पाताल धरे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, विख से अम्रित करे ॥१९०॥

प्रेम-रहस्य

लागी सोही जाणै, कठण लगण दी पीर ॥ टेक ॥
विपति पड्याँ कोइ निकटि न आवै, सुख में, सब को सीर।
वाहरि घाव कछू नहिं दीसै, रोम रोम दी पीर।
जन मीराँ गिरधर के ऊपर, सदकै करूँ सरीर ॥१९१॥

अगमदेश

राग शुद्ध सारंग

चालो अगम के देस, काल देखत डरैं
वहाँ भरा प्रेम का होज, हंस केल्याँ करैं।

पाठान्तर—१. कुंती।

ओढ़ण लज्जा चीर, धीरज को घाँघरो।
छिमता काँकण हाथ, सुमति को मून्दरो।
दिल[1] दुलड़ी दरियाव, साँच को दोवड़ो।
उबटण[2] गुरुको ज्ञान, ध्यान को धोवणो।
कान अखोटा ज्ञान, जुगत को झूटणो।
बेसर हरि को नाम, चूड़ो[3] चित ऊजलो।
जीहर सील सँतोष, निरत को घूँघरो।
बिंदली गज और हार, तिलक गुरु ज्ञान को।
सज सोलह सिणगार, पहरि सोने राखड़ी।
साँवलिया सूँ प्रीति, औरां सूँ आखड़ी[4] ॥१६२॥

सूक्ष्म मार्ग

राग जैजैवंती

गली तो चारों बन्द हुईं, मैं हरि से मिलूँ कैसे जाइ।
ऊँची नीची राह लपटीली, पाँव नहीं ठहराइ।
सोच सोच पग धरूँ जतन से, बार बार डिग जाइ।
ऊँचा नीचा महल पिया का, हमसे चढ्या न जाइ।
पिया दूर पंथ म्हाँरो झीणो, सुरत झकोला खाइ।
कोस कोस पर पहरा बैठ्या, पैंड पैंड बटमार।

पाठान्तर— १. इसके पहले 'काँची है विस्वास चूडो चित ऊजलो' भी पाठ मिलता है।
२. इसके पहले 'दाँतों अमृत मेख दया को बोलणौ' भी पाठ है।
३. 'काजल है धरम को'।
४. इसके अनंतर 'पतिवरता की सेज प्रभूजी पधारिया। गावे मीराबाई दासी कर राखिया ॥'

हे विधना कैसी रच दीन्हीं, दूर[1] वस्यों म्हाँरी गाम।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, सतगुर दई बताय।
जुगन जुगन के बिछड़ी मीराँ, घर में लीन्ही लाय[2] ॥१६३॥

उपदेश

राग छायानट

भज मन चरण कँमल अविनासी ॥ टेक ॥
जेताइ दीसे धरण गगन विच, तेताइ सब उठ जासी।
कहा भयो तीरथ व्रत कीन्हे, कहा लिये करवत कासी।
इण देही का गरव न करणा, माटी में मिल जासी।
यो संसार चहर की बाजी, साँझ पड्याँ उठ जासी।
कहा भयो है भगवा पहर्‌यां, घर तज भये संन्यासी।
जोगी होय जुगति नहिं जाणी, उलटि जनम फिर आसी।
अरज करों अबला कर जोरे, स्याम तुम्हारी दासी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, काटो जम की फाँसी ॥१६४॥

राग हमीर

नहिं ऐसो जनम बार बार ॥ टेक ॥
का जानूँ कछु पुण्य प्रगटे, मानुसा अवतार।
बढत छिन छिन घटत पल पल, जात न लागे बार।
बिरछ के ज्यूँ पात टूटे, बहुरि न लागे डार।
भौसागर अति जोर कहिये, अनँत ऊंडी धार।
राम नाम का बांध बेड़ा, उतर परले पार।
ज्ञान चोसर मँडी चोहटे, सुरत पासा सार।
या दुनियाँ में रची बाजी, जीत भावै हार।

पाठान्तर—१. दूर बसायो म्हाँरो गाँव। २. आय।

साधु संत महंत ज्ञानी, चलत करत पुकार।
दासि मीराँ लाल गिरधर, जीवणा दिन च्यार ॥१६५॥

जग में जीवणा थोड़ा, राम कुण कह रे जंजार ॥ टेक ॥
मात पिता तो जन्म दियो है, करम दियो करतार।
कइरे खाइयो कइरे खरचियो, कइरे कियो उपकार।
दिया लिया तेरे संग चलेगा, और नहीं तेरी लार।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, भज उतरे भव पार ॥१६६॥

मनखा जनम पदारथ पायो, ऐसी वहुर न आती ॥टेक॥
अवके मोसर ज्ञान विचारो, राम नाम मुख गाती।
सतगुरु मिलिया सुंज पिछाणी, ऐसां ब्रह्म मैं पाती।
सगुरा सूरा अमृत पीवे, निगुरा प्यासा जाती।
मगन भया मेरा मन सुख में, गोविंद का गुण गाती।
साहव पाया आदि अनादी, नातर भव में जाती।
मीराँ कहे इक आस आपकी, औरां सूँ सकुचाती ॥१६७॥

राग कनड़ी

बंदे वंदगी मति भूल ॥ टेक ॥
चार दिना की करले खूबी, ज्यूँ दाड़िमदा फूल।
आया था ए लोभ के कारण, मूल गमाया भूल।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, रहना है बे हजूर ॥१६८॥

राग रागश्री

राम नाम रस पीजै मनुआँ, रामनाम रस पीजै ॥ टेक ॥
तज कुसंग सतसंग बैठ नित, हरि चरचा सुण लीजै।
काम क्रोध मद लोभ मोह कूँ, चित से वहाय दीजै।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, ताहि के रँग में भीजे ॥१६९॥

राग धनाश्री

मेरो मन रामहिं राम रटैरे ॥ टेक ॥
राम नाम जप लीजे प्राणी, कोटिक पाप कटैरे।
जनम जनम के खतजु पुराने, नामहि लेत फटैरे।
कनक कटोरे इम्रत भरियो, पीवत कौन नटैरे।
मीरां कहै प्रभु हरि अविनासी, तन मन ताहि पटैरे ॥२००॥

राग नीलाम्बरी

मूरत दीनानाथ सो लगी, तूँ तो समझ सुहागण नार ॥टेक॥
लगनी लहँगो पहर सुहागण, बीती जाय बहार।
धन जोबन है पावणारी, मिलै न दूजी बार।
रामनाम को चुड़लो पहिरो, प्रेम को सुरमो सार।
नकबेसर हरिनाम की री, उतरि चलोनी परले पार।
ऐसे वर को क्या बरूँ, जो जनमै और मर जाय।
वर बरिये एक साँवरो री, (मेरो) चुड़लो अमर होय जाय।
मैं जान्यों हरि मैं ठग्योरी, हरि ठग ले गयो मोय।
लख चौरासी मोरचा री, छिन में गेरया छै बिगोय।
सुरत चली जहाँ मैं चली री, कृष्ण नाम झणकार।
अविनासी की पोल पर जी, मीराँ करै छै पुकार ॥२०१॥

मीराँबाई की पदावली

तृतीय भाग

टिप्पणियाँ

प्रथम खंड

(पदों में आये हुए प्रसंगों के लिए 'प्रसंग-परिचय' भी देखिए)

पद (१)—परसि = स्पर्श कर, बंदना कर। कँवल कोमल = कमल के समान कोमल। त्रिविध ज्वाला = तीन प्रकार के ताप वा दुःख जो १. आध्यात्मिक अर्थात् शारीरिक (जैसे रोग, व्याधि) और मानसिक (जैसे क्रोध, लोभ) २. आधिदैविक अर्थात् देवताओं वा प्राकृतिक शक्तियों द्वारा पहुँचने वाले (जैसे आँधी, अवर्षण) तथा ३. आधिभौतिक अर्थात् स्थावर व जङ्गम (जैसे पशु, सर्पादि) भूतों द्वारा उत्पन्न होने वाले माने जाते हैं। जिण = जिन। प्रह्लाद = भक्त प्रह्लाद। धरण = धारण वा प्राप्त करने वाले हुए, प्राप्त की। ध्रुव = भक्त ध्रुव। अटल कीन्हे = अचल ध्रुवलोक के रूप में स्थापित किया। भेट्यो = व्याप्त किया। नखसिखाँ = नखशिख पर्यंत, सर्वाङ्ग में। सिरीधरण = श्री वा शोभा धारण करने वाले। परसि लीने = छू लेने मात्र से। गोतम घरण = गौतम ऋषि की गृहिणी वा पत्नी, अहिल्या। नाथ्यो = वश में किया (दे०—पद १७०) गोपलीला करण = गोपों की लीला करनेवाले, कृष्ण। ग्रव = गर्व, घमंड। अगम...तरण = अगम्य वा अपार संसार सागर से पार कराने वाले बेड़े के समान।

विशेष—तुलना के लिए देखिए सूरदास का 'भजि मन, नंद-नंदन-चरन, इत्यादि पद—'सूर सागर' (रत्नाकर संस्करण, पृष्ठ १६२)।

पद (२)—वाँके विहारी = रसिक श्री कृष्ण। मोरमुगट = मोर पंख से युक्त मुकुट। माथे = ललाट पर। कुंडल अलका कारी को = कुण्डल और

काली अलकावलि धारण करने वाले को। रीझ-राधा प्यारी को=री
रीझ कर प्रेमिका राधा को भी रिझाने वाले को।

पद (३)—बसो=छाये रहो। सूरति=स्वरूप। बनै=शोभि
रहे हैं। सुधारस=अमृत जैसा माधुर्य उत्पन्न करने वाली। राजित=शोभि
है। वैजन्ती माल=वैजन्ती नाम की माला जिसे भगवान् विष्णु धार
करते हैं। छुद्र घंटिका=घुंघुरूदार करधनी। कटितट=कटि प्रदेश
कमर में। सवद=शब्द, ध्वनि। रसाल=मधुर। भक्तवछल=भक्तवत्स
वा भक्तों को प्यार करने वाले।

विशेष—तुलना के लिए देखिए 'सूरसागर' (नवलकिशोर प्रे
लखनऊ, संस्करण सन् १८८६ ई०) में दिया हुआ निम्नलिखित पद:—

'बसे मेरे नयननि में नँदलाल।
साँवरी सूरति माधुरी मूरति, राजिव नयन विसाल।
मोर मुकुट मकराकृत कुण्डल, चरण तिलक दिये भाल।
शंख चक्र गदपद्म विराजत, कौस्तुभ मणि वनमाल।
बाजूबन्द जरह के भूषण, नूपुर शब्द रसाल।
दास गोपाल मदन मोहन पिय, भक्तन के प्रतिपाल॥"

(पृष्ठ १४

विहारी लाल के प्रसिद्ध दोहे—

"सीस मुकुट, कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
यहि बानिक मो मन वसौ, सदा विहारीलाल॥"

का भी भाव प्रायः इस पद के ही समान है।

पद (४)—और=अन्य, दूसरा। आसिरो=आश्रय, अ
मँझार=मध्य, में। निरख्यौ=देख लिया। मती=मत।

विशेष—देखिये गुरु नानक का पद—

'गोविंद जी तूँ मेरे प्रान-अधार।
साजन मीत सहाई तुमही, तूँ मेरो परिवार॥' इत्यादि।

पद (५)—तनक=तनिक, टुक, ज़रा। चितवो=निगाह करो, दे

चितवनि = कृपादृष्टि, निगाह। दौर = दौड़, पहुँच, स्थान। तुमसे = तुम्हारे सदृश, तुम अपने समान। कबर = अरे कब, भलाकब। सी = जैसी, समान। ऊभी ठाढ़ी = आशा में खड़ी खड़ी। अकोर = अँकोर, भेंट। देस्यूँ = दूँगी। देस्यूँ...अकोर = अपने प्राण न्योछावर कर दूँगी। (देखो—'टका लाख दस कीन्ह अकोरा। विनती कीन्ह पाँय परि गोरा'—जायसी।)

विशेष—प्रायः इसी भाव का एक पद धनी धर्मदास का इस प्रकार है :—

'साहिब चितवो हमरी ओर ॥ टेक ॥

हम चितवैं तुम चितवो नाहीं, तुम्हरो हृदय कठोर।

औरन को तो और भोरोसो, हमैं भरोसो, तोर ॥' इत्यादि।

पद (६)—बसिगो = ठहर गया, रम गया, सों = साथ, संग। डोलत हो = घूमते फिरते हो। कालिंदी = यमुना। दुवरवाँ = द्वार पर। दुलरुवा = दुलारा, लाड़ला।

पद (७)—निपट = नितांत, सर्वथा। बँकट = वक्र, टेढ़े, ('त्रिभंगीलाल' श्रीकृष्ण का विशेषण।) छवि = सौंदर्य में। अटके = उलझ गये, फँस गये। पियत = पी रहे हैं। पियूख = पीयूष, अमृत। मटके = फिरे, लौटे, चलायमान हुए। (देखो—'कहा कहौं इन नैननि की बात। ये अलि प्रिया बदन अम्बुज रस अटके अनत न जात'—हितहरिवंश; तथा 'हरि मुख निरखत नैन भुलाने। ये मधुकर रुचि पंकज लोभी, ताही ते न उड़ाने'—सूरदास; अथवा 'दृग दीजिए दाँसि परौ जिनसों, इन मोर पखौवनि को भटके। मनु दे फिरि लीजियै आप नहीं, जुतहीं अटकै न कहूँ मटकै,—घनानन्द)। वारिज...अटके = कमल सी भौंह और टेढ़ी केशपाश की सुगन्धों द्वारा आकृष्ट होकर, उनमें, मानो उलझ से गये हैं। करि = हाथ में। लर = मोतियों की लड़ पर। लटके = लुब्ध वा लट्टू हो गये। नटके = नटवर श्रीकृष्ण के। (देखो—रूप सबै हरि वा नटको, हियरे फटक्यो भटक्यो अँटक्यो री'—रसखान)।

पद (८)—या = इस। दल = पंखुड़ी। बाँकी = तिरछी। मुसकानी = मुसक्यान। नीरे = नियरे, पास। लपटानी = लिपट गई। (देखो—'चरणाँ लिपट परूँरी' (१८), 'चरण कँवल लपटास्यौं हों माई' (३८), इत्यादि)।

पद (९)—नंद नँदन=श्री कृष्ण। मोरन की चंद्रकला=मोर नामक पक्षियों की पूँछ पर वनी हुई नीली सुंदर चित्तियों में झलकने वाले सुंदर चमकीले मंडल को चंद्रिका वा चंद्रकला कहते हैं। कुंडल...झलक=कुंडल पर पड़ा हुआ छल्लेदार वालों का प्रतिविंव। मकर=मगर। कुंडल...मिलन आई=मकराकृत कुंडलों की प्रभा कपोलों पर फैली हुई है और उन(कुंडलों) के ऊपर पड़े हुए अलकों के प्रतिविंव उस (प्रभा) के अंतर्गत ऐसे ल पड़ते हैं मानों मीनों का समूह अपने सरोवर का त्याग कर मगरों से मिलने के लिए पहुँचा है। (देखो—'कुंडल झलक कपोल पर, राजति नाना भाँति—' नागरीदास।) टौना=जादू। खंजन छौना=जिसके सामने खंजन, भ्रमर, मीन और मृगशावक सभी हार मान जाते हैं। नटवर...धरे=नटों के समान काछनी काछे हुए हैं। विंव=विंवा फल के समान लाल। मंद= हलकी। मंद हाँसी=मुसक्यान। दमक=आभा, चमक। दाड़िमदुति=अनार की द्युति वा कांति। चपला=विजली। छुद्र घंट किंकिनी=घुँघुरू करधनी। (देखो—छुद्र घंटिका कटितट सोभित'—पद ३ में)। अनूप= अनुपम, अनोखी।

विशेष—'कुंडल...मिलन आई' में उत्प्रेक्षालंकार 'कुटिल...मृगछौने' में प्रतीपालंकार एवं 'दसन...चपला सी' में उपमालंकार के उदाहरण दिये जा सकते हैं।

पद (१०)—नैणा=नेत्र, नयन। वहुरि=लौटकर। रूँम रूँम=रोम रोम। ललकि रहे=पाने की गहरी इच्छा वा अभिलाषा करने लगे। (देखो 'ललकत लखि ज्यों कँगाल पातरी सुनाज की'—तुलसीदास)। ललचाय= मोहित व अधीर होकर। ठाढ़ी=खड़ी थी। ग्रिह=घर के द्वार पर। आपरे= अपने। परकासत=प्रकाश फैलाते हुए। हेली=सखी। वरजि वरजही=वार वार वरजते हैं। अटक=रोक। परहथ=पराये हाथों। देखो—'बंसी बजावत आनि कढ़ो सो गली में अली कछू टोना सों डारै। हेरि चितै तिरछी दृष्टि चलो गयो मोहन मूठि सी मारै'—रसखान; तथा 'नंद को नवेलो अलबेलो छैल रंग भर्‌यो, कालिह मेरे द्वार ह्वै के गावत इतै गयौ।......मृदु मुस

मुरि मो तन चितै गयौ ।........नैकुही मैं मेरो कछु मोपै न रहन पायो, औचकही आइ भटू लुट सी जितै गयो'—घनानन्द) । सब...चढ़ाइ=सभी कुछ अंगीकार कर लिया वा मान लिया । (देखो—'अब गाँव के नाँव रे कोई धरौ, हम साँवरे रंग रँगी सो रँगी'—ठाकुर)

पद (११)—नैणाँ=नयनों वा आँखों को । बाण=बान, स्वभाव । चित्त चढ़ी=हृदय पर अधिकार जमा चुकी । माधुरी=माधुर्य से भरी हुई । आन अड़ी=आकर जम गई । कबकी...निहारूँ=कितने समय से प्रतीक्षा कर रही हूँ । जीवन...जड़ी=प्राणों के आधार स्वरूप औषध के समान । मीराँ........बिकानी=आत्मसमर्पण कर दिया ।

पद (१२)—वनज=कमल, कमल के समान कोमल । साहिब=इष्टदेव पलक न नाऊँ=आँखों पर पलकें न गिराऊँ, आँखें खुली ही रक्खूँ । त्रिकुटी महल=दोनों भौहों के मध्य का स्थान । झरोखा=छिद्र रूपी खिड़की । झाँकी लगाऊँ=ध्यान का लक्ष्य बनाऊँ । सुन्न महल में=ब्रह्मरंध्र में । सुरत=ध्यान, समाधि । सुख...बिछाऊँ=आनंदमग्न हो जाऊँ ।

विशेष—ब्रह्मरंध्र वा ब्रह्मांड-द्वार उस गुप्त छिद्र को कहते हैं जो साधकों के अनुसार मस्तक के मध्य भाग वा मूर्द्धा में वर्त्तमान है और जिससे होकर प्राणों के निकलने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है । ब्रह्मरंध्र में ध्यान लगा कर समाधिस्थ होने से परमानंद का अनुभव होता है ।

पद (१३)—असा=ऐसे, अनुपम । जाण=जाने । वारणै=न्योछावर, समर्पण । नैणाँ=नयनों वा नेत्रों द्वारा । रस=सौंदर्यरस । जिहांजह=जिसजिस । विधि=प्रकार वा ढङ्ग से । सुहावणा=दर्शनीय, मनोहर । देख्याँ=देखकर । वड़भागण=बड़भागिन वा बड़े भाग्य वाली ही । रीझै हो =आनन्दित होती है । 'वड़भागण' का अर्थ 'बड़े भाग्य से' भी हो सकता है ।

पद (१४)—पिव रसिक=रसिक श्री कृष्ण । रिझाऊँ=प्रसन्न करूँगी । नाचूँगा=प्रार्थना करूँगी । कछनी काछूँगी=कछोरा पहिनूँगी । सुरत...... काछूँगी=ध्यान की साधना साधूँगी । या में=इनमें से । पिव...पौढूँगी= अपने इष्टदेव के साथ तादात्म्य-सम्बन्ध कर लूँगी । राचूँगी=रँग जाऊँगी

पद (१५)—छाँड़ि दई = छोड़ दी, त्याग दी। कानि = मर्यादा। कहा = क्या। करिहै = करेगा। लोक = समाज। अँसुवन जल = अश्रुविन्दुओं द्वारा। आणँद फल = आनन्दस्वरूप परिणाम। भगति = भक्तजन। राजी = प्रसन्न। जगति = संसार की दशा। रोई = दुखी हुई। मोही = मुझे।

विशेष—इस पद का एक दूसरा रूप भी किसी संग्रह में निम्नलिखित ढङ्ग से मिलता है :—

'मेरे तो रामनाम दूसरो न कोई।
दूसरा न कोई साधो सकल लोक जोई॥
भाई छोड्या बन्धु छोड्या छोड्या सगा सोई।
साध संग बैठ बैठ लोक लाज खोई॥
भगत देख राजी हुई जगत देख रोई।
प्रेम नीर सींच सींच विषवेल धोई॥
दधि मथ घृत काढ़ि लियो डार दई छोई।
राणा विष को प्यालो भेज्यो पीय मगन होई॥
अब तो बात फैल पड़ी जाणे सब कोई।
मीराँ राम लगण लागी होणी होय सो होई॥'

पद (१६)—रँग राँची = प्रेम में रँग गई। लई = स्वीकार कर ली। उन = उस प्रियतम। खारो = कड़वा। काँची = कच्ची, निःसार। रसीली = रस वा आनन्दमयी।

पद (१७)—म्हाँरो = मेरा। साँचो = वास्तविक। लुभाऊँ = मुग्ध हो जाती हूँ। रैण...तवही = रात होते ही। रैणदिना = रात दिन, बराबर। ज्यूँ त्यूँ = जिस किसी भी प्रकार से क्यों न हो। दे = दे देवे। पल = एक क्षण के लिए भी। रहाऊँ = रह सकती हूँ।

पद (१८)—म्हाँरा = मेरा, अपना। रमैया ने = प्रियतम राम को। तेरो...सुमरण = तेरा ही स्मरण व चिन्तन। जहाँ......निरत करूँ = चलते समय प्रत्येक पग को हरि कीर्तन के अवसर पर किये गये पादक्षेप रूप में समझूँगी। (देखो—सहज समाधि वर्णन में कहे गये, 'जहँ

डोलूँ तहँ परिकरमा, आदि विवरणों को)।

पद (१६)—माई री = अरी सखी (परस्पर बातचीत करते समय स्त्रियों में एक दूसरे के प्रति बहुधा किये जाने वाले व्यवहारानुसार) । लीयो = लिया है । गोविन्दो = गोविन्द, कृष्ण (ओ का प्रयोग यहाँ प्रेमप्रदर्शनार्थ हुआ है) छाने = छिपकर, आँख बचाकर । चौड़े = खुले आम । बजन्ता ढोल = बजाते हुए, प्रकट रूप में । मुँहगो = महँगा । सुहँगो = सस्ता । लियोरी...तोल = नाप जोख कर । अमोलिक मोल = अनमोल समझ कर । जाणत है = जानते हैं । आँखी खोल = अच्छी तरह देख भालकर । पूरब जनम कौ कोल = पूर्व जन्म में किये गए वादे के अनुसार ।

विशेष—अन्तिम पंक्तियों में मीराँ ने, जान पड़ता है, 'पूरब...कोल' द्वारा अपने को पूर्व जन्म में गोपी होने की ओर संकेत किया है । प्रसिद्ध है कि श्रीकृष्ण ने विरहणी गोपियों को अगले जन्म में फिर मिलने के लिए वचन दिया था ।

पद (२०) रँगराती = प्रेम में रंगी व मग्न । सहियाँ = सैयाँ, सखियों । पचरंग = पाँच वा विविध रंगों का बना अथवा पंचतत्त्वों द्वारा निर्मित । चोला = लंबा वा ढीलाढाला फ़कीरों जैसा कुर्ता अथवा शरीर । झिरमिट = झुरमुट मारने का खेल जिसमें सारा शरीर इस प्रकार ढक लिया जाता है कि कोई जल्दी पहचान न सके अथवा कर्मानुसार प्राप्त जीवात्मा की योनि का शरीरावरण धारण । ओह...माँ = उसी वेष में, उसी अवसर पर । साँवरो = श्यामसुन्दर प्रियतम । गाती = शरीर पर व गले से बँधी हुई चादर अथवा मनोराज द्वारा निर्मित काल्पनिक आवरण । खोल मिली = दूर कर वह हटाकर गले लग गई अथवा तन्मय हो गई । (देखो—'कदरे मिलउंली सज्जना, कस कंचूकी छोड़ि, ढोला मारूरा दूहा) । हीय = हृदय में ही । चंदा...अविनासी = सूर्य चन्द्र, पृथ्वी, आकाश अथवा जल व वायु ये सभी नश्वर वस्तुएं हैं, केवल मेरा प्रियतम परमात्मा ही अविनाशी है । सुरत = परमात्मा की स्मृति । निरत = निरति अर्थात् विषय आदि से विरक्ति । दियला संजोले = दिया सजा ले, तय्यार कर ले । मनसा = मन । हटी = हाट, बाज़ार । जगरह्या = जल रहा है ।

दिन ते राती = दिन से रात तक, दिन रात बराबर। मिलिया = मिले। सांस = संशय, भ्रम वा दुःख। भाग्या = दूर हो गया। सैन = संज्ञा, संकेत, रहस्य।

पद (२१) ताली लगी = सम्बन्ध हो गया, लगन लग गई। म्हाँरा = हमारे, मेरे। मनरी = मन की। उणारथ = लालसा, कामना। भागी = पूर्ण हो गई। छीलरिये = छीलर तालाब, छिछला छोटा गड्ढा व तलैया पर। म्हाँरा = हमारा, मेरा। चित्त नहीं = चित्त नहीं चढ़ता। डाबरिये = बरसाती पानी से भरे छोटे गड्ढे पर। कुण जाव = कौन जावे। दरियाव = समुद्र। (देखो—हरिसागर जनि वीसरें, छीलर देखि अनन्त) कबीर। हाल्याँ मोल्याँ = हाली मुहाली, नौकर चाकर। सीख = नसीहत, परामर्श। सिरदार = सरदार, सामंत। कामदाराँ = प्रबंधकों वा अधिकारियों। सूँ = से। जाव = जवाब। दरबार = दरबार में जा कर स्वयं मालिक से ही। कथीर = राँगा। काँच = शीशा। हीरां रो व्यौपार = हीरों का व्यापार। सीर = सम्बन्ध वा मेल। इम्रित = अमृत। कड़वो = खारा। पीपा = पीपा नामक भक्त। परचो दीन्हों = परिचय दिया, चमत्कार दिखलाया। खजीना = ख़ज़ाना। धणी = पति, स्वामी। मिल्याछै = मिला है। हजूर = हुज़ूर, प्रत्यक्ष वा स्वयं वही।

पद (२२)—सैयाँ = स्वामी, प्रियतम। परगट ह्वै = खुलकर। काहेकी = कैसी। (देखो-'मोहनलाल के रँग राची।......यह जिय जाहु भले तिन ऊपर, हौं नु प्रगट ह्वै नाची,—हित हरिवंश)। वेधि...ह्वै गो = भीतर प्रवेश कर गया। गुह = गुह्य, गूढ़। गाँसी = तीर व बर्छी की नोक अथवा भेद की बात। वेधि...गाँसी ज्ञान की भेदभरी वा रहस्यमयी बात अंतरात्मा तक प्रवेश कर गई। आन = आकर। मधुमक्खियाँ। जगहाँसी = लोकलाज।

पद (२३)—मीराँ = मीरा को। रंगहरी = हरि वा कृष्ण का रंग अथवा हरा रंग। अटक = बाधा, रुकावट। औरन...परी = (हरे के अतिरिक्त) अन्य रंगों के लगने में अन अड़चन पड़ गई। चूड़ो = चूड़ियाँ। सील वरत = शील व्रत, आचार व्यवहार। सिणगारो = श्रृंगार। दाय = पसंद। गुरग्यान = गुरु का दिया ज्ञान। विन्दो = वन्दो, प्रशंसा करो। गास्याँ = गावेंगी। करसी = करेगा

चढ़स्यां = चढ़ेंगी । गज...होई = अब ऐसी बात नहीं हो सकती कि मैं एक बार कृष्ण को अपना कर फिर विषयों की ओर भी उन्मुख होने चलूँ ।

विशेष—हरे रंग पर दूसरे किसी रंग का चढ़ना कठिन है ।

पद (२४)—अटकी = रुकी हुई, इधर उधर फँसी हुई । रैदाँस जी = प्रसिद्ध संत रैदास वा उनके पंथ के कोई रैदासी महात्मा । गुटकी = घूँट । हिवड़े = हृदय में । खटकी = टीसने लगीं । परत = इकहरे, दुहरे गहने, अथवा मढ़े हुए गहने । नटकी = अस्वीकार कर दिया है । कब की = कभी से । गेणो = गहना । दोवड़ी = गले में पहनने का एक गहना । कुटकी = छोटा टुकड़ा । चंदन की कुटकी = कंठी । साधाँ = साधुओं । (देखो—'चंदन की कुटकी भली, गाड़ो भलो न काठ'—एक मारवाड़ी दोहा और 'चंदन की कुटकी भली, नाँ, बंबूर की अंवराँउ'—कबीर) । बटकी = बाट वा मार्ग की । काण = लाज, मर्यादा । घूँघर...पटकी = घूंघट का त्याग कर दिया । परम गुराँ = परम गुरु परमात्मा के । लुटकी = लटक कर, झुक कर वा लोट कर ।

पद (२५)—सहेल्या = सखियों, सहेलियों । रली कराँ = केलि करें, आनन्द उठावे । (देखो-आक कली न रली करै अली अली जिय जानि—बिहारीलाल) । पर घर गवण = दूसरों के घर आना जाना । निवारि = छोड़ कर । जगमग जोंति चमकीली भड़कीली रोशनी । आभूखणा, = आभूषण, गहने । पियाजी री पोति = प्रियतम परमात्मा की माला । पाटपटंबरा = रेशमी वस्त्र । दिखणी = दक्षिणी दक्षिण देश (विजयानगरम्) में बनने वाला एक बहुमूल्य वस्त्र । दिखणी चीर = दक्षिणी साड़ी । जामें = जिसमें, जिसे धारण कर । साँची = सच्ची, वस्तुतः उत्तम । छप्पन भोग = छप्पन प्रकार के व्यञ्जन । बुहा-इदे = बहा दो । भं गिन में = व्यञ्जनों में । दाग = कालिमा, दोष । लूण अलूणो ही = नमक पड़ा वा बिना नमक का भी । विराणै = परायें, विराने । निवाँण = नीची उपजाऊ भूमि । उपजावे = मन में लाता है । खीज = द्वेष, डाल । क्यूँ... खीज = क्यों चिढ़ती वा बुरा मानती हो । कालर = कड़ी ज़मीन जिसमें बहुत कम पैदा हो सके । निपजै = पैदा होती है । चीज = अच्छी वस्तु । छैल = रसिक. युवा पुरुष । विराणो = पराया । लाखकों = अनमोल । काज = काम का ।

सीधारता = जाते, जाने पर। हीणों = हीन, साधारण। वर = पति। लोइ = लोग। सूँ = सदृश। वालवा = वल्लभ, प्रियतम। एहो = इसी। रीत = रीति या ढङ्ग से।

पद (२६)—कछू = कुछ भी। ज्यूँ ...सुहागा = जिस प्रकार सोने वा सुहागा का उचित मेल होता है। जागा = वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर लिया। कबीला = कबीला, स्त्री, जोरू। टूट...तागा = अलग वा विराने हो गये। कुटम = कुटुम्ब, परिवार। सब्द = शब्द, भेद भरे उपदेश।

पद (२७)—म्हाँने = हमको, मुझे। परणगया = वधू के रूप में ग्रहण कर लिया, ब्याह लिया। आविया जी = दीख पड़ा। विस्वा वीस = संदेह रहित, स्पष्ट। गैली = गई गुज़री, मूर्ख। आल जञ्जाल = व्यर्थ का बखेड़ा, झंझट। (देखो—'झूंठा आल जञ्जाल तजि, पकड़ा स्तम्भ कबीर')। सुधे = सुधा का, अमृत से। कोट = करोड़। जान = जन बाराती। जान = बारात।

पद (२८—माइडी = मा। गरजे = विगड़ कर वोल। माहिले = भीतर, अन्तर। धीहड़ी = बेटी। गुण फूली = गर्वीली बनी फिरती है। थे = तू। रैणज = रात भर। भूली = मगन रहा करती है। सुखनींदडी = सुख की नींद वा निश्चिंत। गेली = मूर्ख, गैली। ज्याँकूँ = जिसे। ज्याँरे = जिसके। त्याँकू = उसे। चौमास्याँ की बावड़ी = चौमासे वा वर्षाऋतु में भरने वाली बावली वा पोखरी। रूप सुरंगा = सुन्दर, सौन्दर्यशाली।

पद (२६)—म्हाँना = हमारे, अपने। री = की। आण = आन, शपथ। गोरल = गनगौर। नापूजाँ = नहीं पूजती। ओरज = और लोग तो। गोरज्या = गौरल वा गनगोर। पावस्यो = पाओगी। भेव = भेद, रहस्य। थाँने = तुझे। ज्यानां = जो कोई भी। मेड़तिया = मेडता के निवासी भाई बंद। थाँसूँ = तुझे। मारगी = वटमारी।

पद (३०)—थाँ = तेरे। थे = तूने। लारी = संग। राणा ने = राणा को। सोगन = सौगन्द।

पद (३१)—वरजी = रोकी हुई, मना करने पर। काहू की = किसी की भी। चेतन = सावधान। भलि = चाहे। मेरो = अपना। लहूँ = कहा हूँ। सुमरण सेती = भगवान् के स्मरण से। बोल = कटु वचन। गहूँ = पकड़ती हूँ।

पद (३२)—रोकणहार = रोकने वाला। मगन = मस्त। सरंम = शर्म। सैं = से। करी = कर दी। धर पटके = उपेक्षा की। ग्याँन गली = ज्ञान मार्ग से होकर। किंवडिया = द्वार, दरवाजा। निरगुण = परमात्मा की। फूलन = फूल के पौधों में। वाजूवन्द = वाँह पर पहनने का एक गहना। अधक = अधिक, विशेष। खरी = सच्ची वास्तविक। सेंज सुखमणा = सुषुम्ना नाड़ी द्वारा समाधि लगाकर। सरी = वनी वा वरावरी।

विशेष—सुषुम्ना वा ब्रह्मनाड़ी की सहायता से साधना कर सहज समाधि में परमात्मलीन होने की अवस्था का वर्णन मीराँ ने, यहाँ पर श्रृंगारों से सज्जित नायिका के प्रियतम संयोग के रूपक द्वारा किया है। गहनों के नामादि का साधना संवन्धी विवरणों के साथ मिलना स्पष्ट नहीं है।

पद (३३)—जननो = लोगों का। चढेंते = चढ़ जाता है। साकट जन = भक्तिहीन। अठसठ तीरथ = अरसठ तीर्थ स्थान। सतों ने चरणे = संतों के चरण में ही। सोय = वही। करसे, जासे, थासे = करेगा, जायगा, हो जायगा। संतोंनीरज = सतो की धूल।

पद (३४) गास्याँ = गाऊँगी। चरणाम्रित = भगवन् के पादोदकपान। दरसण = दर्शनार्थ। निरत = नृत्य, कीर्तन। करास्याँ = करावेंगीं, करेंगी। घूँघरिया = घुँरू। घमकस्याँ = वजावेंगीं। झाझ = जहाज। वांड़ = झरवेरी के काँटों का घेरा। ज्याँ = जिसकी, उसकी। निरख परख = भली भाँति देख भाल वा समझ बूझ कर।

पद (३५)—भावै = सुहाता है, अच्छा लगता है। थाँरो = आपका। देशलड़ो = देश। रंगरूड़ो = अच्छे रङ्ग का, विचित्र, सुन्दर। देसाँ में = देश वा राज्य में। राणा = मीराँ के देवर महाराजा उदयपुर की पदवी। साध = साधु संत। छै = हैं। कूड़ो = असज्जन, निकम्मे। गहणाँ गाँठी = आभूषण। त्याग्या = त्याग दिये। कररो = हाथ की। चूड़ो = हाथी दाँत की चूड़ियाँ। टीकी = विंदी। जूड़ो = वेणी।

पद (३६)—मीठी = भली, अच्छी। अपूठी = उल्टी, भिन्न मार्ग से (देखो—'अब गाँव रे' नाँव रे कोई धरौ, हम साँवरे रंग रंगी सो रँगी—

ठाकुर)। वातज=वातें। करताँ=करते समय। दीठी=देखा।

पद (३७)—क्याँ ने=क्यों, किसलिए। म्हाँसू=हमसे, मुझसे। म्हाँने=मुझे। इसड़ा=ऐसे। व्रच्छन में=वृक्षों में। कैर=करील का पेड़। थाँरों=तुम्हारा। भगवीं चादर=भगवे का वस्त्र। इमरित=अमृत।

पद (३८)—सीसोदियो=सिसोदिया वंश के राणा। रूठ्यो=रूठ गया, अप्रसन्न हो गया। काँई=क्या। लेसी=लेगा। वाँरो=उनका, अपना। रखी=रख लेगा, रक्खे रहेगा। रूठ्याँ=रूठने से। कुम्हलास्याँ=कुम्हला जायँगी, कांतिहीन हो सूख जायँगी। निरभै=निर्भय होकर। निसाण=निशान, नगारा। घुरास्याँ=वजावेंगी। 'राम नाच... जास्याँ'—यही पदांश पद (३४) में भी आया है। लपटास्याँ=लिपट जाऊँगी।

पद (३९)—पग=पैरों में। मेरे=अपने। नारायण=प्रियतम कृष्ण। आपहि=स्वयं, अपनी। न्यात=नातेदार, संबंधी। कुलनासी=कुल में कलंक लगाने वाली। हाँसी=हँसी, प्रसन्न रही,। सहज=सुगमता के साथ।

पद (४०)—राम तने=राम के। रँग राची=रंग वा प्रेम में रंग गई। साँवलिया=श्यामसुंदर। ताल=ताली, करतल ध्वनि। पखावज=छोटा मृदंग। आरोगी=ग्रहण कर पी लिया। (देखो—'शवरी परम भक्ति रघुपति की वहुत दिनन की दासी। ताके फल आरोगे रघुपति पूरण भक्ति प्रकासी'—सूरदास)।

विशेष—मीराँ के विषपान का प्रसंग 'भूमिका' में देखिए।

पद (४१)—थे=तुमने। म्हे=मैं। जाणी=जान गई। दहत=तपाया जाता है। वाँरावाणी=वारह वानी (वारहों सूर्यों के समान दमक वाला), खरा, चोखा। जगत की=सांसारिक वा समूची, कुल। तरकस तीर=तरकस के तीर सदृश। गरक=गर्क हो गया, प्रवेश कर गया। सनकाणी=सनक गई वा पगली हो गई।

पद (४२)—पुरवली=पूर्व जन्म की। घड़ी=एक क्षण भी। ठराव=शीतल हो जाता है। भोजनियाँ=खानपान। म्हाँरे=अपने। छापा... वना-वियाजी=छापा तिलक धारण कर लिया। पेट्याँ=पेटी में, पिटारी में।

वासक=वासुकी अर्थात् सर्प । महलाँ=महलों में। राठौडां=राठौरों वा राठौर वंश वालों की । धीयड़ी=लड़की । मोतीडाँरो=मोतियों का। राखज्यो=रख लीजिए ।

पद (४३)—गाणा=गाऊँगा । रूठ्याँ=रूठने पर । जाणा=जाना, जाना जाय । राणै=राणा ने । पी जाणा=पीजाना । डिब्बिया=डब्बिया वा पेटी । ज=जु । करिजाणा=कर देना वा रूप में समझा । दिवाणी=पगली । पाणा=पाना है ।

पद (४४)—यो=यह । घत्ताँ=खूब । माय=मां, सखी । अमर रस का=अमरत्व प्रदान करने वाले प्रेम रस का । घूम=घुमरी, नशा । घुमाय=चक्कर देकर । अमल=नशा । कोट=करोड़ों, अनेक । टिपारो=पिटारी । द्यो=दे देना । मेडतणी=मेड़ते की लड़की । नौसरहार=नवलड़ी का हार । ने=को । पाय=पिलाय । रा=का ।

पद (४५)—हो=हो गई । अँचाय=पीकर । सूल सेज=सूली की सेज ।

पद (४६)—हेली=अरी । म्हाँसूँ=हमसे, मुझसे । खिजावै=चिढ़ाती रहती है । पहरो...बिठारयो=रखवाली के लिए पहरेदार नियुक्त कर दिये हैं । जड़ाय=डलवाया है । म्हाँरी दाय=मेरे पसंद में ।

पद (४७)—विसरूँ=भूल सकती । हिरदे लिख्यो=हृदय को सदा के लिए प्रभावित कर चुका है । ऊठत...राम=उठते-बैठते सदा नाम स्मरण किया करती है । बतलाइया=पूछा है तो । कहदेणो=कर देना, दे देना । पण=बाजी । सीप भरयो=सितुही भर, केवल थोड़ा सा । टाँक भरयो=प्रायः चार माशे की तौल में । बतलायाँ=पूछने पर । धणी=पति स्वामी । और=दूसरा कोई । मारूँ...सेल=चाहा कि बरछी मार दूँ । पराछित=प्रायश्चित, पाप व कलंक । म्हाँने=मुझे । मेल=भेजना । रती=जरा भी । मोद=प्रसन्नता । यो तो=यह तो । सिसोद=सिसोदिया वंश के राणा ने । देवड़ी=भगवान् की । हूँ=मैं । फिर तलवार=फिर भी वा सदा तैयार हूँ । ऊँटा...भार=ऊँटों पर सामान लाद लिया । भो भो रो=जन्म जन्म का । साँड्यो मोकल्यो=साँडिये दौड़ाये । जाज्यो...दौड़=एक ही दौड़

में पहुँच जाना। अस्तरी=स्त्री। या तो=वह तो। मुरड़ चली=लौट गई, रूठ कर चली गई। राठौड=माय के वाले राठौर वंशियों के यहाँ। परत... पाव=कभी पैर न रक्खूँगी। नीसरी=निकली हूँ। पण=प्रण, प्रतिज्ञा। म्हाँरे=मेरे लिए। ख्वार=ख़ार, काँटा। विघ्न...मोड़=भक्ति के मार्ग में आने वाली बाधाओं को कुंठित करके। धन=स्त्री वा धन।

पद(४८)—प्रभुको मिलण=प्रभुसेमिलना। जान्यौ नाहीं=जाना नहीं। सजना=पति, प्रियतम। फिरिगये=लौट गए। अँगना=आँगन से। अभागण=अभागिनी। सोइ=सोई। करूँ ...कंथा=गले में कथा वा गुदड़ी पहन लूँ। वैरागण=योगिनी। वखेरूँ=विखरा दूँ, मिटादूँ। मोई=मुझे।

पद (४६)—जोगियाजी=योगी, प्रियतम। जोऊँ=देखती हूँ। चालै=चलता है, बढ़ता है। दुहेलां=विकट, दुर्गम। आडा=वीच वीच में बाधाओं से भरा। औघट=अटपट, अड़बड़। रमगया=लोगों से मिल जुल कर फिर कहीं अदृश्य हो गया। मोमन=मेरे मन में, मुझ में। भोली=सरल स्वभाव की ठहरी। जोवत=ढूँढते ढूंढते। वोहा=वहुत से। विरह बुझावण=विरहाग्नि बुझाने के लिए। अंतरि=हृदय में। तपत=ताप, ज्वाला। कै=या। कैर=और या, अथवा। काँइ=क्या। गुमायो=खो दिए। आरति=आर्त, लालसा। तलफत=तड़पते हैं। प्राणि=प्राण।

पद (५०)—पाँइ=पैरों। चेरी=दासी। पैंडो=मार्ग। न्यारो=जुदा। गैल=रास्ता। अगर=एक सुगन्धित द्रव्य। वणाऊँ=वना देती हूँ। जलाजा=प्रज्वलित करता जा। ढेरी=राशि। अपणे=अपने। जोत=ज्योति।

पद (५१)—होजी—अजी। महाराज=महाराज, प्रियतम। जाज्यो=जाओ। गुसाईं=स्वामी। रावली=रावरी, आपकी। किन=किसके यहाँ। हिवड़ारो=हृदय के। साज=भूषण।

पद (५२)—जासी=जायगा। खातर=लिए वास्ते। जोगण=जोगिन। करवत...कासी=काशी करवट लूँगी अर्थात् काशीपुरीं में करवत वा आरे से गला कटा लूँगी।

पद (५३)—नैणां=नयनों वा आँखों के आगे=सामने। रहज्यो=रहना, रहो। म्हाँने=हमको मुझे। सुध=ख़बर। बिछुड़न=बिछोह, वियोग।

पद (५४)—थाँने=तुझे। काई-काई=क्या क्या, किस प्रकार। वाल्हा=वल्लभ, प्यारा। जोवते=देखते ही। छे=है। मोती=मोतियों द्वारा। सगपण=सगापन संबन्ध। जुगसूं=जगत् वा संसार के लोगों से। चरण=चरणों की। पलक=क्षण भर के लिए भी। न्यारी=अलग।

पद (५५)—राइक=राजा, स्वामी (राइक में 'क' छंद पूर्ति के लिए प्रयुक्त जान पड़ता है।) छो=हो, हैं। सुरति=भगवान् की स्मृति के साथ। संजोइ=सजा कर। जहाँ=वहाँ। सदकै=समर्पित, न्योछावर। जुगै जुग=जुग जुग, सदा। वारणें=वारी जाऊँ न्योछावर कर दूँ। छोडी-छोडी=नितांत रूप से त्याग दी। सिलाम=सलाम, प्रणाम। वहोत=वहुत। जाणज्यौ=जानना। बंदी=दासी। खानाजाद=जन्म से ही घर में पाली पोसी हुई दासी वा गुलाम (देखो—'मन बिगरयौ ये नैन बिगारे।...ए सब कहौ कौन हैं मेरे ख़ानाज़ाद विचारे'—सूरदास)। महरि=कृपा। मानज्यो=स्वीकार कर लेना। विलम=विलंब, देर।

पद (५६)—सहियाँ=सखियो। काठो=कठिन। मन...कियो=मन को कड़ा करके उदासीन वा निरपेक्ष बन गये। अजूँ=आज तक। वचन=वादा। कैसे करि=किस प्रकार। तुम्हारे=अपने। फटत हियो=हृदय विदीर्ण हो रहा है।

पद (५७)—कियां=करने से। मिंत=मित्र। मिलियाँ=मिले। विंनि=विना। फेरि=फिर कभी। आणँद=आनंद।

पद (५८)—प्रीतडी=प्रीति, प्रेम। दुखडा=दुख। रो=का। मूल=कारण। वणावत=वनाता है। जावत भूल=भूल जाता है। जेज=देर। चँपेली=चमेली। सूल=दर्द।

पद (५९)—कोई दिन=किसी दिन, कभी न कभी। रमता=घूमने फिरने वाले, एक जगह जम कर न रहने वाले। अतीत=निर्लेप, विरक्त, निरपेक्ष। आसण माड़=आसन मार कर वा लगा कर। अडिग=निश्चल, अचल।

जाण् = जाना। चीत = चित्त, सुध।

पद (६०)—निरमोहिया = निर्मोही, ममताहीन। जाणी = जान गई, जानली। जदि = जब। ही = थी। औरि = दूसरी। रीति = प्रकार की। पाइ = पिलाकर। कूण = कौन से। गरज = स्वार्थ।

पद (६१)—जावादे = जाने दे। मीत = मित्र, साथी। उदासि = उदासीन, निरपेक्ष। अटपटी = वेढंगी। मधुर से = मीठा मीठा। मानूँ = मानो, जैसे। या = इसके साथ।

पद (६२) धूतारा = धूर्त, वंचक, छली। एकर सूँ = एक वार भी। वदीत = विदित, प्रसिद्ध। करी = की। गुढियाँ खोल = रहस्य का उद्घाटन करदे। म्रिघछाला = मृग चर्म। सदन = सद्यः का, नवीन, ताजा। सरोज = कमल। ऊभी = खड़ी खड़ी। जोऊँ = देखती हूँ। कपोल = मुख मंडल। सेली = योगियों के पहनने की चादर। नाद = योगियों के वजाने का सींग वाजा। वभूत = विभूति, भस्म। वटवो = योगियों का वटुवा वा थैला। अजूँ = अव भी। मुनी = मौनी। मुख खोल = वोल। चढ़ती वैस = युवावस्था। अणियाले = अनियारे, तीक्ष्ण। विनमोल = मुफ्त में ही।

द्वितीय खण्ड

पद (६३)—जन = भक्त। भीर = संकट, कष्ट। द्रोपता = द्रोपदी। वाढ़्यौ = वढ़ा दिया। रूपनर हरि = नृसिंहरूपी। सरीर = देह, अवतार। हिरणाकुश = हिरण्य कशिपु। मारि लीन्हौ = वध कर दिया। बूड़तो = डूबते हुए। राख्यौ = वचा लिया। पै = पर। सीर = सिर।

पद (६४)—निभायाँ सरेगी = निवाहनी पड़ेगी। समरथ = समर्थ, योग्य। सरव…काज = सभी कार्य सुधारने को। अपरवल—प्रवल, अपार (देखो—'पाणों माहें प्रजली, भई अप्रवल आगि'—कवीर)। झूँझाज = जहाज, सहारा। निरधारां = असहायों के। समाज = समुदाय तक को।

पद (६५)—कूण = कौन सी। गति = गती, दशा (देखो—भई गति साँप छछूँदर केरी—तुलसीदास)। कहिये = कहना चाहिए, हो। निज =

अपना। हीया में फेरी=हृदय में स्मरण करती रहती हूँ। आरति=आर्त्ति वा उत्कट चाह। तेरी=तेरे लिए। यौ=यह। पाल बाँधो=पाल चढ़ाओ, पाल तानो। बेरी=बेड़ा नाव (डिं०)। नेरी=निकट।

पद (६६)—थे=तू। नेहडी=नेह, प्रेम। विस्वास=विश्वासपात्र। संगाती=साथी। वाती वराय=(विरह की) आग जलाकर। समंद=समुद्र। छौ=हो। कवर=अरे कब। रह्योइ=रहाही।

पद (६७)—डारिगयो=डाल गया। पासी=फाँसी, बंधन। (देखो—नेह लगाय त्यागि गये तृन सम, डारि गये गल फाँसी—सूरदास)। आँवा=आम। डालि=डाल पर। केरी=की। जग……हाँसी=लोगों के लिए तमाशा मात्र है। वन…डोलूं=बेचैन हो तड़प रही हूँ। करवत ल्यूं कासी=देखो—पद (५१)। ल्यूं=लूं। ठाकुर=स्वामी।

पद (६८)—हरिह=हरि वा प्रियतम ने ही। बूझी बात=कुछ भी पूछा वा समझा। पिंड=पिंड वा शरीर। माँसूं=मैंसे। पाट=परदा वा द्वार अथवा घूंघट। मुखाँ=मुख से। सांझ...परभात=संध्या से लेकर प्रभात का समय तक आगया। अबोलणाँ—विना बोले ही। जुग=युग का समय। वीतण लागो=वीतने लगा। काहे की=कैसी। कुसलात=कुशल। आवण=आने के लिए। तारा गिणत=तारे गिन गिन कर रात का समय व्यतीत करती हूँ। निरास=निराश। सारू=का डालूं।

विशेष—'पापी प्राण' के लिए देखिये—'नहिं जानि परै कछु, या तन को केहि मोहते पापी न प्रान तजै—हरिश्चन्द्र।

पद (६९)—ओलूं=स्मृति, याद। उकलावै=अकुलाता है, वेचैन है। रमैया=प्रियतम रूप राम। लगनि=प्रीति। वरण्यं=वर्णन किया।

पद (७०) छाइ रह्या=टिक रहा (देखो—'कहा भयो जो लोग कहत है, कान्ह द्वारका छायो'—सूरदास)। जब का=तब से अर्थात् परदेश जाने के समय से। फेर=फिर। वहोरि=फिर कभी। खोर करूं=क्षौर करा डालूँ, कटवाँदूँ। भगवाँ भेख=संन्यासिन का वेश। च्यारूँ देस=चारों दिशाओं में। मिलणकूँ=मिलने को, मिलने की आशा में। जीवनी=जीऊँ, जीने

की इच्छा करती हूँ। अनेस = अनेक।

पद (७१)—रमइया = प्रियतम राम। फीको = वे स्वाद का। मुरझाइ = शिथिल पड़ गये। रैण···जाइ = रात दिन एक एक करके बीतते चले जाते हैं। तरस···जाइ = तरसता रह जाता है।

पद (७२)—हेरी = अरी। दरद = प्रेम की पीड़ा। दिवांणी = पगली। होइ = हो गई, वन गई। जाणै = समझ सकता है। गति = दशा, अवस्था। जिण = जिसने। लाई होइ = पैदा की हो। (देखो—'हिरदा भीतरि दौं बलै, धूंवां न प्रगट होइ। जाकै लागी सो लखै, कै जिहि लाई सोइ,—कबीर)। जौहरी = रत्नों के पारखी। जिन = जिसमें। जौहर = गुण। सेझ = शय्या। सोवणा = सोना। गँगन मँडल = शून्य स्थान। जद = जव।

विशेष = तुलना के लिए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का 'मरम की पीर न जानै कोय' इत्यादि पद एवं 'कै सो जांने जिनि यहु लाई, कै जिनि चोट सहाई' आदि कबीर साहब की पंक्तियाँ देखिए। इस संबन्ध में ठाकुर कवि का निम्नलिखित सवैया भी द्रष्टव्य है :—

'लगी अन्तर मैं करैं वाहिर को, विन जाहिर कोउ न मानतु है।
दुख औ सुख हानि औ लाभ सबै, घर की कोउ वाहर भानतु है।
कवि ठाकुर आपनि चातुरी सो, सब ही सब भाँति बखानतु है।
पर वीर मिले विछुरे की विथा, मिलि कै विछुरे सोइ जानतु है॥'

पद (७३)—पीया = प्रियतम श्रीकृष्ण। मेरो = अपना। वारूँ = न्योछावर करती हूँ। वलजाइ = वलिहारी जाती हूँ। जोऊँ = देखती हूँ, प्रतीक्षा में रहती हूँ। कंठ लगाइ = स्वीकार कर लो, अपना लो।

पद (७४)—नातो = नाता, संवन्ध। मोसूँ = मुझ से। तनक = ज़रा भी। तोड्यो जाइ = तोड़ा जा पाता है। पानाँ ज्यूँ = पत्तों की तरह। पिंडरोग = पांडुरोग। छाने = छिपकर। लाँघण = उपवास का व्रत। जोग = निमित्त। (देखो—पीलक दौड़ी सांइयां, लोग कहै पिंड रोग। छांनै लंघण नित करै, राम पियारे जोग—कबीर)। वावल = वावाने। बुलाइया = बुलवाये। मरम = भेद वा रहस्य। करक = कसक पीड़ा, दर्द। जाणै = जानता है। दाधी = जली हुई

हूँ। काहे कूँ=किस लिए। दारू=दवा। देह=देता है। छीजिया=घट गया। करक=हड्डियाँ। गल=गले में। आहि=आकर। आँगलियाँ रो मूँदड़ो=आँगुलियों की मुँदरी। आवण लागी=आने लगी, ठीक होने लगी। वाँहि=भुजापर। रहो रहो=रह, चुप रह। पापी=दुष्ट। जे=जो, यदि। साम्हले=सुन पायगी। जिवदेइ=प्राण त्याग कर देगी। (देखो—'वाववहिया, प्रिऊ प्रिऊ न कहि, प्रिऊ को नाम न लेह। काइक जागइ विरहणी, प्रिउ कह्या जिऊ देह'—ढोला मारूरा दूहा)। खिण=क्षण भरा के लिए। मंदिर=मकान के भीतर। आँगणे=आँगन में। ज्याँ देसाँ=जिन देशों में। वे देखँ=उसको देखता हुआ। खाइ=खा लेना। (देखो='काढि कलेजऊ आवणाऊ, भोजन दिउली तुज्झ'—ढोला मारूरा दूहा)।

पद (७५)—ढुलावै=इधर उधर डुलाती फिरती है, वेचैन किये रहती है। पिया जोत=प्रियतम की ज्योति। मंदिर=मकान, घर। दाय=पसंद। अलूनी=फीकी वा असुंदर। विहावै=वीतती है। घुँमट=घूम घूम, इकट्ठी होकर। ऊलर होइ आई=चढ़ आई, झुक आई। कूण=कौन, किसके वश में है जो। बुतावै=शांत करे। नागण=नागिन, सर्पिणी। लहर लहर=प्रत्येक झोंके पर। (देखो—'लाओ गुनी गोविन्द को वाढ़ी है अति लहरि'—सूरदास)। वतलावै=वातें करे।

पद (७६)—नींदलड़ी=नींद। परभात=सवेरा। चमक=चौंक। चंद्र कला=चाँदनी।

पद (७७)—लिखिही=लिखीही। धरत=पकड़ते ही, हाथ में लेते ही। धराँई=जोरों से धड़कने लगता है। झराँई=वेग के साथ आँसू वहा रहे हैं। थराँई=थर थर कांप रहा है।

पद (७८)—खारी=फीकी। कारी=स्याह पड़ गई हूँ। या दुख=इस दुख के कारण। अंदेस=आशंका, संशय। झाँझ-झाल। इकतारी=छोटा इकतारा वाजा। कंथ=कंत, पति, प्रियतम। जर=ज्वर, ताप। कँवारी=क्वारी, कुमारी। तारी=ध्यान।

पद (७६)—हेली=अरी सखी। जोय=जलाकर। सुसक सुसक=सिसक

सिसक कर। विरियाँ=अवसर, मौक़ा।

पद (८०)—गैली=पगली। म्हेली=डाल रक्खा है। पहेली=पहले, आरंभ में। तालावेली=बेचैनी, बेकली। (देखो—'बोछै जलि जैसे मछिका, उदर न भरई नीर। त्यूँ तुम्ह कारनि केसवा, जन तालावेली कबीर'—कबीर)। जिवड़ो=प्राण। दुहेली=दुखी, दुखिया (देखो—'बिनुजल कमल सूख जनु बेली, पदमावति निज कंत दुहेली'—जायसी)।

पद (८१)—मतवारो=मतवाले की भाँति घूमता हुआ। सनेसो=संदेशा। सुणाये=सुनाती है। गाजै=मेघ गर्जता है। वाजै=लगता है। मधुरिया=मंदगामी, सुहावना। मेह=मेघ, वर्षा। झड़ लाए=बरस रहे है। कारी नाग=कालीनाग। विरह=विरहरूपी। जारी=जलाई हुई। भाए=सुहाए।

पद (८२)—काली पीली=घन घोर। ऊमटी=उमड़ी, घिर आई। पाणी पाणी=जल ही जल। हुई हुई=हो गई। भोम=भूमि, पृथ्वी। हरी=हरियाली संपन्न। जाका=जिसका, मैं जिसका। भीजूँ=भीगती हूँ। वहार=बाहर। खरी—खड़ी। खरी=सच्ची, स्थायी।

पद (८३)—पंपइया=पपीहा। चितार्यौ=याद किया। (देखो 'चुगइ, चितारइ, भी चुगइ, चुगि चुगि चित्तारेह'—ढोला मारूरा दूहा, अथवा, 'चुगै चितारै भी चुगै, चुगि चुगि चितारै'—कबीर)। सूती छी=सोई हुई थी। पियपिय=पपीहे की बोली। दाध्या=जले हुए। लूण=नमक। हिवड़े=हृदय पर। करवत=आरा। सार्यो=चला दिया। दाध्या···सार्यो=जले पर नमक लगाकर कलेजे पर आरा चला दिया अर्थात् विरह की पीड़ा बढ़ा कर मर्मान्तक कष्ट पहुँचाया। बैठो=जा बैठा। कंठ सार्यो=अपना गला फाड़ डाला, खूब चिल्लाता रहा। चरणाँ=चरणों में धार्यो=लगाया।

विशेष—इस पद में मुहावरों के प्रयोग अच्छे हुए हैं।

पद (८४)—वाणी=शब्द, बोली। पावेली=पावेगी। थारो=तेरो रालैली डालेगी मरोड़—ऐंठकर तोड़। चाँच=चोंच। कालर=काला। लूण=नमक। स=सो। कुण—कौन। थारा=तेरे। सबद=शब्द

बोलीं। मेला=मिलन। मढाऊँ = मढाऊँगी। सोननी=सोने से। सिरताज= आदरणीय। यूँ=यों, इस प्रकार। धान=धान्य, अन्न। रह्यौहि=रहा ही।

पद (८५)—कै=याती। कहुँ=कहीं पर। किया=किये, करने में लग गया। गैल=मार्ग। भुलावना=भूल गया। लाग्यो=लगा। सँतावना= सताने। चरणाँ=चरणों में। लावणा=लगाना है।

पद (८६)—जगूँ=जगती हूँ। पौवै=निरोती है। गिण गिण=गिन गिन कर, देखते देखते। विहानी=बीती बीत गईं। (देखो—'तारा गिणत निराश'—पद (६८) और, 'अणरता सुख सोवणां, रातै नींद न आइ। ज्यूँ जल टुटै मंछली, यूँ बेलत विहाइ'—कबीर)।

पद (८७)—नसानीं=नष्ट हो गईं। विहानी=व्यतीत हो गईं। मानी= पसन्द आई। देख्याँ=देखे। ठानी=निश्चय कर लिया हैं। अंगि अंगि= प्रत्येक अंग में। वेदन=व्यथा। पीड़=कष्ट। अन्तर=भीतर। बिसरानी= भूल गईं। सुध बुध=होश।

पद (८८)—कुसी=खुशी। सरपडसीं=सर्प-विष द्वारा प्रभावित हूँ। रसीली=आनन्ददायिनी।

पद (८९)—सरै=काम चलता। कमठ=कछुवा। दादुर=मेंढक। उपजाई=उत्पन्न होता है। खाई=खा जाता है। अगन=अग्नि वा प्रेम ज्वाला। कसर...जाई=कभी पूरी हो जायगी। छाई=हो जाय। (देखो— पद (७४)।

पद (९०)—जिवूँ=जीऊँ। ओषद=औषधि। मूल=जड़ी। संचरै= कारगर होती है। बौराइ=पागल पन। कमठ...मरिजाइ (देखो पद ८९)। बन...फिरी (देखो—पिव ढूँढण बन वन गई—पद ८६)। धुन पाइ= ध्वनि श्रवण करके। सुखदाइ=सुखदायक।

पद (९१)—मिलण...काज=मिलने के लिए। आरति=उत्कट चाह वा पीड़ा। जागी=उत्पन्न हुई। उरि=हृदय में। पलक...री=क्षण भर के लिए भी आँख न लगी। भवँग=सर्प। लहरि हलाहल=विष की लहरें। सागी=वही। उमंग=आरति, लालसा।

पद (६२)—वसियो=वस गया है। रसियो=रसिक। माय=मा वा सखी। पिंजर की वाड़=शरीर के वाड़े वा घिरे स्थान में व्याप्त है। हुलसाऊँ=वहलाऊँगी। सजूँ=मिलने को उद्यत होऊँगी। गमाऊँ=गुम कर दूँ। डाको=डंका। कड़ियाँ=वे कड़ियाँ जिनमें लगा कर ढोल आदि की डोरियाँ खींची जाती हैं। मोरचँग=मुरचंग वा मुंहचंग अर्थात् लोहे का वना हुआ मुँह से वजाने का एक प्रकार का वाजा जिससे ताल दिया जाता है। अमरापुर=अमरत्व की स्थिति। रजधूलि।

पद (६३)—जीवड़ा=प्राणों को। वार डारूँगी=न्योछावर कर दूँगी। धारणा=धारण करूँगी। कुल=कुल की मर्यादा। डार=उपेक्षा करके। चलत=आँसू देते हैं। वार=समय। दोऊ वार=दोनों समय, साँझ सवेरे। धार=धारा, वेग। र=रे।

पद (६४)—करणाँ=करुण प्रार्थना। सुणि=सुनो। जोगण=जोगिन, संन्यासिनी। नग्र=नगर। म्रिघछाला=मृगछाला। योतन···करूँरी=इस शरीर पर भस्म रमाऊँगी। टेरी टेरी=पुकार पुकार कर। मेरी=पहुँचाने वाले। रूम रूम=रोम रोम, सर्वाङ्ग। साता=शांति। फेराफेरी=आवागमन।

पद (६५)—आज्यो=आजाओ। हूँ=मैं। जन=दासी। तेरा··· निहारूँ=प्रतीक्षा करती हूँ। अवध=अवधि, निश्चित समय। वदीती=वीत गई। दुतियनसूँ=दूसरों से। दोरे=कठिन हो गया।

पद (६६)—भवन पति=घर के मालिक, स्वामी। घरि=घर पर। मांहिने=भीतर। तपत=ज्वाला। डोलताँ=डोलते फिरते। बिहावै=बीत जाती है। निदरा=नींद।

पद (६७)—म्हाँने=हमको, मुझे। दियाँ=देने से। होइ=होगा। नातरि=नहीं तो। झूरै=दुःख से घवरा जाता है, शोकाकुल हो रहा है। तोइ=तुझे, तेरे लिए। डोली=घूमती फिरी। पंडर=सफ़ेद में। पलट्या=वदल गए।

पद (६८)—रमतो ही=रमता वा खेलता विचरता ही। आई=आजा। कानाँ=कानों के। रमाई=लगाजा। ग्रिह अँगणो=घर आँगन। वौ=दो

आई=आकर।

पद (९९)—थाँरी=तुम्हारी। वाट=राह। नेक=ज़रा भी। कपाट=द्वार, पलक (यहाँ पर)। आयाँ विनि=आये विना। वोहोत=वहुत, ज़ोरों की। उचाट=व्याकुलता। रावरी=आपकी। निराट=निराश्रय, असहाय।

पद (१००)—मीठा=मधुर। थारों=तुम्हारा। वोल=वोलना। कदे=कभी। तोल नाहिं आये=समझ में नहीं आया। जक=चैन। डाँवा डोल=चंचल। वजाऊँ ढोल=ढोल वजाकर यह वात घोषित करदूँ।

पद (१०१)—याकुल व्याकुल=अत्यंत बेचैन। विरह कलेजो खाय=विरह मर्मान्तक पीड़ा पहुँचा रहा है। वैणा=वचन। परी...पाय=तुम्हारे चरणों पड़ती हूँ।

पद (१०२)—आवड़े=सुहाता वा अच्छा लगता है। मोय=मुझे। घड़ी...मोय=तुझे देखे विना घड़ी भर भी नहीं रहा जाता। कासूँ=किससे, किस प्रकार। धान=अन्न (देखो—पद ८४)। गमाइयो=व्यतीत होता है। झूरताँ=शोकावेग में ही। गँवाया=खो दिये। ऊभी...जोइ=खड़ी खड़ी राह देखा करती हूँ। (देखो—'जानतौ जौ इतनी परतीत तौ प्रीति की रीति को नाम न लेतौ—ठाकुर)।

पद (१०३)—दूखण लागे=दुखने लगे। जव के=जब से। सुणत=स्मरण करते ही, याद आते ही। छतियाँ=छाती। वहगई करवत=आरी चल गई। ऐन=पूरी पूरी। देखो—'शूती साजण संभर्‌या, करवत बूही अंगि'—ढोला मारूरा दूहा)। वह गई...ऐन=अत्यन्त कष्ट हुआ। छ मासी=छः महीनों जैसी लम्बी। मेटण=मेटनेवाले। देण=दूर करनेवाले।

पद (१०४)—छाड्या=त्याग दिये। छोड़त नहिं वणै=त्याग देने से काम नहीं चलने का।

पद (१०५)—नागर=चतुर, सभ्य, रसिक। तोसें=तुझसे। नेहरा=नेह, प्रेम। ग्रिहब्यौहार=घर का काम काज। तैं=से। पारधि=व्याध। वेधि दई=तीर मार दिया। जाणई=जानता, समझता। सुभाइ=स्वभाव से ही।

पद (१०६)—थाँने=तुमको, तुझे। छाती=हृदय। राती=लाल-लाल। न्याती=नाता वा नातेदार। जोड्याँ=जोड़ कर। हरामो=हराम, दुष्ट, अधर्मी। दस्त=हाथ। राती=रत, लगा।

पद (१०७)—सजन=प्रियतम। ज्यूँ जाणो ज्यूँ=जैसे समझो वैसे, जैसे हो वैसे, सभी प्रकार। रावरी=आपकी, अपनी। निन्दरा=निद्रा, नींद। पल-पल =बराबर। छीजै=दुबला पतला होता जाता है। विछुड़न=विछोह, वियोग।

पद (१०८)—मिलणरो=मिलने का। गणों=घना, गहरा। उमावो= उमंग, लालसा। वाटडियाँ=वाट, मार्ग। जक=चैन। आँखडियाँ=आँखों में। वीता=वीते। पाशडियाँ=फाँसी। साहिव=स्वामी, प्रियतम। दासडियाँ =दासी। वैठें=ठहरती। साँसडियाँ=साँस। आरति=उत्कट अभिलाषा। पासडियाँ=पास, निकट। लगण=प्रेम। छूटण=छूटने की। आँटड़ियाँ= आँट, वैर वा उपेक्षा। पूरौ=पूरी करो। आसडियाँ= आशायें।

पद (१०९)—होता जाज्यो=होता जाना वा होते जाइयेगा। राज= आप। अब के=अब की वार। जिन=मत। टाला दे जावो=टाल जाओ। राखूँ विराज=आदर के साथ विठा रक्खूँगी। थे=आप। म्हाँका=हमारे, मेरे। सिरताज=मुकुट, अग्रगण्य। पावणड़ा=पाहुने, अतिथि। म्हाँके= हमारे। भलाँ=भले, अवश्य। सुधारण काज=सुधारने के लिये। छाँ= है। थाँ के=आपके। घणेरी=बहुतेरी। रसराज=रसिक। म्हे तो..... रसराज=तुम तो एकमात्र रसिक शिरोमणि हो और मैं बुरी भी हूँ तो तुम्हारे यहाँ बहुतेरी अच्छी अच्छी भी वर्तमान हैं। सबहिन=सभी। गरिबनिवाज= दीनों का पालन करने वाले। मुगट=मुकुट, सिरताज। मानुँ=मानो। पाज =राशि वा मर्यादा।

पद (११०)—कबहूँ=कभी तो। जोगिया=जोगी, प्रियतम। अलख जगाई=पुकार पुकार कर अप्रत्यक्ष परमात्मा का स्मरण दिलाती हुई भीख माँगती फिरी। तपति=ज्वाला।

पद (१११)—नैणाँ=नेत्रों के। नेरा=निकट। निरखण कूँ=देखने

की। चाव=चाह। घणेरो=उत्कट, बड़ी। सवेरा=शीघ्र । तापतपन=अंतर्ज्वाला ।

पद (११२)—ज्यूँ...ज्यूँ=जैसे हो वैसे, सभी प्रकार से (देखो—पद १०७)। पलपल भीतर=प्रत्येक क्षण । औगणहारी=अवगुण से भरी। औगण...जी=मेरे अवगुणों का ख्याल न करना (देखो—'हमारे प्रभु अवगुण चित न धरो'—सूरदास ।

पद (११३)—खारा=फीका, नीरस। थाँरा=तुम्हारा । दुखियारा=दुखी।

पद (११४)—वारी वारी=बलिहारी जाती हूँ। आज्यो=आ जाओ। रँग राते=प्रेममें फँस गए हो। तकसीर=अपराध, भूल-चूक।

पद (११५)—आवत=आने पर। आस्याँ=आवेंगी, होगी। सामा=मीठी-मीठी बात चीत वा शान्ति। मिलियाँ=मिलने से । सरैं=पूर्ण होते हैं। मनके=मन चाहा।

पद (११६)—बेर-बेर=बार बार, निरन्तर। टेरहूँ=पुकारती रहती हूँ। अहे=अहो, अजी। क्रिपा=कृपा। महीने=मास में। पंछी=पक्षियों को। होई=हुआ करता है। असाढाँ=अषाढ़ मास में। कुरलहे=करुण शब्द करते हैं। घन...सोई हो=(और) चातक भी मेघों के प्रति वही (उसी प्रकार करुण शब्द) करते हैं। झड़=वर्षा की झड़ी । लागियौ=लगती है। तीजाँ =राजस्थान में प्रचलित श्रावण शुक्ला तीज का त्यौहार। भादरवै=भादो मास में दूरी...हो=दूर मत रक्खे, अलग न हो। ही=हृदय में । झेलती=हज़म करती वा धारण करती है। आसोजाँ=आश्विन वा क्वार मास में भी। सोई हो=वही होता है। देव=विष्णु भगवान। काती=कार्तिक मास में। पूजहे=पूजते हैं। मेरे...हो=मेरे देव तुम्ही हो। मगसर=मार्गशीर्ष वा अगहन मास में। ठंड=शीत। बहोती=बहुत ही। सम्हालो=याद करना, सुधिलो। पोस मही=पौष वा पूस मास में। पाला=पाला, कड़ी शीत। अब ही=अभी। न्हाललो=आकर देख जाओ। महामहीं=माघ मास में। फागाँ=होली के गीत। खेलहैं=खेलते हैं । वणराइ=वनराज, जङ्गल के राजा। जरावै

हो=जलाती वा कष्ट पहुँचाती है। ऊपजी=इच्छा इत्पन्न हुई। फूलवै=फूलती वा पुष्पित हो जाती है। कुरळीजै=करुण शब्द करती है। काग... गया=प्रतीक्षा में काग उड़ा-उड़ा कर शकुन विचारा करती हूँ। बूझूँ=पूछा करती हूँ। पिंडत जोसी=पंडित व ज्योतिषी। होसी=होगा।

विशेष—विरहणी द्वारा प्रत्येक मास की प्राकृतिक विशेषताओं के वर्णन कराये जाने से यह पद 'बारह मासे का गीत' माना जा सकता है।

पद (११७)—आवो ने=आवो न। या=इस। नैणज=जिससे नेत्रों द्वारा। ध्याई=ध्यान करके। आदेस=निवेदन। जल=जल से। रावल=मेरे राजा वा प्रियतम को। कुंण=किसने। विलमाई=लुभा कर रोक रक्खा। कोइ भौ=एक युग का ही लंबा समय। ऐ=ये। अहला=व्यर्थ (देखो—'साल्ह, कुँवर, जोगी कहइ, अहलउ केम मरन'—ढोला मारूरा दूहा)। जाय=जाते हैं, बीत रहे हैं। वेरी=वार। देह फेरी=चक्कर लगा जा।

पद (११८)—ने=को। कहज्यो=कह देना। आदेस=निवेदन,संदेश। चतर सुजाण=चतुर सुजान। ध्यावै=ध्यान धरते हैं। नाह=नहीं। म्हारे=अपने। प्रतिपाल=अनुग्रह। मुदरा=योगियों का मुद्रा नामक कर्णभूषण। मेखला=योगियों की कधंनी। वाला=वाल्हा बल्लभ, प्यारे। खप्पर=भिक्षापात्र। जुग=जग, संसार भर। ढूढ़सूँ=खोजूँगी। रावलियारी=अपने राजा के। कौल=करार। गिणता···रेख=इतनी वार अवधि के दिन गिनने पड़े कि अँगुलियों की रेखाएँ तक मिटने लगीं वा मिट गईं। पीली पड़ी=मुरझा गई। वाली=नवीन, नई। पेस=पेश, समर्पण।

विशेष—विरहिणी द्वारा आने की अवधि गिनने के विषय में देखिए 'दिन औधि के कैसे गनौं सजनी, अँगुरीन के पोरन छाले परे—ठाकुर।

पद (११६)—पलक उघाड़ो=आँखें खोलो, मेरी ओर देखो। हाजिर नाजिर=आँखों के सामने। कदंकी=कभी से, देर से। साजनियाँ=स्वजन सगे। दुसमण=दुश्मन, वैरी। सवने=सभी को। कड़ी लगूँ=अप्रिय जान पड़ती हूँ। डिगी=चल कर। हुई अड़ी=रुक गई। सौ... घड़ी=सौ के सामने वा मुकाबले एक पसेरी।

पद (१२०)—पाल=भीटेपर, तोर पर। साँपड़े=सम्पादन करती है, निवटती है। सांपड=निवट कर, हाथ मुँह धोकर। सूरज सामी=सूर्य भगवान् का। विरंगी=विचित्र। डगराँ विच=राह में। कोई=क्या। पीहर=मायका। असल गुँवार=निरे मूर्ख। तवै=तुझे। के=क्या। पडी=चिंता है। वारणे=द्वारपर।

पद (१२१)—सूनौ=शून्य, निर्जन। छै=है। वदीती=वीत गई। अजूँ=आज तक। पंडर=श्वेत। तजि...नरेस=राजा का देश वा मेवाड़ का राज्य तक त्याग दिया।

पद (१२२)—वाँण=वानि, स्वभाव। ललचावन की=ललचाने वा लुभाने की। ए=ये। नदिया···सावन की=सावन की नदियों की भाँति इनमें आँसू उमड़ आते हैं। उड़ जावन=उड़ जाने, शीघ्र पहुँच जाने की। दाँवन=दामन, पल्ला, सहारा।

पद (१२३)—दाँवन चीर=पल्ले का कपड़ा अथवा चीर का पल्ला। सावणियो=सावन के मेघ वा मेघमाला। लूम रह्यो=छा रही है। सावणियों···रह्योरे=सावन के बादल झुककर वरस रहे हैं। दोने=देओ। वलवीर=वलदेव के भाई अर्थात् श्रीकृष्ण।

पद (१२४)—कूँ=को, के नाम। जानि बूझ=समझ बूझ कर। गुझवाती=गुह्य वा गुप्त वात। स्याम···गुझवाती=श्रीकृष्ण ने कुछ समझ बूझ कर ही मौन धारण कर रक्खा है। जोइ जोइ=देखते देखते। हीयो=हृदय। छाती=छाती के भीतर। पूरब···साथी-पूर्वजन्म के सवन्ध की ओर निर्देश। दे० विशेष पद (१६)।

पद (१२५)—लगन=प्रीति, आसक्ति। कछुवै=कुछ भी। सपनन=स्वप्नों। तरनन की=पार करने की। सरनन=शरणों।

पद (१२६)—म्हारा=हमारे, मेरे। वेगा=शीघ्र। म्हारे=हमारे (यहां) सीर=शीर वा दुग्ध की पवित्र धारा। बुवाज्यो=वहा दीजिएगा। वीछड़ियाँ=विछुड़ने से। मेरा···माँही=अपने मन में ही। मुरझाऊँ=उदास वनी रहती हूँ। कुछ=कुछ भी वेदना। वाघण=वाघिन के समान

क्रूर व निर्दय। (देखो—'विरह बाघ वनि तनि वसइ, सेहर गाजइ आइ'—ढोलामारूरा दूहा)। कहियाँ=कहकर। ज्यूँ=मानो। खीना=क्षीण। ऊगो=उगा हुआ। भाण=सूर्य। ऊ=वह। कवै=कब। करोला=करेंगे.। धरोला=धरेंगे, रक्खेंगे। म्हाँ रे…जी=मेरे आँगन में आप आएँगे। प्यासी=परेशान।

पद (१२७)—निभाज्यो=निभा दीजिएगा। थे=आप। छो=हो, हैं। गुणरा=गुणों के। श्रोगण=अवगुणों पर, दोषों की ओर। जाज्यो=जाइयेगा, ध्यान मत दीजिएगा। म्हाँरू=मेरे। लोक=लोग। धीजै=प्रतीति करते वा संतुष्ट होते हैं। (देखो—'उज्ज्वल देखि न धीजिए, वग ज्यों माँडे ध्यान। धौरे बैठि चपेटिसी यों लै बूड़ै ज्ञान'—कवीर) पतीजै=मानता वा विश्वास करता है। मुखडारा=अपने श्री मुख से। लँगाज्यो=लगा दीजिएगा।

पद (१२८)—मिलता जाज्यो=मिलते जाइयेगा। तलफ…मर जानी=तड़प-तड़प कर मरती जा रही हूँ। सुखदानी=सुख पहुचाने वाले।

पद (१२९)—आरति=आर्ति वा चाह। परपाते=कृपा द्वारा। दियना=दिया, चिराग। पाटी पारों=शिर के बालों को कंघी द्वारा बैठाकर बराबर करूँ। माँग सँवारों=शिर के बालों के बीच माँग वा सीमंत निकालूँ। पाटी…हो=ज्ञान शक्ति द्वारा तत्वबोध प्राप्त करूँ और शुद्ध बुद्धि द्वारा अपना मार्ग निश्चित करलूँ। वारों=न्योछावर करदूँ। या…विछाये हो=अनेक प्रकार के मनोरथों से युक्त हो प्रियतम की प्रतीक्षा कर रही हूँ। तुम…हो=मेरे तुम्ही एक मात्र स्वामी हो।

तृतीय खंड

पद (१३०)—सुणौ=सुनो। दयाल=कृपालु भगवन्। काढो=निकालो, पार करो। मरजी=खुशी, इच्छा। यौं=इस। कुटम कवीलो=कुटुम्ब के लोग (देखः—पद १२६) मतलब=दुनियादारी का स्वार्थ। गरजी=स्वार्थी। थाँरी=तुम्हारी, अपनी।

पद—(१३१)—सरण=शरण में। परी=आ गई हूँ। ज्यूँ…ज्यूँ=

जिस प्रकार उचित समझे। अड़सठ तीरथ=अनेक वा सारे तीर्थ। सुणियौ श्रवण=कानों से सुनिये। जम...निवार=आवागमन से मुक्तकर।

पद (१३२)—अजामील=एक प्रसिद्ध भक्त। सदान=भक्त सदन कसाई। गजराज=भक्त गजेन्द्र। गणिका=भक्त वेश्या। कुवजा व भीलनी=भक्तों के नाम। भीलनी=शवरी (देखो—पद १८७)। रावली=आपकी। दोनों कान=भली भाँति दोनों कान लगाकर।

पद (१३३)—बेड़ो=नाव, जीवन। करूँ छूँ=करती हूँ। संसा सोग=संशय व शोक, दुःख। निवार=दूर कर। अष्ट करम की तलव लगी है=सांसारिक व्यवहारों में नित्यशः फँसना पड़ रहा है। लख...धार=चौरासी लाख प्रकार की योनियों में।

विशेष—उक्त 'अष्टकरम', कदाचित्, वे 'अष्टपाश' ही हैं जिन्हें 'कुलार्णव तंत्र' ने "घृणा, लज्जा भयंशङ्का जुगुप्सा चेतिपञ्चमी। कुलं शीलं तथा जाति, रष्टौ पाशाः प्रकीर्तिताः ॥" कह कर गिनाया है।

पद (१३४)—रावलो=आपका। विड़द=विरद, वड़ा नाम (देखो—'वड़े न हूजै गुनन बिनु बिरद बड़ाई पाय'—बिहारी लाल)। रूढ़ो=रूरा, उत्तम। पीड़ित...प्राण=पराये अर्थात् भक्तों के प्राणों की रक्षा अथवा दुःख निवारण के लिए दुःखी होने वाले। सगो सनेही=प्रिय संबंधी। वैरी=दुश्मन, वाधक। ग्राह...उवार्यो=ग्राह द्वारा ग्रस्त गजेन्द्र को मुक्त कर दिया। छे=है। जान=प्राण। आन=अन्य दूसरा।

पद (१३५)—सुणीछै=सुना है। उधारण=उद्धार करने वाले हैं। तारण=तारने वाले। अरजि=अर्ज़ी वा प्रार्थना पर। गरजि=ललकार कर। ध्यायो=दौड़ पड़े। निवारण=दूर कर देने वाले। द्रोपति सुता=द्रुपद सुता, द्रौपदी। वधायो=बढ़ा दिया। दूसासन... मारण=दुःशासन का अभिमान चूर्ण कर देने वाले। प्रतंग्या=प्रतिज्ञा। हरणा कस=हिरण्यकश्यप। नख...विदारण=नखों द्वारा उदर फाड़ देने वाले। रिख पतनी=ऋषि पत्नी, अहिल्या। सदामाँ=भक्त सुदामा (देखो—

पद १८८) । विडारण=नष्ट वा दूर कर देने वाले । परि=पर, संबंध वा बारे में । अवेरि=देर । किण कारण=किन कारणों से ।

पद (१३६)—बाँहलड़ी=बाँह, हाथ । मेरी बाँहलड़ी जी गहो=मुझे अपना लो । मंझधार=बीच की धारा व प्रवाह में । थेही=तुम्हीं । निभावण=निवाहने वाले । म्हाँ में=हममें । ओगण=अवगुण, दोष । घणा छै=घने वा बहुत से हैं । सहो तो सहो=चाहो तो बर्दाश्त कर सकते हो । विरद=नाम, बाना । वहो=रक्खो, सँभालो ।

पद (१३७)—बालद=बलद, बैल । कबीर=भक्त कबीर । नामदेव=भक्त नामदेव । छान छवंद=छप्पर छा दिया । दास धना=धन्नाभगत । निपजायो=बोदिया । सुनंद=सुनली । गज=भक्त गजेंद्र । भीलणी=भक्त शबरी (देखो—पद १८१) सुदामा=भक्त सुदामा (देखो—पद १८८) तन्दुल=तंदुल, चावल । मुठड़ी=मुट्ठी । बुकंद=चखाया । करमा बाई=भक्त करमाबाई । खींच=खीचड़ी । अरोग्यो=ग्रहण कर ली (देखो—पद ४१) परसण=प्रसन्न । पावंद=पाया, खाया । सहस=हज़ारों । रहंद=रहता है

पद (१३८)—लुभाणी=लुभाई हुई हूँ । तिरना=तरजाना, पार हो जाना । जैसे···पाणी=जिस प्रकार पानी पर पत्थर । सुकिरत=शुभकर्म, पुण्यकार्य । करम कुमाणी=अशुभ कर्म वा पाप किये । गणिका=वेश्या भक्त । कीर पढावताँ=तोता पढ़ाती-पढ़ाती । वसाणी=बस गई । अरध=अर्ध, आधा । कुंजर=हाथी, भक्त गजेन्द्र । अवध=अवधि, आवागमन का काल । पसु जूण=पशुयोनि । अजामेल=अजामिल भक्त । हेते=कारण दियो=उपदेश किया । परतीत पिछाणी=विश्वास कर लिया ।

पद (१३९)—अबला ने=अबला वा असहाय स्त्री को । मोटी=बड़ी । नीराँत=भरोसा । थई=हुआ । सामलो=श्यामसुन्दर । घरेउ=घर पर । साँचु=पधारा, आया । वाली वड़ाऊँ=कान की बालियाँ गढ़वाऊँ वीठल वर=विट्ठलरूपी वर वा पति । हइये=हैही । चीन=चिंतामणि चुड़लो=चूड़ा । सिद सोनी=सिद्ध सोनार । जइये=जाकर झाँझरिया=झांझन नामक पैर का गहना । (देखो—झाँझरि

झनकैंगी खरी तरकैगी तनी तनकौ तन तोरें—देव)। किस्न=कृष्ण। गलाँरी=गले की। विछुवा=एक पैर का गहना। घुंघुरा=घुंघरू, मंजीर। अनवट=पैर के अँगूठे का छल्ला। पेटी=कमरबन्द। घड़ाऊँ=गढ़वाऊँ। टीकम=त्रिविक्रम। नामनूँ=नाम का। कूँची=कुञ्जी। घैणानु=गहनों को। मारूँ=बन्द कर दूँ। सासर वासो=सुसराल में, प्रियतम के घर। सजीने=सजधज कर। हवे=अब। नथी=नहीं है। काँचूं=चोली। काइ=कोई। सजीने=सजकर।

विशेष—हरिनाम का स्मरण करते-करते मीराँ को पूर्ण भरोसा होने लगा कि अब प्रियतम श्री कृष्ण ने मुझे पत्नी के रूप में स्वीकार कर लिया है और इसी भाव को उन्होंने, जान पड़ता है, इस पद में रूपक द्वारा दर्शाने की चेष्टा की है।

पद (१४०)—नन्दनन्दन=श्रीकृष्ण को। विलमाई=लुभाकर रोक रक्खा। घेरी—चारों ओर से घेर लिया। लरजे=डोल डोल वा झुकझुककर बरसता है। सवाई=विशेष रूप से। विज्जु=विजली। पुरवाई=पुरवा। सुणाई=सुना रही है।

पद (१४१)—अवाज=शब्द, ख़बर। म्हैल=महल। चढ़े चढ़ि=चढ़ चढ़कर। जोऊँ=देखती हूँ। महाराज=प्रियतम। साज=साद वा शब्द से। मधुरे=मीठे, सुहावने। उँमग्यो इन्द्र=इन्द्र वा मेघ उमड़ आया। दामणि=दामिनी, विजली। छोड़ी लाज=लज्जा छोड़ कर सामने चमक रही है। नवा नवा=नये नये, हरे। धरिया=धारण किया।

पद (१४२)—जोसीड़ा=जोशी, ज्योतिषी, पुरोहित। लाख=अनेक। बधाई=उपहार, धन्यवाद। जीव...सुख धाम=प्राणों को अत्यंत सुख की प्राप्ति हो गई। पाँच सखी=पाँच सखियाँ अथवा पंच ज्ञानेन्द्रियाँ। परसिकै=स्वागत किया, दर्शनानन्द प्राप्त किया। ठाँम ठाँम=जगह जगह पर (मनाया)। सुफल=पूर्ण हुई। काम=कामना। गवन कियो=पधारे। राम=प्रियतम।

पद (१४३)—रंगीली=रंगभरी। गणगोर=चैत्रशुक्ला तृतीया को होने वाला गौरी व्रत का त्यौहार। छै=है। काली पीली=घनघोर (देखो—पद

८२)। मेघ=मेह, वर्षा। सोर=शब्द, कूक। चरणा=चरणों। जोर=शक्ति, दृढ़ विश्वास।

पद (१४४)—झुक आई=जल से भरी होने के कारण नीचे तक आई। उँमग्यो=उमंगों से भर आया। भनक=उड़ती हुई ख़बर। दामण=दामिनी, बिजली। दमक=चमक। झर...की=झड़ लगा देने वाली। नन्हीं...बूँदन=झींसियों वा फुहारों के रूप में। मेहा=वर्षा। गावन की=गवाने वाली।

पद (१४५)—सावण=सावन, वर्षा ऋतु का वातावरण। जोश=उमंग। दे रह्यो=पैदा कर रहा है, जाग्रत कर रहा है। ज्यो वारूँ=चो समर्पित करदूँ।

पद (१४६)—झरी=झड़ी, छोटी छोटी बूँदों की लगातार (देखो—'कुंकुम अगर अरगजा छिरकहि भरहि गुलाल अबीर। नभ झरि पुरी कोलाहल भइ मन भावति भीर'—तुलसीदास)।

पद (१४७)—वदलारे=अरे बादल। बूँदन=बूँदें। मधुरिया=मंद। वदराँ=बादलों से। सेझ=सेज, शय्या। सँवारी=सजादी। मंगल मंगल गान, उत्सव के गाने (देखो—'दुलहनी गावहु मंगल चार, हम आये हो राजा राम भरतार—'कबीर)। भाग भलो···पायो=बड़े भाग पाया (देखो—'बहुत दिनन के बिछुरे हरि पाये, भाग बड़े घरि बैठे आये' कबीर)।

पद (१४८)—सहेलियाँ=अरी सखियों। साजन=प्रियतम। बहोत बहुत। जोवती=राह देखती। नेवछावरी=न्योछावर, समर्पण। सनेसड़ा संदेश। निवाजूँ=अनुग्रह समझूँ। रली वधावणाँ=आनन्द वधाई उत्सव (देखो—'आजे रली वधाँमणाँ, आजे नवला नेह। सखी, अम्ह गोठमइँ, दूधे बूठा मेह'—ढोला मारूरा दूहा)। भावै=समाता है। हरि =हरि रूप समुद्र। नेहरो=स्नेह, प्रेम में। नैणाँ वँध्या=नेत्र वँध फँस गये। सनेह=प्रेम में। दूधाँ=दूध की धाराओं से। आँगणै=में। बूठा=वर से।

विशेष—सखी के आँगणै, दूधां बूठा मेह हो," की समानता ऊपर उद्धृत "सखी, अम्हीणी गोठमइँ दूधे बूंठा मेह", के साथ देखिए।

पद (१४६)—म्हाँरा=मेरे। ओलगिया=अलग वा दूर रह कर प्रवास करने वाले (देखो—ओलग्या=प्रवास किया—'ढाढी रात्यूँ ओलग्या गया बहु वहु भंत'—ढोला मारूरा दूहा)।यूँ=इस प्रकार। दरध=दर्द, पीड़ा। कमोदणि=कुमुदिनी। सिधाया=पधारे। न्हसाया=नष्ट हो गया, दूर हो गया।

पद (१५०)—राजी=प्रसन्न, आनन्दित। मेरे=अपने। छिन=क्षण। दीदार दिखाया=साक्षात्कार करा दिया। अस=इस प्रकार।

पद (१५१)—मनारे=हे मन। चार=थोड़े से ही। करताल=ताली की ध्वनि। अणहद=भीतर का अनाहत शब्द। झणकार=ध्वनि। सुर=स्वर। राग छतीसूँ=छः राग व तीस रागिनियाँ। रोम रोम=रोम रोम वा सर्वांग में व्याप्त। रँग=रंग, नृत्य गीत, आदि। सार=श्रेष्ठ, उत्तम। पिचकार=पिचकारी। अंवर=आकाश। रंग वरसत=शोभा हो रही है। अपार=अत्यंत, खूब। घट=हृदय। पट=आवरण। डार=दूर करके। वलिहार=वलिहारी जाती हूँ।

विशेष—अनहद वा अनाहत नाद एक प्रकार का अस्फुट शब्द है जो दोनों हाथों के अँगूठों से दोनों कानों की लंबे बंद करके ध्यान पूर्वक सुनने से सुनाई पड़ता है। योगी लोग इसे समाधि के समय सुना करते हैं। मीराँबाई ने इस पद में होली के रूपक द्वारा एक प्रकार की सहज समाधि का ही वर्णन किया है।

(१५२)—वाल्हा=वल्लभ, प्रियतम। जीं जीं=जिन जिन। निरंजण=निरंजन परमात्मा का नाम। घट=शरीर। समता=सब के साथ बराबरी का भाव। पेरूँगी=पहनूँगी। कींगरी=किंगिरी, छोटी सांरगी जिसे वजाकर कुछ जोगी भीख माँगते हैं (देखो—'तजा राज राजा भा योगी। औ किंगिरी कर गहे वियोगी'—जायसी)।

विशेष—प्रियतम के साथ तादात्म्य ग्रहण करने के निमित्त मीराँबाई ने इस पद में बैरागिन वा जोगिन के भेष धारण के रूपक से सहायता ली है।

शरीर को किंगिरी का रूपक देने की जगह, कभी कभी रवाव भी कहा करते हैं—जैसे कबीर साहब ने विरहावस्था का वर्णन करते समय लिखा है—'सब रग तंत रवाव तन विरह वजावै निच्च । और न कोई सुणि सकै कै सांई कै चित्त'—कबीर)।

पद (१५३)—चालाँ=चल। वाही=उसी। कसूमल=कसुंवी वा कुसुम के रंग की, लाल। रंगावाँ=रँगाले। भरावाँ=भरालें, सजालें। छिटकावाँ=विखरा दें। सुणज्यो=सुन लीजिए। विड़द=विरद, प्रण, निश्चय। नरेस=राजा, प्रियतम।

पद (१५४)—मने=मुझे। चाकर=दास, टहलुवा। रहसूँ=रहूँगी तो। वाग=वाटिका, फुलवारी। लगासूँ=लगाऊँगी। नित ...यासूँ=नित्यशः फुलवारी से फूल चुन कर अर्पण करते सयय प्रातःकाल में ही दर्शन मिल जाया करे। विन्द्रवन=वृंदावन। गासूँ=गाऊँगी। चाकरी=वेतन। सुमिरण=नाम स्मरण। खरची=प्रतिदिन के लिए निश्चित खर्चे के रूप में। जागीरी=जागीर के रूप में। सरसी=एक से एक उत्तम हैं वा पूर्ण हो जायँगी। वन्न=वंद वा वाँध, मेड। हरे हरे=हरियाले वा हरे भरे (हरी घासों से आच्छादित)। करणकूँ=करने के लिए। गहिर गँभीरा=शांत वा स्थिर स्वभाव के, वहुत गम्भीर प्रकृति के। रहो...धीरा=धैर्य से रहो, विश्वास रक्खो। देहैं=देंगे। प्रेम...तीरा=प्रेम भाव के क्षेत्र में पहुँचने पर।

विशेष—यह पद आत्मसमर्पण की अवस्था के वर्णन का उत्कृष्ट उदाहरण है। पद (१५२) व (१५३) भी इसी भाव के द्योतक हैं।

पर (१५५)—री=अरी। मेरे पार=मेरे हृदय के आरपार। निकस गया=वेध कर उस पार निकल गया। तीर मार्‌या=सांकेतिक वचनों द्वारा सुझा दिया। भाल=नोक। उर अन्तरि=हृदय के भीतर। इतः...कवहूँ=मन नितांत निश्चल हो गया। डारी ...जँजीर=उस पर प्रेम की जंजीर पड़ गई अर्थात् वह एक दम बँध गया। कै जाणै=या तो जानता है। झरत=बहा रहे हैं। मिलियाँ =मिलने को।

विशेष —'विरह...अन्तरि' एवं इत...कवहूँ' की तुलना के लिए

देखिए—'हसै न बोलै उनमनी, चंचल मेल्ह्या मारि। कहै कबीर भीतरि भिद्या, सतगुर कै हथियारि'—कबीर)।

पद (१५६)—भर···बानाँ=सावधानी के साथ साध कर तीर छोड़ा वा मारा। (देखो—'सतगुर मारया बाण भरि, धरि करि, सूधी मूठि,—कबीर)। बिरह...के=विरह में भिगो वा विरह द्वारा विषाक्त करके। पावन पंगा=पाँवों से पंगु वा लँगड़ा कर दिया। (देखो—'गूँगा हुवा बावला बहरा हुवा कान। पाऊँ थैं पंगुल भया सतगुर मारया बाण'—कबीर)। पावन...नैना=विरह बाण द्वारा विद्ध होने के कारण सारा शरीर स्तब्ध सा हो गया और पैर, कान, नेत्र आदि इन्द्रियों में से किसी में भी इतनी शक्ति नहीं रह गई कि वे पूर्ववत् सांसारिक बातों का अनुभव कर सकें। मरम=रहस्य, कारण रूम रूम=रोम रोम। चैन=आनंद। जस्या=जैसा। अमरलोक=अमरत्व की स्थिति जो परमात्मा प्रियतम से मिलकर तादात्म्य का अनुभव कर लेने का प्राप्त हो सकती है।

पद (१५७)—वसत=वस्तु। अमोलक=अमूल्य। अपणायौ=अपना लिया। पूँजी=मूलधन। खोवायौ=खो दिया। वधत=बढ़ता है। सवायौ=सवाया, अधिक-अधिक, विशेष। सत=सत्य। खेवटिया=केवट।

विशेष—यहाँ पर रत्न के व्यवसाय का रूपक देखकर अपने प्रियतम के नाम स्मरण का व्यवहार स्पष्ट किया है।

पद (१५८)—खुमार=हल्की थकावट की वह दशा जो किसी नशे के उतरते समय आ जाती है। मेहडा=प्रेम का मेह ('डा' प्रत्यय ऊनार्थ वाचक है) सारी=तमाम, सर्वाङ्ग। भीजै...हो=प्रेम सर्वाङ्ग में व्याप्त हो गया। (देखो—'बरस्या बादल प्रेम का, भीजि गया सब अंग'—कबीर)। भरम=भ्रम, भ्रांति, अज्ञान। दीपग=दीपक। जोऊँ=जलाऊँ। अगम=अगम्य स्थान की, ऊँची। इमरित=अमृत के लिए। वलिहारी=बलिहारी जाती हूँ। दामणी=बिजली, यहाँ पर परम ज्योति। घन=बादल, यहाँ पर अनाहत शब्द।

विशेष=आत्मदर्शन के पश्चात् होने वाले आनंदमय अनुभव की

स्थिति का वर्णन प्रेमवर्षा और उसके प्रभाव के रूपक द्वारा किया गया है। कबीर साहब ने इस विचित्र परमात्म-प्रेम को 'रामरस' भी कहा है। (देखो—'कहै कबीर फाबी मतिवारी, पीवत रामरस लगी खुमारी'—कबीर)। 'अगम अटारी' का प्रयोग, यहाँ पर, अपरोक्षानुभूति की उस अवस्था के लिए किया गया है जो किसी विरले संत को ही उपलब्ध हो पाती है। इस दशा में जीवात्मा व परमात्मा अभेदरूप से एकाकार हो जाते हैं।

पद (१५६)—मनमानी=मन में जँच गई व बैठ गई। सुरत सैल=ध्यान द्वारा भ्रमण-विहार वा सैर सपाटा। सैल=सैर (देखो—'गोप अथाइन तें उठे गोरज छाई गैल। चलि वलि अलि अभिसार को भली सँझोखी सैल'—विहारी लाल।) असमानी=आसमानी, ऊँची, ईश्वरीय। वा घर की=उस (ईश्वरीय) अगम देश की। सुरत=स्मृति, स्मरण। पल...पानी=सदा (आनंद के कारण) आँखों में आँसू भर आते हैं। ज्यों=मानों। हिये पीर=प्रेम की पीर। सालत=व्यथित करती है। कसक...कसकानी=मीठे दर्द की एक एक साल (टीस) टीसा करती है। विहानी=वीत गई। भेदी=रहस्य का जानकार। पिछानी=पहचान करने वाला। खानी=खानि, उत्पत्ति स्थान वा योनि। (देखो—'दारिद विदारिबे को प्रभु की तलाश, तो हमारे यहाँ अनगिन दारिद की खानि हैं'—दास)। भरमों=आवागमन में भ्रमण करूँ। सहदानी=निशानी, चिह्न। ख़लक=सृष्टि, संसार। खाक सिर डारी=तिरस्कार कर त्याग दिया, उपेक्षा कर दी। जानी=जान गई।

पद (१६०)—यौ=यह। जिवड़ों=जीव। कुण=कौन। कुवधि=कुबुद्धि, दुर्मति। भाँडो=वर्त्तन, खानि। (देखो—'दुनियाँ भाँडा दुख का, भरी मुहाँमुह भूष'—कबीर)। निंद्या ठाणै=निन्दा करता है। कुमावे=कमाता वा इकट्ठा करता जाता है। फिर=फिर कर, लौट कर, वारवार। चौरासी=चौरासी लाख योनियों में। सरणैं=शरण में। परम पद=परमात्मा का पद वा स्थान, अगम देश।

पद (१६१)—लेताँ लेताँ=लेते समय, लेने में। लोकडियाँ=संसारी लोग। लाजाँ=लाज से। लाजाँ...छे=लज्जा का अनुभव करते हैं। जाताँ=जाते समय। पाँवलियाँ=पैर। दूखे=दुखने लगते हैं। थाय=हो। त्याँ=वहाँ। दौड़ीने=दौड़ कर। मूकीने=छोड़ कर। घरना=घर के। भाँड=मसखरे। भवैया=नाचने वाला भाँड। गणिका=वेश्या, नर्तकी। न्रित=नृत्य। करताँ=करते समय। वेसी रहे=बैठे रह जाते हैं। चारे जाम=चारों याम वा प्रहर। हाम=पूर्ण रूप से लग कर अपना सा हो गया है, समर्पित हो गया है।

पद (१६२)—मन की मैल=मनोविकार। दियो तिलक=तिलक लगा लिया। सिर धोंय=शिर वा ललाट धोकर। काम=कामनायें। कूकर=कुत्ते की तरह। चंडाल=क्रूर। काम . चंडाल=क्रूर कामनाएँ मुझे कुत्ते की तरह लोभ की जंजीर में बाँधे रहती हैं। घट=हृदय में। विषया=विषयोप भोगी इन्द्रियगण। बिलार...देत=सदा भोग विलास के इच्छुक लोभी इन्द्रिय-रूपी विलार को तृप्त करने का प्रयत्न होता रहता है। किये वहु=अनेक बना दिए वा खड़े कर दिये हैं। अभिमान...ठहरात=सदा मिथ्याभिमान के कारण गर्वीले वने रहने पर कोई प्रभाव उपदेशादि का नहीं पड़ने पाता। (देखो—'कबीर हरि रस बरखिया, गिर डूँगर सिषराह। नीर मिवांणां ठाहरै, नाऊं छापर डाह'—कबीर) मनियाँ=माला के दाने। सहज...वैराग्य=वैराग्य को आसान कर दो, वैराग्य धारण मेरे लिए कठिन न होने पावे।

पद (१६३)—म्हाँने=मुझे। नीको=भला, मनोहर। ठाकुर=भगवान्। जमना में=यमुना में। दरसण=दर्शन। आप=स्वयं श्रीकृष्ण। मुगट=मुकुट। धर्‌यो=धारण किये हुए। फीको=नीरस। नर=मानव जीवन।

पद (१६४)—चालो=चलो। गंगा=प्रसिद्ध गंगा नदी (किंतु यहाँ पर, कदाचित्, 'गंगा' द्वारा जमना का विशेषण 'स्वर्गीय वा अलौकिक नदी' विवक्षित है)। कान्हो=कान्हा, कृष्ण। बलवीर=भाई बलराम। झलकत=जगमगाते हैं। हीर=हीरे। सीर=शिर, मस्तक।

पद (१६५)—हो=अजी। काँनाँ=कान्हा, कृष्ण। जुल्फाँ कारियाँ—

काली वा गहरी जुल्फें । सुघर=सुन्दर । सँवारियाँ=सजाई वा अलंकृत की गई हैं । बाखरियाँ=छोटे मकानों पर, बखारियों पर । (देखो—'जानति हौं गोरस को लेबो, बाहि बाखरि माँझ,—सूरदास) । जरि राखूँ=जड़ कर, भली भाँति बंद कर के रक्खूँ । वारियाँ=बलिहारी जाती हूँ ।

पद (१६६)—गोकुला के वासी=गोकुल निवासी (श्रीकृष्ण)। भलेई=खूब अच्छा हुआ । देखत=देखती हैं । करत हाँसी=हँसी मज़ाक करती हैं। अरगजा=एक प्रकार का सुगन्धित द्रव्य ।।सुनवल ठाकुर=सुँदर युवक मालिक।

पद (१६७)—म्हारो=हमारा, मेरा । कानूड़ो=कान्ह, श्रीकृष्ण ('डो' प्रत्यय प्रेमप्रदर्शनार्थ लगाया गया है) । कलेजे की कोर=हृदय का टुकड़ा, अत्यन्त प्रिय । झकझोर=झकोर कर, हिलाकर । चित चोर=चित्त को वश में करने वाले ।

पद (१६८)—ललना=लाल । मथत=मथते समय । सुनियत है=सुनाई देते हैं। झनकारे=झनकारे, ध्वनि । उचारे=उच्चारण करते हुए। तरण आयाँ कूँ=तरने के लिए आये हुए भक्तों को । तारे=तारते हैं।

पद (१६९)—हों=हूँ । गाँसुरी=गाँस, फँसाने के लिए फन्दा । (देखो—'निरखिन देखहु अङ्ग-अङ्ग अब चतुराई की गाँस'—सूरदास)। कोन=कौन सा । सप्त सुरन=सातों स्वरों (सप्त स्वर=षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद जिन्हें संक्षेप में सा, रे, ग, म, प, ध, और नि भी कहते हैं) । ताननिकी=लयों के भिन्न-भिन्न विस्तारों द्वारा उत्पन्न।

पद (१७०)—कमल...लोचना=कमल दलों के सामान नेत्रों वाले (कृष्ण) भुजंग=सर्प, काला नाग । पियाल=पाताल, गहराई में । काहू=किसी का । संक=शंका, भय ।

पद (१७१)—अनारी=अनाड़ी, नादान, नासमझ कृष्ण । गेलपड्यो=मार्ग में बाधा स्वरूप आ खड़ा होता है, जड़ में लगा हुआ है । जलमैं=जल में। ऊभी=पानी में खड़ी । साइनि=सदा साथ वा सहायता देने वाली सखी, सहेली । दे=पीटती वा बजाती है । अर=अरु, और । लरिलरि=लड़ती झगड़ती है ।

पद (१७२)—आवत=आते रहे। लाज...मारी=लज्जित होकर। कुसुमल=कुसुंभी रंग की, लाल। जामा=पहनावा। हजारी=सहस्र दलों वाले। दरयाई=दरियाई अर्थात् रेशमी पतली साटन। लेंगो=लहँगा। अँगिया=चोली। भारी=बड़ी, उत्तम। सुणजे=सुनिये।

पद (१७३—लँगर=नटखट वा ढीठे (कृष्ण)। (देखो—'सूरश्याम दिन दिन लँगर भयो, दूरि करौं लँगरैया'—सूरदास)। भरोसे=आसरे पर, विश्वास करके। नार=नारि, स्त्री। जोर=मिला कर। रीत=रीति, मर्यादा। टारे=दूर करने पर भी, विस्मरण करने पर भी।

पद (१७४)—मोहने=मोहन वा कृष्ण ने। कहा=क्या। प्रान··· वरयो=मेरे प्राण प्रियतम से मिल गये, अथवा प्रियतम द्वारा मेरे प्राण अंगीकृत हो गए, अपना लिये गए। हूँ=मैं। कलस=जल का घड़ा। कछुक···कर्यो=कुछ अजीब ढंग का प्रभाव डाल दिया। कारज सरयो= कार्य सिद्ध हुआ। छान=छिपे छिपे, गुप्त रूप से।

पद (१७५)—प्रेमनी=प्रेम की। मने=मुझे, मेरे हृदय में। भरवाग- याँतां=भरने गई थी। हती=थी। हेमनी=सोने की। काचेते तातणे= कच्चे धागे से अर्थात् प्रेम बंधन द्वारा। जेम=जैसे, जिस ओर। तेमतेमनी=वैसे ही, ठीक उसी ओर (जाती हूँ) (देखो—'सालूरा पाँणी विना रहइ विलक्खा जेम। ढाढी, साहिब सूँ कहइ, मोमन तो विण एम'— ढोला मारूरा दूहा)। शामली=साँवरी। शुभ=भली, मनोहर। एमनी= ऐसी ही है।

पद (१७६)—बेहाल=बेसुध। न्यारी=अलग। जानों=समझती या पहचानती हूँ। पाम=पाँव, चरणों में।

पद (१७७)—चंग=छोटे आकार का डफ बाजा जिसे साधारणतः लावनी वाले बजाया करते हैं। न्यारो=अनोखा। विहारी=कृष्ण का एक नाम। चार=चाल। धमार राग=होली के समय गाये जाने वाले एक प्रकार के गीत। कल=सुंदर, मनोहर। जु=जो। रस=प्रेमानंद।

पद (१७८)—टोना=जादू। देख्यो=देखा। मटुकी=मटकी, मिट्टी

का छोटा घड़ा। गुजरिया=गूजर जाति की स्त्री, अहीरनी, ग्वालिन। छोना=कुमार। 'लेलेहुरी…सलोना='दही लो' की जगह प्रेमावेश में आकर,'सुंदर श्याम' वा 'कृष्ण लो', कहती हुई फिरने लगी। सलोना=लावण्य वा सौंदर्ययुक्त, सुंदर। ब्रिन्द्रावन=वृंदावन। आँख लगाय=आँखें लगाकर, प्रेमभाव उत्पन्न करके। रस लोना=लोने वा लावण्यरस वाला।

पद (१७९)—कोई=कोई गाहक। मटकिया=मटकी, मिट्टी का छोटा घड़ा। विसर गई=भूल गई। विनमोले=विना मूल्य, वदले में विना कोई कीमत लिये ही। छकी=तृप्त होकर उन्मत्तसी वनी हुई। औरहिं औरै=कुछ का कुछ, अंडवंड।

विशेष—उक्त दोनों पदों अर्थात् पद (१७८) में प्रेमोन्मत्त ग्वालिनों की दशा का अच्छा चित्र खींचा गया है। सूरदास के भी कुछ पदों में इस प्रकार के भाव दर्शाये गये हैं, जैसे, 'ग्वालिनी प्रगट्यो पूरन नेहु। दधिभाजन सिर पर धरे, कहति गुपालहि लेहु, इ० अथवा 'गोरस को निज नाम भुलायो। लेहु लेहु कोऊ गोपालहिं गलिन गलिन यह शोर मचायो' इ० और 'ग्वालि फिरति वेहालहि सों। दधि मटुकी सिर लीन्हे डोलति रसना तट गोपालहिं सों' इ०। तथा, 'कोऊ माई लेहैरी गोपालहि। दधि को नाम श्याम सुन्दर रस, विसरि गयो व्रजवालहिं' इ० इ०।

पद (१८०)—रसभरी=मधुर व सुरीली। नेह…चढ़ाय=प्रेम के मार्ग में अधवीच छोड़कर। मधुपुरी=मथुरा। छाय रहे=वैठ रहे।

पद (१८१)—दूइज=द्वितीया। चंदा=चाँद। दुइज…हो गये=थोड़े ही दिन वा समय तक दिखलाई देकर अदृश्य हो गए। मधुवन=मथुरा। मधुवनिया=मथुरानिवासी। परो=पड़ रहा है।

पद (१८२)—म्हांसूँ=हमसे, मुझसे। ऐंडो=ऐंठता वा इतराता हुआ। (देखो—'धन जोवन मद ऐंडो ऐंडो, ताकत नारि पराई'—सूरदास)। डोले हो=चलता है। औरनसूँ=अन्य स्त्रियों के साथ। खेलै धमार=आनंद उड़ाता है, क्रीड़ा करता है। मुखहि न वोले=सामने वातचीत तक नहीं करता। गलियाँ ना फिरे=घूमता फिरता भी नहीं आजाता। वाँके=उनके।

आँगण डोले=घर के भीतर तक पहुँचा करता है। अंगुली ना छुवे=मुझे स्पर्श तक नहीं करने देता, मुझसे तो दूर ही रहना पसंद करता है। वांकीं= उनकी। वहियाँ मोरे हो=छेड़छाड़ किया करता है, लड़ झगड़ तक जाता है। म्हाँरो=हमारा, मेरा। अँचरा ना छुवे=अंचल तक का स्पर्श नहीं करता। वाँको...वोले=उनके घूँघट हटा दिया करता है। रँगरसिया डोले =विलासी पुरुष वना फिरता है।

पद (१८३)—वैरण=शत्रु, बाधक। काहे=क्यों। लैगो=ले गया। हाथ...रही=पछताती रह गई। कठिन=कठिन हृदय का। अक्रूर=कंस का दूत जो कृष्ण का चचा लगता था और जो उन्हें वृन्दावन से रथ पर चढ़ा कर मथुरा ले गया था। तें=से। तइ=संतप्त रही। विखर क्यूँ ना गई =टुकड़े क्यों न हो गई।

पद (१८४)—करम को=भाग्य को। वो=वह। छै=है। काकूँ= किसको, किसे। ऊधो=कृष्ण के प्रसिद्ध मित्र उद्धव जो उनका संदेश लेकर गोपियों के यहाँ गये थे। दीजै=दिया जाय। सुणियो=सुन कर जान लो। वगड़=वगल वा आसपास में ही रहने वाली। गेले=रास्ते में। गेले... चोट=राह चलते चोट लगी। पहली...कीन्हो=पहले वा आरम्भ में समझबूझ न सकी। ममता...पोट=आत्मीयता की गांठ जोड़ ली। पोट= गाँठ, गठरी। जाएयूँ= जाना, समझा था। भलिपोच=भला बुरा। परो= परे, दूर। निवारोनी=निवारण करो न। सोच=चिंता।

पद (१८५)—गोहनें=संग में, साथ साथ। (देखो—'देव जू गोहन लागै फिरैं गहि के गहिरे रंग में गहिराऊ'—देव)। ऐसी आवत=ऐसा आता है। वारिज बदन=कृष्ण का मुख कमल। काछी=वनाकर, धारण कर। (देखो— गौर किशोर वेष वर काछे। कर सर बाम राम के पीछे'—तुलसीदास)। चालूँ=चलूँ, घूमूँ फिरूँ। गुलफाम=सुँदर, खूबसूरत। रैना धूलों की (रय =रज, धूल)। हम...वैनाँ=पशु, पक्षी, वंदर, मुनि आदि के शब्द अपने कानों सुनती २ मैं वृन्दावन की मिट्टी में पैदा हुई सुँदर लता सी वन गई। कठिन=कठिनाई के साथ निभायी जाने योग्य। कानि=संकोच हो रहा

है)। ऐसें...रहिए=इसी प्रकार जीवन बिताना श्रेयस्कर है।

पद (१८६)—बाँचै=पढ़े, पढ़ सुनावे। साथी=मित्र (श्रीकृष्ण)। कागद=पत्रिका। रह्या=रह गया। आवत जावत=आते जाते। घिस्या=घिस गये। राती=लाल लाल। बाँचण=पढ़ने। भर...छाती=हृदय उमण आया। नैण नीरण=कमल नेत्रों। अंब=पानी। गंगा=नदी। म्हने=मुझे। डूब तिरयो हाथी=गजेन्द्र डूबता डूबता बच गया। सांकड़ें संकटमें भक्तों का। साथी=सहायक।

पद (१८७)—चाख चाख=चख चख कर। बोर=बेर के फल। भीलणी=भील जाति की स्त्री, शबरी। अचारणी=आचारवती, आचार विचार से रहने वाली। एक रती=कुछ भी। कुचलिणी=मैले कुचैले वस्त्र वाली। झूठे=जूठे। प्रतीत जाण=विश्वास मानकर। जाने=माना, किया। रस की रसीलणी=भक्ति वा प्रेम रस का आनन्द लेनेवाली। छिन...चढ़ी=शीघ्र स्वर्ग को चली गई। हेत=संबन्ध। झूलणी=आनन्द करने वाली। जोई=जो कोई भी हो। गोकुल अहीरणी=गोकुल की ग्वालिन, पूर्व जन्म की गोपी, मीराँ (देखो—पद १६)।

पद (१८८)—राम=श्रीकृष्ण। सद। माँ कूँ=अपने बाल्यकाल के मित्र सुदामा को। फाटी=फटी पुरानी। फूलड़ियाँ=जूतियाँ। उभाणे=उबेराई नगे। चलतैं=चलते समय। घसे=घिस जाते हैं। बालपण=बाल्यकाल के मिंत=मित्र, साथी। ताँदुल=तन्दुल, चावल। पसे=पसर आधी अंजली। टपरिया=कुटिया। लाल=एक प्रकार का मणि। कसे=जड़े हुए हैं। द्वार विच=द्वार पर। फसे=खड़े किये गए हैं। सरणे=शरण में।

पद (१८९)—मरम=मर्म, रहस्य, भेद। जोगी=प्रियतम, परमात्मा। आसन माँहि=आसन मार कर। सेली=योगियों की माला। हाजरियो=हाथ में रखने का रूमाल। भाग...सोही=पूर्व के निश्चित।

पद (१९०)—करमगत=प्रारब्ध का नियम। टारे...टरे=रोके नहीं रुकती वा बदलती। सतवादी=सत्यवादी, सत्य के नियम पालन करने वाले। नीच...भरे=टहलुए का काम करते रहे। हाड=हड्डियाँ वा शरीर

हिमालै = हिमालय पर्वत पर । गरे = गले । जग्य = यज्ञ । लेण = लेने को । इन्द्रासण = इन्द्र की पदवी । धरे = भेज दिये गए । विख से अम्रित करे = बुराई को भलाई में परिणत कर देता है ।

विशेष—इस पद में दर्शाये गए भाव की तुलना के लिए क्रमशः कबीर साहब और सूरदास के निम्न-लिखित पदों को देखिए ।

करम गति टारे नाहिं टरी ।
... ...
नीच हाथ हरिचंद विकाने, बलि पाताल धरी ।
... ...
पाँडव जिनके आपु सारथी, तिन पर विपति परी । इ० ।
—कबीर साहब ।

तथा, भावी काहू सों न टरै ।
... ...
अरजुन के हरि हुते सारथी, सोऊ वन निकरै ।
हरीचन्द सो को जगदाता, सों घर नीच भरै । इ० सूरदास ।

पद (१९६)—लागी = प्रेम का प्रभाव जिस पर पड़े, जिसे लगन लग गई । कठण = कठिन, असह्य । दी = की । पड्याँ = पड़ने पर । सीर = हिस्सा सुख में...सीर = सुख में सभी साझेदार बनने लगते हैं । दी = में । सदके = न्योछावर, समर्पण (देखो—'सतगुर का सदकै करूँ दिल अपणीं का साछ'—कबीर) ।

पद (१९२)—चालो = चलो । अगम = अगम्य, परमात्मा । काल = मृत्यु । हौज = कुंड । हंस = हंस नामक पक्षी, यहाँ पर आत्मा । केल्याँ = केलियाँ, भिन्न-भिन्न प्रकार की क्रीड़ायें । ओंढण = ओढने के लिए । चीर = साड़ी । घांघरो = एक प्रकार का लहँगा । छिमता = क्षमता अथवा क्षमा । काँकण = कंगन । सुमत = अच्छी शुभ मति । मून्दरो = मुँदरी, अगूठी । दिल दरियाव = उदाराशयता, उदार हृदय । दुलड़ी = दो लड़ों की माला । देवड़ो = एक गहना । उवटण = उवटन । गुरु को ज्ञान = गुरु का उपदेश ।

धोवणों=स्नान। अखोटा=कान का गहना। जुगत=युक्ति, ईश्वर प्राप्ति के उपाय। झूटणो=कान का गहना। वेसर=नाक का एक गहना। चूड़ =बाहों पर पहनने का हाथी दाँत का चूड़ा। चित्त उजलो=उज्वल शुद्ध चित्त। जीहर=एक गहना। निरत=लीनता, अनुरक्ति। घूँघरों=घूँघरू गहना। बिंदली=टिकुली। गज=गजमुक्ता की माला। औराँसूँ=दूसरों से आखडी=उदासीन। राखडी=चूडामणि।

विशेष—अगम देश, अमरपुर वा परमात्मा की स्थिति की प्राप्ति अथ प्रियतम परमात्मा के साथ तादात्म्य लाभ करने के लिए जिन बातों का होना आवश्यक है उन्हें मीराँबाई ने इस पद में षोड़श शृंगार के भिन्न भिन्न अंगों के रूपक द्वारा व्यक्त किया है। परंतु इस पद में आये हुए उल्लेख षोड़श शृङ्गार की साधारण परिभाषा के अनुसार ठीक नहीं उतरते। तुलना के लिए देखिए—

१. अंग में उवटन लगाना, २. नहाना, ३. स्वच्छ वस्त्र धारण करना, ४. बाल सँवारना, ५. काजल लगाना, ६. सेंदुर से माँग भरना, ७. महावर देना, ८. भाल पर तिलक लगाना, ९. चिबुक पर तिल बनाना, १०. मेंहदी लगाना, ११. सुगन्धित वस्तुओं का प्रयोग करना, १२. गहने पहनना, १३. फूलों की माला धारण करना, १४. पान खाना, १५. मिस्सी लगाना, १६. होठों का लाल करना।

> अंगशुची,[१] मंजन,[२] वसन,[३] माँग,[४] महावर,[५] केश[६]।
> तिलक भाल,[७] तिल चिबुक में,[८] भूषण,[९] मेंहदी,[१०] वेस।
> मिस्सी,[११] काजल,[१२] अरगजा,[१३] वीरी,[१४] और सुगन्ध[१५]।
> पुष्प[१६] कलीयुत होयकै तव नव सप्त निबंध॥

—हिन्दी शब्द सागर, पृष्ठ ३३४६ से उद्धृत

पद (१६३)—गली=मार्ग। चारों=सभी। लपटीली=रपटीली, पैर फिसल जाते हैं। ठहराइ=ठहरता वा टिकता है। म्हाँरो=हमारा, मेरा। झीणों=सूक्ष्म, पतला। सुरत=स्मरण-शक्ति। झकोला=झोंका। सुरत खाइ=स्मृति, परमात्मा प्रियतम की पूर्ण अनुभूति में असमर्थ हो जाती है

चंचल हो उठती है। पैंड-पैंड = पग-पग पर । वटमार = डाकू, लुटेरे। दूर बस्यों म्हारी गाम = दूर के अपने गाँव में बसी हूँ। लाय लीन्ही = रख ली।

विशेष—साधना के इस कठिन मार्ग को कबीर साहब आदि ने 'सूषिम मारग' वा सूक्ष्म मार्ग कहा है और उसे 'अगम' ठहराते हुए उसका अनेक प्रकार से, वर्णन किया है। तुलना के लिए देखिए—

'जन कबीर का शिषर घर, वाट सलैली सैल।
पाव न टिकै पपीलका, लोगनि लादे बैल॥'—कबीर।

पद (१६४)—अविनासी = परमात्मा। जेताइ = जितने, जो कुछ भी। दीसे = दीख पड़ता है। धरण = धरणी, पृथ्वी। विच = मध्य में। तेताइ = वह सभी, उतना। उठि जासी = उठ जायगा, विनश्वर है। इण = इस। देही = शरीर। यो = यह। चहर की वाजी = चिड़ियों का खेल है। पड्या = पड़ने वा न होने पर। कहा = क्या। भयो = हुआ। भगवा पहर्‌याँ = गेरुआ पहनने से। जुगति = युक्ति, ईश्वर प्राप्ति के उपाय। आसी = आयगा। काटो = बन्द करो। जम की फाँसी = मृत्यु का भय, आवागमन।

पद (१६५)—का···प्रगट = पता नहीं कौन से, पुण्यों के प्रताप से। अवतार = जन्म, योनि। जात = बीतते वा नष्ट होते। वार = विलंव। जोर = प्रवल, जोरदार। अनंत = अंतरहित। ऊँड़ी = गहरी। परले पार = (संसार सागर के) उस ओर वा दूसरी ओर। चौसर = चौपड़ की वाजी। मँडी = बनी, विछी। चौहटै = चौरास्ते पर वा वाजार में। सुरत = परमात्मा की स्मृति। पासा = चौसर के पासे। सार = चौसर के गोटे। भावै = चाहे। (देखो—'चौपडी माँडी चौहटै अरध उरध वाजार। कहै कबीरा राम जन, खेलो सन्त विचार'—कबीर)। महंत = मठधारी वा मन्दिर के प्रधान पुजारी। जीवण...प्यार = जीवन काल केवल कुछ ही दिनों का है।

विशेष—प्रायः यही पद 'सूर सागर' ('रत्नाकर' संस्करण पृ० ४६) में इस प्रकार आया है :—

'नहिं अस जनम बारंबार।
पुरवलौ धौं पुन्य प्रगट्यो, लह्यो नर अवतार।

घटै पल-पल, बढ़ै छिन-छिन, जात लागि न वार।
धरनि पत्ता गिरि परे तैं, फिरि न लागै डार।
भय-उदधि जमलोक दरसै, नियर ही अँधियार।
सूर हरि कौ भजन करि करि, उतरि पल्ले पार ॥८८॥

'चौरस' एक प्रकार का खेल है जो बिसात अर्थात् एक चौकोर खाने कपड़े के चार रंगों की चार-चार गोटियों और तीन पासों, अर्थात् हाथी वा हड्डी के बने बिन्दीदार छः पहले टुकड़ों से दो मनुष्यों में खेला जाता है। 'ज्ञान-चोसर-हार'=ज्ञान भोग की साधना, सांसारिक व्यवहारों में रहते हु भी, परमात्मा की स्मृति के सहारे, करनी पड़ेगी। अतएव जो जि सावधानी वा मुक्ति के साथ निभाना चाहेगा उतनी ही सफलता मिलेगी। पद (१६६)—जीवणा=जीवनकाल। थोड़ा=बहुत अल्प है। कुण क्यों न। जंजार=जंजाल वा प्रपंचों में पड़ा प्राणी अथवा नर पशु। का क्या। लार=साथ, संबन्ध।

पद (१६७)—मनखा जनम=मनुष्य का जन्म। बहुर न आती=ब वार नहीं हुआ करता। मोसर=उपलब्ध, अवसर पर। ज्ञान'''गाती भगवान् का स्मरण करते हुए आत्म-ज्ञान पर विचार करो। सुंज=सूझ स्मरण हो आई। पिछाणी=पहचान, भेद की बात। ऐसा=लक्ष्य संकेत के अनुसार। पाती=पा गई। निगुरा=गुरु के उपदेशानुसार चलने वाला। नातर नहीं तो। औराँ सूँ=दूसरों से। साहब=स्वामी, प्रि परमात्मा।

पद (१६८)—बंदे=सेवक वा भक्त। बंदगी=ईश्वराराधन। चार खूबी=चंदरोज के लिए अपने गुण दूसरों पर प्रकट कर ले। दाड़िमदा अनार का। दा=का। ए=अय, अरे। मूल=मुख्य बात। भूल=भू में आकर। वे=अरे। हजूर=सामने, दर्बार में।

पद (१६९)—मनुआँ=मनुष्य। बहाय दीजे=दूर कर दीजिए। रं भीजे=प्रेम में फँसिए। (देखो—'मनाँ भजि राम नाम लीजे। साध सं सुमिरि-सुमिरि रसना रस पीजे'—दादू)।

पद (२००)—रटै=रटता वा वार-वार स्मरण किया करता है। कोटिक=करोड़ों। खत=ऋण के कागज़ पत्र, कुकर्म संम्वन्धी लेख। फटै=नष्ट हो जाते हैं, भुगतान हो जाते है। भरियो=भरा पड़ा है। नटै=इनकार करता है। पटै=एक भाव हो जाने के कारण मिल जाते हैं। ताहि=उसी (परमात्मा) के साथ।

पद (२०१)—सूरत=सुरत, वृत्ति, प्रभु की स्मृति। दीनानाथ=प्रियतम, परमात्मा। सुहागण=सोहागिन, सौभाग्यवती। वहार=सुअवसर, मानव जन्म। पावणा=पाहुने, अतिथि के समान। चुड़लो=सुहाग की चूड़ी। सार=उत्तम, श्रेष्ठ। नकवेसर=नाक का एक गहना, छोटी नथ। चलीनी=चलो री। परले=दूसरे। जो...जाय=जो आवागमन से मुक्त न हो। ठग्यो=ठगलिया (मैंने)। मोय=मुझे। लाख चौरासी=चौरासी लाख योनियों का। मौरचा=मोरचा बंदी, अवसर। छिन में...विगोय=शीघ्र वा अनायास तोड़ कर नष्ट कर डाले। झणकार=झङ्कार वा शब्दरव हो रहा है। पोल पर=दरवाजे पर। करै छै=कर रही है।

प्रसंग परिचय

पदों में प्रसंगवश आई हुई अंतर्कथाओं के संक्षिप्त विवरण

१—अजामिल या अजामेल ।

"अजामील अपराधी तारे"—पद (१३२)
"अजामेल से ऊधरे...जाणी हो" पद (१३८)

अजामिल जाति का ब्राह्मण था किन्तु स्वभाववश महा दुश्चरित्र और पातकी होगया था। उसने अपनी स्त्री का परित्याग कर, अन्य स्त्री के साथ संबंध किया और मद्यादि का सेवन करने लगा। एक दिन संयोगवश किसी दुष्ट ने उसके यहाँ हंसी में किन्हीं साधुओं को भेज दिया, जिनका उसे सत्कार करना पड़ा और 'जिन्होंने' प्रसन्न हो उसकी गर्भिणी रखेलिन के अपने पुत्र का नाम 'नारायण' रखने का उपदेश कर दिया। परंतु अजामिल की बुद्धि में कोई स्थायी परिवर्तन नहीं हुआ और वह निरंतर व्यसनों में ही लगा रहा। अंत में जब वह मृत्यु शय्या पर पड़ा तो उसे यमदूतों का भय सताने लगा और उसने विवश होकर, अपनी रक्षा के लिए, अपने पुत्र नारायण को पुकारा। इधर 'नारायण' शब्द आर्त्तनाद के रूप में, सुनते ही भक्तरक्षार्थ जगत में विचरने वाले, भगवत्पार्षद वहाँ आ पहुँचे और भगवन्नामोच्चारण का माहात्म्य बतला कर यमदूतों को वहाँ से मार भगाया। अजामिल, इस प्रकार, यमराज के यहाँ जाने से बच गया और उसे, अपने पुत्र के लिए 'नारायण' शब्द उच्चारण करने पर भी, भगवत्पद की प्राप्ति हो गई। (देखो—नाभादास 'भक्तमाल' पर प्रियादास की टीका)।

२—अहल्या ('गोतम घरणी', रिख पतनी')

"जिण चरण......गोतम घरणी"—पद (१)
"पत्थर की......बीच पड़ी"—पद (११६)
"रिख पतनी पर......कीन्हीं"—पद (१३५)

अहल्या वृद्धाश्व की पुत्री तथा महर्षि गौतम की परम रूपवती स्त्री थी। एक बार, गौतम ऋषि के गंगा-स्नान करने चले जाने पर, उन्हीं का रूप धारण करके, इन्द्र आश्रम में चला आया और उसने अहिल्या के साथ भोग-विलास किया। बाहर निकलते समय गौतम ऋषि से भेंट हो गई और योगबल द्वारा संपूर्ण वृत्तांत जान लेने पर, उन्होंने 'सहस्र भग' हो जाने के लिए इन्द्र को तथा पत्थर बन जाने के लिए अहल्याको शाप दिया। भगवान् रामचन्द्र ने, विश्वामित्र जी के कहने पर, कृपा करके अहल्या को अपने चरण-स्पर्श द्वारा मुक्त किया (देखो—रामायण बालकाण्ड)।

३—कबीर।

"दास कबीर......लाया"—पद (१३७)

कबीर साहब जाति के जुलाहे किन्तु एक पहुँचे हुए साधक थे। उनके देहावसान का समय सं० १५०५ (इस्वी सन् १४४८) के लगभग समझा जाता है। वे अधिकतर काशी में रहते थे। और अपनी आध्यात्मिक साधना के साथ-साथ शरीर निर्वाह के लिए कपड़ा बुनने का उद्यम भी किया करते थे। थान् तय्यार हो जाने पर उसे मंडी में ले जाते और उसे बेचकर पैसे लाते। एक दिन वे मंडी में थान लेकर खड़े थे कि किसी साधु ने आकर कहा—'मैं वस्त्रहीन हूँ, मुझे कपड़े दे दो" और जब वे उसके लिए थान का आधा हिस्सा फाड़कर देने लगे तो उसने समूचे थान के लिए आग्रह किया। कबीर साहब ने, अंत में, उसे पूरा थान दे दिया और "छूँछा हाथ घर क्या जाऊँ" सोच कर घर वालों के डर से कहीं राह में ही छिप रहे। इधर भूखे परिवार की दशा पर विचार कर भक्तवत्सल भगवान् स्वयं व्यापारी के वेष में उनके घर पहुँचे और बैल पर लाद कर सभी प्रकार की आवश्यक खाद्य सामग्री ले आये। दो चार दिनों के अनन्तर जब कबीर साहब को ढूँढ़ कर लोग उनके घर लाये तो भगवान् की कृपा का भेद खुला। "कबीरदास के घर बालद वा बैल लाने" की कथा इसी प्रकार प्रसिद्ध है। (देखो—नाभादा० के 'भक्तमाल' पर प्रियादास की टीका)।

४—करमा बाई।

"करमा वाई को......पावन्द"—पद (१३७)

करमा वाई जगन्नाथ पुरी में रहती थी और नित्य सवेरे श्रीजगन्नाथ जी को खिचड़ी का भोग लगाया करती थी। परंतु वह कभी किसी रीति वा आचार की ओर विशेष ध्यान न देती, सदा स्नान चौका आदि विना किये ही, उसे वनाकर अपने इष्टदेव को प्रेमपूर्वक अर्पण कर देती। हाँ, इसका विचार सदा रखती कि कहीं विलम्ब न हो जाय अथवा खिचड़ी अलोनी ही न रह जावे। कहते हैं भगवान् वालक रूप धारण कर उसके यहाँ स्वयं चले जाते और प्रतिदिन प्रातःकाल खिचड़ी खा आते। एक दिन किसी संत ने करमा की आचारविहीनता देखकर उसे सांप्रदायिक नियमानुसार खिचड़ी तय्यार करने का उपदेश दिया जिस कारण दूसरे दिन उसे भोग लगाने में वड़ा विलम्ब हो गया। इधर पंडों ने जव जगन्नाथ जी का पट खोला तो देखा कि उनके श्री मुख में जूठी खिचड़ी लगी हुई है और उनके चकित होने पर आकाशवाणी हुई कि "मैं नित्य करमा वाई की खिचड़ी खाकर सवेरे मुँह धो लेता था, किन्तु आज, किसी संत के आदेशनुसार, तय्यारी में विलम्ब हो जाने के कारण, मेरा मुँह शीघ्रता से जूठा ही रह गया"। पंडों ने जव यह वात उस संत से कही तो वे भगवान् की प्रेम-प्रियता पर विचार कर वहुत लज्जित हुये। भगवान् वास्तव में भाव के ही भूखे हैं। (देखो—नाभादास का 'भक्तमाल' और उस पर प्रियादास की टीका)।

५—गजराज ('गज' कुञ्जर')।

"बूड़तो गजराज......नींर"—पद (६३)।
"जल डूवत......उवारे"—पद (१३२)।
"आह गह्यो......जान"—पद (१३४)
"गज की......निवारणं"— (१३५)।
"गज की......सुनंद"—पद (१३७)।
"अरध नाम......मिटाणी हो"—पद (१३८)।
"डूव तिरयो हाथी......मिटाणी हो"—पद (१८६)।

कहते हैं कि, श्वेत द्वीप के किसी सर में स्नान करते समय, एक बार देवल मुनि का पाँव किसी हाहा नामक गन्धर्व ने पकड़ लिया जिससे रुष्ट होकर मुनि ने उसे ग्राह हो जाने का शाप दिया और इसी प्रकार, मौन होकर भजन करने वाले इन्द्रदवन राजा के सत्कारार्थ न उठने पर अप्रसन्न होकर, अगस्त जी ने उसे, अभिमान के कारण, हाथी हो जाने का शाप दिया। दोनों संयोगवश एक दूसरे के निकट ही रहा करते थे। एक दिन जब हाथी कुछ हथिनियों के साथ जल पी रहा था कि ग्राह ने उसके पैर पकड़ लिये और दोनों के बीच खींचा-तानी द्वारा ज़ोर की आजमायश होने लगी। अंत में जब हाथी निर्बल पड़ने लगा और हथिनियों की सहायता से भी कोई काम न निकला तो हार मानकर उसने भगवान् को पुकारा। उधर भगवान् ने ज्योंही गज की टेर सुनी त्योंही, बल्कि उसके मुँह से अपना नाम आधा ही सुन कर, वे बिना गरुड़ के नंगे पैर दौड़ पड़े और ग्राह को चक्र सुदर्शन द्वारा मार कर उसे संकट से मुक्त कर दिया। गज को, उसी समय, पशु योनि से मुक्ति हो गई और उसे भगवान् का परम पद प्राप्त हो गया। (देखो—श्रीमद्भागवत पुराण, द्वितीय स्कंध)।

६——गणिका।

"गणिका चढ़ी विमान"—पद (१३२)।

"सुकिरत......बखाणी"—पद (१३८)।

प्राचीन काल के किसी नगर में जीवन्ती नाम की एक वेश्या रहती थी जो लोक-परलोक के भय से रहित रह कर सदा व्यभिचार वृत्ति से अपना उदर पोषण किया करती थी। एक दिन संयोगवश उसने किसी तोता वाले से एक छोटा सुंदर तोता ख़रीद लिया और, निःसन्तान होने के कारण, उसे पुत्रवत् प्यार करने लगी। प्रति दिन प्रातःकाल उठ कर उसे 'राम-राम' पढ़ाया करती और उसके साथ-साथ स्वयं भी राम नाम उच्चारण करती। समयानुसार एक दिन नामोच्चारण करते-करते ही दोनों का एक साथ मृत्युकाल आगया। दोनों को ले जाने के लिए यमदूत भी पहुँच गये। परंतु दूसरी ओर से उसी क्षण भगवान् विष्णु के भी दूत आ गये और यमदूतों

को डाट-डपट कर दोनों को विमान पर बिठा वैकुंठ ले गये। यमदूत जब यमराज के यहाँ यह कथा कहने लगे तो उन्होंने भी भगवन्नामोच्चारण का माहात्म्य ही उनसे बतलाया। (देखो—'कल्याण' का 'भक्तांक')।

७—गोवर्धन लीला।

"जिण चरण......ग्रवं हरण"—पद (१)।

"इन्द्र कोप......प्रान आधार"—पद (६)।

ब्रजवासी इन्द्र की पूजा करते थे, किंतु श्रीकृष्ण ने उनसे, उसकी जगह गोवर्धन की पूजा करायी। इस पर इन्द्र क्रुद्ध होकर मूसलधार वृष्टि करने लगे और सारा ब्रज डूबने को आया। ब्रजवासियों की दीन दशा देख श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को अपनी उँगली पर छाते की भाँति उठा लिया और सब को डूबने से बचा कर इन्द्र का गर्व भी चूर किया। इन्द्र ने क्षमा माँगी। (देखो—श्रीमद्भागवत पुराण दशम स्कंध)।

८—द्रौपदी ('द्रोपता' द्रोपति सुता')।

"द्रोपता की......चीर"—पद (६३)।

"द्रोपति सुता......मारण"—पद (१३५)।

"पाँच पांडु......गरे"—पद (१६०)।

द्रौपदी द्रुपद राजा की पुत्री एवं प्रसिद्ध पाँचों पाँडवों धर्मपत्नी थीं। जब महाराज युधिष्ठिर, दुर्योधनादि के साथ जुआ खेलते समय, उन्हें बाजी में हार गये और दुर्योधन की आज्ञा से दुःशासन उन्हें भरी सभा में नग्न करने के निमित्त वस्त्र खींचने लगा उस समय उन्होंने अपनी लज्जा बचाने के उद्देश्य श्रीकृष्ण भगवान् को सहायतार्थ पुकारा। उस समय उनके शरीर पर केवल एक साड़ी भर थी, किंतु भगवान् की कृपा से, बलवान् दुःशासन द्वारा बार बार खींचें जाने पर भी, पर्दा न हट सका और वे चारों ओर से ढँकी ज्यों की त्यों खड़ी रह गईं। कहते हैं कि ज्यों-ज्यों चीर खींचा गया त्यों-त्यों बढ़ता ही गया और अंत में दुष्ट दुःशासन का सारा घमंड जाता रहा परंतु सब कुछ होते हुए तथा युद्ध में विजय पाने पर भी उनके

पति पांडवों तथा स्वयं उनको भी, नियति के अनुसार, हिमालय में गल कर शरीर त्याग करना पड़ा। (देखो—महाभारत के सभा पर्व व महा प्रस्थानिक पर्व)।

९—धन्ना भगत 'धना दास')।

"दास धना को……निपजायो"—पद (१३७)।

धन्ना भगत एक प्रसिद्ध संत थे जिनका आविर्भाव काल पंद्रहवीं ईस्वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में समझा जाता है। उनका व्यवसाय कृषि प्रधान था और वे एक किसान के रूप में ही जीवन यापन करते हुए भक्ति की साधना में तल्लीन रहते थे। एक समय की बात है, जब धन्ना जी के घर कुछ साधु लोग पधारे और उनके आदर सत्कार में उन्होंने बीज के लिए, घर में, रक्खे हुए गेहूँ तक को लगा दिया। परन्तु अपने घर वालों का उन्हें बड़ा भय लगा और इस कारण, यह दिखलाने के लिए कि खेत बोया गया है, उसमें केवल हल चलवा दिया। तो भी भक्तवत्सल भगवान् की कृपा से उनके खेत में बिना बीज के भी फ़सल खूब उपजी जिसे देख सभी आश्चर्य में पड़ गए और धन्ना जी की भक्ति की प्रशंसा करने लगे। (देखो—नाभा जी का 'भक्तमाल')।

१०—ध्रुव।

"जिण चरण……सरण"—पद (१)।

भक्त ध्रुव राजा उत्तानपाद के पुत्र थे और उनका जन्म रानी सुनीति के गर्भ से हुआ था। उनकी सौतेली माता का नाम सुरुचि था जिसके गर्भ से उत्तम का जन्म हुआ था। एक बार, राजा उत्तम को गोद में लिए बैठे थे, चार वर्ष के बालक ध्रुव ने भी वहीं बैठना चाहा। परंतु उनकी सौतेली माता ने यह कह कर उन्हें रोक दिया कि "पहले, भगवान् का तप कर, मेरे उदर से जन्म ले तो राजा के अंक में बैठने का अधिकारी होना" और इन शब्दों द्वारा अपमानित होकर वे अपनी माता के पास रोते हुए चले गए। माता ने उन्हें तप करने की आज्ञा दे दी और उन्होंने अपनी बाल्यावस्था में

ही घोर तपस्या कर भगवान् को प्रसन्न कर लिया। भगवान् ने उन्हें अपनी शरण में ले लिया और पिता का राज्य दिलाने के उपरांत अंत में उन्हें वह लोक प्रदान किया जिसे अटल ध्रुव लोक कहते हैं।
(देखो—श्रीमद्भागवत पुराण, चतुर्थ स्कंध)।

११—नामदेव

"नामदेवकी......छवंद"—पद (१३७)।

नामदेव जी दक्षिण भारतके एक प्रसिद्ध संत थे जिनका आविर्भाव काल १३ वीं ईस्वी शताब्दी का उत्तरार्द्ध एवं १४वीं का पूर्वार्द्ध समझा जाता है। इनके चमत्कारों से संबंध रखने वाली अनेक प्रकार की कथाएँ प्रसिद्ध हैं—जैसे, बाल्यकाल में ही अपने हाथों भगवान् को कटोरे से दूध पिला देना, मरी हुई गाय को जिला देना, अपनी भक्ति के बल से देवल का द्वार पिछवाड़े की ओर करा लेना, इत्यादि। इसी प्रकार कहा जाता है कि एक दिन सांझ को उनके घर अचानक आग लग गई और उनका बहुत कुछ जलकर स्वाहा हो गया। नामदेवजी पंचतत्वादि सबको भगवद्रूप में ही देखा करते थे, अतएव उन्होंने अग्नि की ज्वाला में, यह कह कर बचीखुची वस्तुएँ भी डाल दीं कि "हे नाथ, इसे भी अंगीकार कर लीजिए"। भगवान् इस अलौकिक भाव द्वारा अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनका सारा छप्पर रात भर में ही उन्होंने अपने हाथों से छा दिया। (देखो—नाभादास के 'भक्तमाल' पर प्रियादास की टीका)।

१२—पीपा जी

"पीपाको......पूर"—पद (२१)।

पीपाजी गागरौनगढ़ (राजपूताना) के राजा थे जिनका आविर्भावकाल १४वीं शताब्दी (ईस्वी) का उत्तरार्द्ध एवं १५वीं का पूर्वार्द्ध समझा जाता है। वे पहले देवी के भक्त थे किंतु एक बार साधु-सेवा में कुछ त्रुटि करने के कारण, स्वप्न में उन्हें भगवती द्वारा ही, हरिभक्ति का आदेश मिल गया और वे काशी जाकर स्वामी रामानंद जी के शिष्य हो गए। परंतु स्वामी जी ने उन्हें गागरौन रहकर भजन करने की आज्ञा दी और उनके आग्रह करने पर,

अन्य शिष्यों के साथ वहाँ जाने का भी वचन दिया। समयानुसार स्वामी रामानंद जी अपने शिष्यों सहित गागरौन पधारे और एक मास वहाँ रहकर द्वारका धाम जाने का विचार प्रकट किया। पीपाजी ने भी इस यात्रा में उनका साथ, अपनी रानी सीता देवी के साथ दिया और स्वामी जी के वहाँ से लौटने पर भी वे दोनों द्वारका में ही रहने लगे। एक दिन पीपाजी वहाँ रहते समय भगवद्दर्शन की प्रवल उत्कंठा में आकर, रानी के साथ समुद्र में कूद पड़े और, कहा जाता है कि, दिव्य द्वारावती में पहुँचकर उन्होंने स्वयं भगवान् का साक्षात् सात दिनों तक किया। फिर पीपाजी द्वारका से लौटकर अपनी स्त्री के साथ टोड़े गाँव में रहने लगे जहाँ एक दिन स्नान करने जाते समय उन्होंने वहुत स्वर्ण मुद्राएँ देखीं। परन्तु वे लोभ में नहीं पड़े तो भी चोर लोग रात को उसके पात्र को साँप की पिटारी समझ उसे उनके घर डाल आये। पीपाजी ने उस पूरे खजाने को भगवान् की देन मानकर उसे संतों की सेवा में लगा दिया। पीपाजी की इस प्रकार की वहुत सी अन्य कथाएँ भी हैं। (देखो—नाभादास के 'भक्तमाल' पर प्रियादास की टीका')।

१३—प्रह्लाद।

"जिण चरण......धरण"—(१)।
"भक्त कारण......न धीर"—(६३)।
"प्रह्लाद की......विदारण"—(१३५)।

भक्त प्रह्लाद दैत्यराज हिरण्यकशिपु के पुत्र, किन्तु परम भक्त थे। इनके पिता भक्ति के विरोधी थे और सदा हृदय से चाहते रहे कि मेरा पुत्र भी यही करे। प्रह्लाद का भक्ति में अटल विश्वास देखकर उन्होंने क्रुद्ध होकर इन्हें आग में जलाने, हाथी से कुचलवाने, पत्थर के टीलों से लुढ़कवाने तथा समुद्र में डुवाने तक के प्रयत्न किये, परन्तु इनकी कुछ भी हानि नहीं हुई। अंत में एक दिन, जव कि पिता और पुत्र में भक्ति का विषय लेकर वादविवाद चल रहा था, पिता ने पूछा "बता तेरा ईश्वर कहाँ है ?" और पुत्र के यह कहने पर कि "वह सर्वत्र है, यहाँ तक कि इस पत्थर के खंभे में भी है" उसने खंभे

पर पदाघात किया। उधर खंभा फट पड़ा और भगवान् नृसिंह रूप धारण कर निकल आये। उन्होंने दैत्यराज हिरण्यकशिपु को यकायक पकड़ लिया और घुटनों पर रखकर नखों से उसका उदर विदीर्ण कर डाला। प्रह्लाद का वचन पूरा हो गया और भक्त के लिए कष्ट उठाने वाले भगवान् को फिर शांत कर इन्होंने अंत में इन्द्र की पदवी पाई। (देखो—श्री मद्भागवत पुराण, सप्तम स्कंध)।

१४—वामनावतार।

"जिण चरण...सिरी धरण"—पद (१)।

"जग्य कियो...धरे"—पद (१६०)।

भक्त प्रह्लाद का पौत्र और विरोचन का पुत्र राजा बलि बड़ा पराक्रमी था। उसका बढ़ता ऐश्वर्य देखकर सभी देवता भयभीत हो चले थे, अतएव जब उसने इन्द्रासन लेने के उद्देश्य से अश्वमेध यज्ञ करना आरम्भ किया तो उसमें विघ्न उपस्थित कराने के विचार से, उन लोगों ने भगवान् को वामनावतार धारण करने पर उद्यत किया। विष्णु भगवान् यज्ञ की समाप्ति के अवसर पर बलि के यहाँ वामन रूप धारण कर ब्राह्मण बन कर गये और उनसे तीन पग धरती माँगी। बलि ने अपने गुरु शुक्राचार्य के मना करने पर भी स्वीकार कर लिया। परन्तु पृथ्वी नापते समय भगवान् ने वामन रूप से विराट रूप धारण कर लिया और दो पगों में ही स्वर्ग एवं पाताल दोनों लेकर तीसरे द्वारा बलि का शरीर तक नाप लिया। राजा बलि बाँधकर पाताल भेज दिये गए और भगवान् ने उनकी ड्योढ़ी पर सदा वामन रूप में दर्शन देना स्वीकार किया। (देखो—श्रीमद्भागवत पुराण, अष्टम स्कंध)।

१५—सदनाजी ('सदान')

"तारे नीच सदान"—पद (१३२)

भक्त सदन जाति के कसाई थे, किन्तु पूर्व संस्कार-वश उनमें हरि की भक्ति पूर्ण रूप से थी। कसाई कुल में प्रचलित मांस बेचने का व्यवसाय

करते समय भी वे, हिंसा से बचने के उद्देश्य से, दूसरों से लेकर ही मांस बेचा करते और यथाशक्ति हरि स्मरण किया करते। दैव योग से उनके वटखरों में एक शालिग्राम की शिला भी सम्मिलित थी जिसे पहचान कर एक साधू नियमानुसार पूजन करने के लिए ले गए। परन्तु साधु को भगवान् ने स्वप्न दिया कि "मैं सदना जी के वटखरों में रहना अधिक पसंद करता हूँ और मुझे वहाँ फिर पहुँचा दो।" कहा जाता है कि साधु ने वैसा ही किया और घटना से प्रभावित हो सदना जी ने अपना व्यवसायादि छोड़ कर जगन्नाथ जी का रास्ता लिया। सदना जी को अंत में मुक्ति मिली। (देखो—नाभादास के भक्तमाल पर प्रियादास की टीका)।

१६—राजा हरिश्चन्द्र ('हरिचंद')।

"सतवादी...नीर भरे"—पद (१६०)

हरिश्चन्द्र अयोध्या के राजा थे। इन्द्र ने इनसे द्वेष करके इनकी दानशीलता की परीक्षा के लिए विश्वामित्र को भेजा। विश्वामित्र ने इनका सारा राज्य इनसे स्वप्न में ही दान-स्वरूप ले लिया और फिर दक्षिणा के लिए इनके यहाँ पहुँचे। हरिश्चन्द्र ने 'तीन लोक से न्यारी' काशी में जाकर अपनी स्त्री को एक ब्राह्मण के हाथ सपुत्र बेच दिया और इस प्रकार आधी दक्षिणा चुका कर शेष के लिए स्वयं एक डोम के श्मशान पर नौकरी कर ली। फिर जब अपने पुत्र के मर जाने पर, इनकी स्त्री उसे जलाने के लिए श्मशान पर आयी तो, अपना कर्त्तव्य समझ कर, इन्होंने उससे भी श्मशान का कर माँगा और उनकी रानी को विवश होकर अपनी साड़ी का आधा टुकड़ा फाड़ कर देना पड़ा। हरिश्चन्द्र अपने सत्य-पालन एवं आत्मत्याग के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं। (देखो—भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक)।

परिशिष्ट (क)

(१) मीराँबाई के जीवन-काल के विषय में मतभेद।

मीराँबाई के जीवन-काल के संबंध में बहुत दिनों तक कई प्रकार की भिन्न-भिन्न धारणाएँ प्रचलित रही हैं। एक के अनुसार वे महाराणा कुंभा (मृ० सं० १५२५ वि०=सन् १४६८ ई०) की महारानी समझी जाती थीं। राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ कर्नल टाड ने, जनश्रुतियों के आधार पर, और विशेषकर उक्त महाराणा के शिवालय के पास 'मीराँबाई का मन्दिर' देख कर तथा साथ ही कदाचित् उनकी साहित्यिक योग्यता एवं मीराँबाई की काव्य-शक्ति में कुछ साम्य की कल्पना कर के भी, लिखा था कि "अपने पिता की गद्दी पर सन् १४९१ ई० बैठने वाले राणा कुंभ ने मारवाड़ के मेड़ता-कुल की कन्या मीराँबाई से विवाह किया जो अपने समय में सुन्दरता तथा सच्चरित्रता के लिए बहुत प्रसिद्ध थी और जिसके रचे हुए अनेक प्रशंसनीय गीत अभी तक सुरक्षित हैं[1]।" कर्नल टाड की इस सम्मति के प्रभाव में आकर बहुत से लेखकों; और विशेषकर गुजराती-साहित्य के इतिहासज्ञ विद्वान् गोवर्धनराम माधोराम त्रिपाठी[2] एवं कृष्णलाल मोहनलाल झावेरी, ने मीराँबाई का समय ईसा की १५ वीं शताब्दी में निर्धारित किया था। झावेरी महाशय ने तो इस विषय में मतभेद की गुंजाइश मानते हुए भी, उनके जन्मकाल के लिए सन् १४०३ ई० के आस पास का समय साधारणतया निश्चित ठहराया है और उनके ६७ वर्षों तक जीवित रहने की धारणा के अनुसार, उनके मरण का सन् १४७० ई० दे

मीराँबाई व राणा कुंभा

---

1. Col Todd: 'Annals of Rajasthan'
2. G. M. Tripathi:—Classical Poets of Gujrat p. 19

होना माना है[1]। इसी प्रकार हिन्दी साहित्य के इतिहासकार ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने भी अपने प्रसिद्ध 'शिवसिंह सरोज' में मीराँबाई का हाल, 'चित्तौर के प्राचीन प्रबंध को देख कर' लिखते समय कहा है कि—मीराँबाई का विवाह सम्वत् १४७० (अर्थात् सन् १४१३ ई०) के करीब राजा मोकलदेव के पुत्र राजा कुंभकर्णसीं चित्तौर नरेश के साथ हुआ था।[2] परन्तु, जैसा ऊपर कहा गया है, कर्नल टाड की सम्मति अधिकतर अनुमान अथवा जनश्रुतियों पर ही अवलंबित है। राणा कुंभ की विद्वत्ता के कारण उनकी स्त्री का भी विदुषी होना आवश्यक नहीं और न, मीराँबाई का मन्दिर' नाम पड़ने के कारण, कोई मन्दिर (जिसे बाद को मीराँबाई के उसमें नित्यशः पूजा कीर्त्तनादि करने के कारण भी, ऐसा नाम दिया जा सकता है) मीराँबाई द्वारा ही निर्मित कहा जा सकता है। वास्तव में यह 'महाराणा कुंभा का निर्माण कराया हुआ विष्णु के वराह अवतार का कुंभ स्वामी (कुंभ श्याम) नामक भव्य मंदिर है जिसको भ्रमवश 'मीराँबाई का मन्दिर' कहते हैं[3]'। फिर 'नरसी जी रो मायरो' नाम का ग्रन्थ मीराँबाई की ही रचना समझी जाती है और, उक्त झावेरी महाशय के ही अनुसार, नरसी मेहता का समय सन् १४१५ ई० से सन् १४८१ ई० तक निश्चित है। ऐसी दशा में 'मायरो' के अंतर्गत मीराँ की ओर से अपने समय के प्रमुख भक्त नरसी के लिए "कों नरसी सो भयो कौन विध" आदि प्रश्नों का उत्तर दिया जाना अस्वाभाविक सा जान पड़ता है। इसके सिवाय मीराँबाई का, मेवाड़ में आकर, 'मेड़तणी' कहा जाना उनके मेड़तिया वंश की होने का प्रमाण था और मेड़ता के राव दूदा जी द्वारा सर्वप्रथम

---

१. K. M. Jhaveri :—'Milestones in Gujrats' Literature' v. 8, p. 30.

२—ठाकुर शिवसिंह सेंगर; 'शिवसिंह सरोज' (सम् १९२६) पृष्ठ ४७५।

३—रा० ब० गौरीशङ्कर हीराचंद ओझा, 'राजपूताने का इतिहास' (पहला खंड) पृ० ३२२।

सं० १५१६ (सन् १४६२) में अधिकृत होने[१] के कारण, उक्त शाखा का उसके पहले प्रचलित होना असम्भव था।

इसी प्रकार, एक दूसरी धारणा के अनुसार, मीराँबाई प्रसिद्ध मैथिल कवि विद्यापति की समसामयिक समझी जाती रहीं। भारतीय भाषाओं के विशेषज्ञ

मीराँबाई व विद्यापति

प्रसिद्ध सर जार्ज ए० ग्रियर्सन ने लिखा था, "राजपूताने की सबसे प्रसिद्ध कवियित्रि मारवाड़ की राजकुमारी मीराँबाई है जो विद्यापति की समकालीन थीं[२]" और उन्होंने भी इनके विवाह का सन् १४१३ ई० दिया था। परन्तु विद्यापति का समय प्रायः सर्वसम्मति से विक्रम की पंद्रहवीं शताब्दी माना जाता है, अतएव उनका जीवन-काल लक्ष्मण. सम्वत् २४१ (सन् १३६० ई०) से लेकर लक्ष्मण संवत् ३३१ (सन् १४५० ई०) तक युक्तिसंगत[३] समझ पड़ने पर भी, मीराँवाई का उनका समसामयिक होना प्रमाणित नहीं होता।

इनके सिवाय "कोई-कोई मीराँ को राठौर सरदार जयमल की बेटी बतलाते हैं और उनका जन्म-संवत् १६७५ (सन् १६१८ ई०) मानते हैं[४]।"

मीराँबाई व जयमल

परन्तु, इस धारणा के अनुसार, मीराँवाई के विषय में प्रसिद्ध प्रायः कोई भी बात मेल खाती हुई नहीं दीखती वास्तव में राव जयमल जी, मीराँबाई के पिता न होकर, उनके चचेरे भाई थे और दोनों ने बचपन में अपने पितामह प्रसिद्ध भगवद्भक्त राव दूदा(सन् १४४०—१५१५ ई०) के यहाँ एक ही साथ रह कर, अपनी प्राथमिक

१—सा० विश्वेश्वर नाथ रेऊ; 'जोधपुर के संस्थापक राव जोधा जी'—('सुधा', वर्ष ६, खंड १, पृष्ठ १७२)।

२ Dr. G. A. Grierson :—Modern Vernacular Literature.

३—डा० बाबूराम सक्सेना : 'कीर्तिलता'-भूमिका पृष्ठ ८-६।

४—प्रो० रामलोचन शर्मा; 'मीराँबाई' (राजस्थान, वर्ष १ संख्या १, पृष्ठ २७)।

शिक्षा पाई थी तथा दोनों को भगवद्भक्ति की ओर बढ़ती हुई रुझान में प्रायः एक ही साथ दृढ़ता प्राप्त हुई थी। बा० कार्तिक प्रसाद का "मारवाड़-मेरता निवासी राठौर सरदार जैयमल की परम रूपवती कन्या मीराँबाई ने १४७५ संवत् में जन्म ग्रहण किया था।"-और उदयपुर के राणा कुम्भा जी से उनका विवाह हुआ था।" लिखना अथवा अकबर बादशाह का भेष बदल कर तानसेन के साथ मीराँबाई के दर्शन को जाना भी बतलाना[1] तो सब से अधिक असंगत व भ्रमोत्पादक है। जान पड़ता है कि लेखक ने सभी जनश्रुतियों को, बिना सोचे समझे, एकत्र कर लिया है।

दूसरी ओर जोधपुर के स्वर्गीय मुं० देवी प्रसाद जी मुंसिफ, तथा अजमेर के बा० हरिविलास जी सारदा और म० पं० गौरीशङ्कर हीराचंद ओझा ने इधर, मौलिक प्रमाणों के आधार पर निश्चय किया है कि मीराँबाई राठौर-नरेश राव दूदा जी की पोती व रत्नसिंह की इकलौती पुत्री थीं।

अंतिम निश्चय

इनका जन्म संवत् १५५५ वि० (सन् १४९८ ई०) व सं० १५६१ वि० (सन् १५०४ ई०) के बीच किसी समय हुआ था। इनका विवाह सं० १५७३ वि० (सन् १५१६ ई०) में मेवाड़ के महाराणा साँगा के ज्येष्ठ राजकुमार भोजराज के साथ सम्पन्न हुआ और इनकी मृत्यु सं० १६०३ वि० (सन् १५४६ ई०) के लगभग हुई थी। इन निश्चयों के विषय में अभी तक इधर के किसी भी विद्वान् ने कोई वैसी आपत्ति नहीं की है। केवल मिश्रबंधुओं ने, न जाने किस प्रमाण का आश्रय लेकर, अपने 'मिश्रबंधु विनोद' (भाग १) में सं० १५७३ के उक्त समय को मीराँबाई का जन्म-काल मान लिया है[2] और पं० रामचन्द्र शुक्ल ने भी अपने

१—बा० कार्तिक प्रसाद खत्री; 'मीराँबाई का जीवनचरित्र पृ० १, ३ व १२।'

१—मिश्रबन्धु : 'मिश्रबन्धु विनोद' प्रथम भाग (सं० १९८३) पृष्ठ २६२।

'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में उसी को दुहरा दिया है[१]। संभव है इन विद्वानों ने भ्रमवश उक्त विवाह-संवत् को जन्म संवत् समझ लिया हो। इसी प्रकार 'वेलवेडियर प्रेस' द्वारा प्रकाशित 'मीराँबाई की शब्दावली' के संपादक ने उक्त मृत्यु काल को 'एक भाट की जुबानी' स्थिर किया हुआ बतलाते हुए अकबर बादशाह व तानसेन की मीराँबाई के साथ भेंट तथा गोस्वामी तुलसीदास के साथ उनके पत्र-व्यवहार की घटनाओं में विश्वास करके लिखा है कि हमको भारतेन्दु श्री हरिचन्द्र जी स्वर्गवासी का अनुमान कि मीराँबाई ने संवत् १६२० और १६३० वि० (अर्थात् सन् १५६३ और १५७३ ई०) के बीच शरीर त्याग किया ठीक जान पड़ता है जैसा कि उन्होंने उदयपुर दरबार की सम्मति से निर्णय किया था और 'कवि वचन सुधा' की एक प्रति में छापा था[२]।" परंतु उक्त भेंट एवं पत्र व्यवहार की घटनाएँ स्वयं संदेहास्पद हैं (जैसा आगे दीख पड़ेगा) और राजपूताने की उक्त घटनाओं को विद्वानों ने अपने यहाँ की सामग्रियों के बल पर ही लिखा है।

(२) मीराँबाई और गोस्वामी तुलसीदास का पत्र-व्यवहार।

प्रस्ताव का रूप

कहा जाता है कि, मेवाड़ में रहते समय, मीराँबाई को जब उनके स्वजन अनेक प्रकार के कष्ट पहुँचा कर उन्हें अप्रच्छन्न रूप से कीर्त्तनादि करने से रोकने लगे तो, उद्विग्न होकर, उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास के पास निम्न-लिखित पद, पत्र के रूप में भेज कर उनसे उचित परामर्श माँगा था :—

"स्वस्ति श्री तुलसी कुल भूषण, दूषण-हरण गोसाईं।
बारहिं बार प्रणाम करहुँ, अब हरहु सोक समुदाई।

१—पं० रामचन्द्र शुक्ल : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (सं० १९८६) पृ० १८२।

२—'मीराँबाई की शब्दावली' (वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग) जीवन चरित्र पृ० १।

घर के स्वजन हमारे जेते, सवन्ह उपाधि बढ़ाई।
साधुसंग अरु भजन करत मोहि, देत कलेस महाई।
मेरे मात पिता के सम हौ, हरि भक्तन सुखदाई।
हमको कहा उचित करिवो है, सो लिखिये समुदाई।"

इस पद का दूसरा पाठ जो बेलवेडियर प्रेस की 'शब्दावली' की भूमिका में उद्धृत है इस प्रकार है :—

"श्री तुलसी सुख निधान दुख हरन गोसाईं।
वारहि वार प्रणाम करूँ, अव हरो सोक समुदाईं।
घर के स्वजन हमारे जेते, सवन उपाधि वढ़ाईं।
साधु-संग अरु भजन करत, मोहि देत कलेस महाईं।
वालपने तें मीरा कीन्हीं, गिरधरलाल मिताईं।
सो तो अव छूटत नहिं क्योंहूँ, लगी लगन वरियाईं।
मेरे मात पिता के समहौ, हरिभक्तन सुखदाईं।
हमको कहा उचित करिवो है, सो लिखियो समुँझाईं।

इसके उत्तर में, प्रसिद्ध है कि, गोस्वामी जी ने निम्न-लिखित पद, पत्र के ही रूप में भेज कर, मीराँबाई को गृह त्याग का उपदेश दिया था :—

"जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटि वैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रहलाद, विभीषण बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत व्रज वनिता, भये सब मंगलकारी॥
नातो नेह राम सों मनियत, सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं॥
अंजन कहा आँख जो फूटैं, वहुतक कहौ कहाँ लौं॥
तुलसी सो सव भाँति परम हित, पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासों वढ़े सनेह रामपद, एतो मतो हमारो॥"

१—'मीराँबाई की शब्दावली' (बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग) जीवन चरित्र

किसी-किसी का कहना है कि उक्त पद के साथ-साथ एक निम्नलिखित सवैये को भी गोस्वामी जी ने मीराँबाई के यहाँ भेजा था :—

"सो जननी सो पिता सोइ भ्रात, सो भामिन सो सुत सो हित मेरो।
सोइ सगो सो सखा सोइ सेवक, सो गुरु सो सुर साहिब चेरो॥
सो तुलसी प्रिय प्रान समान, कहाँ लौं वताइ कहीं वहुतेरो।
जो तजि गेह को देह को नेह, सनेह सो राम को होय सबेरो॥

कहना न होगा कि उक्त तृतीय पद और सवैया स्वामीजी की ही रचनाएँ हैं और, केवल थोड़े से हेर फेर के साथ, उनकी कुल रचनाओं के संग्रह "तुलसी-ग्रंथावली' (दूसरा खंड)—काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा (सं० १६८० में) प्रकाशित—की क्रमशः 'विनय पत्रिका' पृ० ५५१ और 'कवितावली' पृ० २११ में संगृहीत हैं। परन्तु पहले पद का—प्रथम वा द्वितीय—कोई भी पाठ मीराँबाई के किसी संग्रह में नहीं मिलता। मीराँबाई की जीवनियों अथवा उनकी रचनाओं के संग्रहों की भूमिकाओं में ही अब तक उनके उद्धरण देखने को मिले हैं। तो भी वहुत लोगों को उक्त पत्र-व्यवहार की प्रामाणिकता में किसी प्रकार का संदेह होता नहीं दीखता। वे इस वात की पुष्टि के लिये कुछ दिनों से 'मूल गोसाइँ चरित' का भी हवाला देने लगे हैं। जिसके निम्न-लिखित दोहों द्वारा इतना स्पष्ट हो जाता है कि उक्त दोनों भक्तों के वीच कोई पत्र-व्यवहार अवश्य हुआ था और वह कदाचित् एक निश्चित समय अर्थात् संवत् १६१६ वि० (सन् १५५६ ई०) में ही हुआ था :—

"सोरह सै सोरह लगै, कामद गिरि ढिग वास।
सुचि एकांत प्रदेस महँ, आये सूर सुदास ॥२६॥

... ...

लै पाति गये जव सूर-कवी। उर में पधराय के श्याम छवी।
तव आयो मेवाड़ ते, विप्रनाम सुखपाल।
मीराँवाइं पत्रिका, लायो प्रेम प्रवाल ॥३१॥

पढ़ि पाती, उत्तर लिखे, गीत कवित्त बनाय।
सब तजि हरि भजबो भलो, कहि दिय विप्र पठाय ॥३२॥"[1]

कुछ लोग तो इस विषय में यहाँ तक लिखते हैं कि मीराँबाई गोस्वामी तुलसीदास की सेवा में परामर्श के लिए स्वयं भी उपस्थित हुई थी।[2] अस्तु।

परीक्षा-निश्चित काल

उक्त घटना की वास्तविकता पर विचार करते समय, सबसे पहले हमें यह देखना है कि उसका घटित होना कब सम्भव हो सकता था। मीराँबाई ने उक्त पत्र-व्यवहार, उद्धृत पद के अनुसार, उसी समय किया था जब उनके सभी 'स्वजन' उनके 'साधु सङ्ग' एवं 'भजन' करते समय, उन्हें अनेक प्रकार के कष्ट, उपाधि बढ़ा-चढ़ा कर, पहुँचा रहे थे और ऐसा अवसर उन्हें सम्भवतः तभी प्राप्त हुआ था जब वे, लोक लज्जा व कुल की मर्यादा की अवहेलना कर, महलों से बाहर निकल-निकल कर खुले आम कीर्त्तन करने लगी थीं जिससे मेवाड़ के प्रतिष्ठित राज वंश को अपने कलंकित होने का भय हुआ था। मीराँबाई की उपलब्ध रचनाओं द्वारा यह स्पष्ट नहीं होता कि उनकी उक्त चेष्टाएँ किस काल में आरम्भ हुई थीं, किन्तु ऐतिहासिक प्रसङ्गों के आधार पर यह अनुमान करना असङ्गत न होगा कि ऐसा करने में वे तभी प्रवृत्त हुई होंगी जब उनके पति, पिता एवं श्वसुर का देहान्त हो गया और ये, अपने पारिवारिक बंधनों को 'तागा' के समान 'टूटा' हुआ जान कर, परम विषाद व विरक्ति के कारण, प्रचलित सामाजिक नियमों की ओर से भी उदासीन हो चलीं। उनके श्वसुर की मृत्यु सन् १५२८ ई० में हुई थी और तब से उनके मरण संवत् १६०३ अर्थात् सन् १५४६ तक उनके देवर महाराणा रत्नसिंह,

---

१—श्री वेणीमाधव दास : 'मूल गोसाईं चरित' (गीता प्रेस, गोरखपुर) दो० १२।

२—बा० शिवनन्दन सहाय : 'श्री गोस्वामी तुलसीदास जी' पृ० १११ (टिप्पणी)।

विक्रमाजीत सिंह, वनवीर और उदयसिंह, एक के अनन्तर दूसरे, मेवाड़ की गद्दी पर आसीन होते आये थे। इन महाराणाओं में भी वनवीर, वास्तव में, महाराणा रायमल के राजकुमार पृथ्वीराज का अनौरस पुत्र था और उसे उक्त गद्दी पर बैठने का अवसर कदाचित् दो एक साल से अधिक का नहीं मिल सका था। इसके सिवाय यह भी अनुमान किया जाता है कि उसके पहले अर्थात् महाराणा विक्रमाजीत सिंह के राजत्वकाल में ही, उनके शासन-सम्बन्धी कुव्यवस्था से उत्साहित होकर, जब गुजरात के बादशाह बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया था तो मीराँबाई के चचा राव वीरमदेव जी ने उन्हें मेड़ता बुलवा लिया था। मीराँबाई को सब से अधिक कष्ट विक्रमाजीत सिंह के ही समय में मिला था और इन्हें उन्हीं के एक दीवान "कौम महाजन बीजावर्गी ने ज़हर दिया था" (मुं० देवी प्रसाद मुंसिफ)। अतएव उक्त पत्र-व्यवहार की घटना का महाराणा विक्रमाजीतसिंह के मारे जाने के समय (सन् १५३६ ई०) के पहले ही होना अधिक संगत जान पड़ता है जो मूल 'गोसाईं-चरित्त' में दिए गये उक्त सं० १६१६ अर्थात् सन् १५५९ ई० से २३ वर्ष पहले स्वयं पड़ जाता है। इसके अतिरिक्त, मीराँबाई का मरना सं० १६०३ अर्थात् सन् १५४६ ई० में निश्चित है तो उक्त घटना का उस समय होना और भी असम्भव है।

कठिनाई

अब, यदि मीराँबाई की मृत्यु-काल को ही आगे बढ़ाकर, स्व० भारतेन्दु के अनुमानानुसार उसे सन् १५६३ ई० के बीच ला दिया जाय तो, उक्त घटना की संगति बैठ जाने पर भी, उस कारण के लिए उपयुक्त वातावरण का ढूँढ निकालना कठिन हो जाता है। उक्त समय के बहुत पहले अर्थात् सन् १५४० ई० लगभग से उसके बहुत पीछे अर्थात् सन् १५७२ ई० तक महाराणा उदयसिंह राजा थे जो एक साधारण कोटि के शासक एवं बहुत कुछ विलासप्रिय होते हुए भी, अपनी दूरदर्शिता के कारण, महाराणा विक्रमाजीत से कहीं अच्छे

रहे[1]। उनके समय में मीराँबाई के प्रति किये गए किसी प्रकार के कुव्यवहार के उल्लेख कहीं नहीं पाये जाते और उक्त समय अर्थात् सन् १५५६ ई० की तात्कालिक ऐतिहासिक घटनाओं में भी महाराणा के कुंवर प्रतापसिंह के पुत्र अमरसिंह का जन्म होने[2] तथा प्रसिद्ध उदयसागर तालाब का निर्माण आरंभ किये जाने[3] जैसी उत्साहवर्धक बातों की ही चर्चा हमें सुन पड़ती है।

आक्षेप

इसी प्रकार इधर, गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-काल को भी दृष्टि में रखने पर, उक्त घटना को वास्तविक मानने में कठिनाई दीखती है ! गोस्वामी जी के जन्म-काल के विषय में अभी तक मुख्यतः तीन प्रकार के मत प्रचलित रहते आये हैं। डा० शिवसिंह सेंगर ने उनका सं० १५८३ वि० (१५२६ ई०) के लगभग उत्पन्न होना बतलाया था, किन्तु डा० ग्रियर्सन आदि अनेक विद्वानों के मत में, सं० १५८६ वि० (१५३२ ई०) का समय, उनकी उत्पत्ति के लिए अधिक ठीक समझा जाना चाहिए। एक तीसरा मत जो गोस्वामी जी की शिष्य परम्परा व 'मूल गोसाईं चरित' से संबंध रखता है इस काल को बहुत पहले अर्थात् सं० १५५४ वि० (सन् १४९७ ई०) में ले जाकर निश्चित करता है। अतएव, प्रथम मत के अनुसर, महाराणा विक्रमाजीत के मारे जाने के समय (अर्थात् सन् १५३६ ई०) तक, गोस्वामी जी केवल १० वर्ष के, दूसरे के अनुसार ४ ही वर्ष के व, तीसरे के अनुसार, कम से कम ३९ वर्ष के रहते हैं और 'मूलगोसाईं चरित' में दिये गए सं० १६१६ वि० (सन् १५५९ ई०) तक, इसी प्रकार, उनकी अवस्था क्रमशः ३३, २७ वा ६२ वर्ष की ठहरती है। उक्त पत्र व्यवहार की घटना को वास्तविक समझने वाले को, उक्त विवरण के अनुसार, गोस्वामीजी के जन्म-काल को सं० १५५४ वि० में

१—म० म० गौरीशंकर हीराचंद ओझा : राजपूताने का इतिहास (दूसरी जिल्द), पृ० ७३४।

२—वही, पृ० ७२०।

३—वही, पृ० ७३३।

ही मानना सबसे अधिक सहायता प्रदान करता है। तो भी, जैसा ऊपर कह आये हैं, उसका सं० १६१६ से अधिक, १५३६ ई० वा सं० १५६३ वि० से पहले होना ही अधिक युक्ति संगत समझ पड़ता है और उस समय तक गोस्वामी जी की अवस्था, मीराँबाई से उनके कुछ बड़े होने पर भी केवल ३६ वर्ष की ठहरती है जो, उनकी प्रसिद्धि आदि की दृष्टि से पर्याप्त नहीं जँचती है।

गोस्वामी तुलसीदास जी की प्रसिद्धि कब हुई इसका ठीक-ठीक व निश्चित उत्तर देना कठिन जान पड़ता है। 'मूल गोसाईं चरित' के ही अनुसार सं० १६१६ तक उन्होंने किसी ग्रंथ की रचना नहीं की थी। उस समय से उन्होंने कुछ-कुछ पदों का

वही

लिखना आरम्भ किया था जो सं० १६२८ में 'रामगीतावली' व 'कृष्ण गीतावली' के रूपों में, पहले पहल संगृहीत हुए थे। तो भी उनके यहाँ प्रसिद्ध हितहरिवंश जी ने सं० १५०६ में अपने किसी शिष्य द्वारा अपनी 'यमुनाष्टक' 'राधा सुधानिधि', व 'राधिका तन्त्र' नाम की रचनायें, एक पत्र के साथ, भेंट-स्वरूप भेज अपनी सद्गति के लिए उनसे आशीर्वाद माँगा था। इस घटना के उल्लेख के साथ उसमें यह भी संकेत है कि उक्त हित जी का शरीरान्त आगामी 'महारास रजनी' अर्थात् कार्त्तिकी पूर्णिमा को होने वाला था। अन्य प्रमाणों के आधार पर अनुमान किया जाता है कि वे सं० १६[illegible] भी आगे तक जीवित रहे और उनकी रचनाओं का निर्माण सं० १६४[illegible] होता रहा। इसी प्रकार उक्त ग्रंथ में ही दिये गए इस विवरण को कि १६१६ में गोस्वामी जी के पास गोकुलनाथ जी ने सूरदास जी को 'कृष्ण' में डुबो कर भेजा था, सूरदास जी ने उन्हें अपना 'सूरसागर' दिखला कर उनसे दो पद गा सुनाये थे और उनके 'पद पंकजों' में 'सिर नाय' कर उनसे अपनी कीर्त्ति के 'दिगंत' तक फैलने के लिए आशीर्वाद माँगा था तथा उनके [illegible] में सात दिनों तक रह कर उनके हाथ से गोकुलनाथ जी को एक [illegible] ले गये थे—सहसा प्रामाणिक मान लेना उचित नहीं जान पड़ता, [illegible] उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर, प्रायः सर्व सम्मति से, सूरदास

उस समय तक लगभग ७६ वर्ष के वृद्ध हो चुके थे और इसी कारण उनका ऐसी अवस्था में परिचय-पत्र लेकर वा पत्रवाहक वनकर लम्बी यात्रा करना सुसंगत नहीं कहा जा सकता। वास्तव में सं० १६१६ के प्रथम गोस्वामी जी के इतना प्रसिद्ध हो जाने के लिए कोई विवाद-रहित प्रमाण नहीं मिलता कि हम सुदूर मेवाड़ की मीराँबाई का उनके साथ पत्र-व्यवहार करना पूर्ण सम्भव मान सकें। उनकी ऐसी प्रसिद्ध 'मानस' की रचना (सं० १६३१ वि० अथवा सन् १५७४ ई०) के अनन्तर ही हुई होगी।

अंतिम निर्णय

'मूल गोसाईं चरित' के उक्त 'सव तजि हरि भजवो भलो' में कुछ लोग उक्त 'विनय' के पद 'जाके प्रिय न राम वैदेही' आदि का 'सार' आ जाना भी देखते हैं। किन्तु ऐसा तो, पद की रचना के अनंतर, दोहे के लिखे जाने पर कभी संभव हो सकता है। क्या यह नहीं कहा जा सकता कि उक्त पत्र-व्यवहार की घटना को प्रामाणिक रूप में प्रचलित देख उक्त चरित के रचयिता ने और वातों की ही भाँति, इसे भी ज्यों का त्यों सम्मिलित कर लिया हो? 'विनय पत्रिका' के सभी पद गोस्वामी जी ने एक प्रकार से, पत्र के रूप में ही लिखे थे और गौणरूप से उनके द्वारा सर्वसाधारण के प्रति उनका सदुपदेश-दान करने का भी भाव था अतएव, अन्य पुष्ट प्रमाणों के अभाव में केवल इतने परही भरोसा कर लेना ठीक नहीं। स्वयं 'मूल गोसाईं चरित' की प्रामाणिकता अपने अनेक अन्य उल्लेखों (जैसे गोस्वामीजी के जन्म-स्थान, जाति, वंशादि के विवरणों) के कारण अभी तक विचाराधीन हैं और उसमें दिये गए कुछ संवत् भ्रमात्मक भी सिद्ध हो चुके हैं। इसलिए वह अभी कोई प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं समझा जा सकता। अभी तक उससे अधिक प्रामाणिक समझे जाने वाले नाभादास कृत 'भक्तमाल' में वा उस पर की गई प्रियादास की प्रसिद्ध टीका में भी इस घटना का कोई उल्लेख नहीं दीखता (देखो परिशिष्ट—ख)। इसके सिवाय मीराँबाई के उक्त पत्र के भी दो पाठ मिलते हैं और उनकी भाषा भी निःसन्देह रूप से, मीराँबाई की नहीं कही जा सकती। यह सच है कि मीराँबाई के जीवनवृत्त से सम्बन्ध रखने वाली सभी तिथियों को हम सर्वग्राह्य नहीं मान

सकते किन्तु गोस्वामी तुलसीदास जी के सम्बन्ध में भी ठीक ऐसी ही बात नहीं कही जा सकती है। उक्त पत्र-व्यवहार की घटना का वास्तविक आधार अभी तक एक पुरानी जनश्रुति बनती चली जा रही है। संभव है, इसे किसी दिन, किसी सुधरे रूप में अपना लिया जाय। अन्यथा इसकी भी किसी दिन वही दशा होगी, जो कई प्रचलित पदों द्वारा प्रमाणित होने पर भी, उन भ्रमपूर्ण बातों की हुई थी जिनके अनुसार मीराँबाई महाराणा कुम्भा की स्त्री समझी जाती रहीं और उनके मुख से अपने पति के प्रति अनेक ऊटपटांग कटु वचन कहला कर उनके पवित्र चरित्र पर पतिद्रोही होने का धब्बा लगाया जाता रहा।

(३) मीराँबाई के मत वा संप्रदाय के विषय में मतभेद

मीराँबाई, भगवान् श्रीकृष्ण की परम उपासिका होने के कारण, वैष्णव धर्मावलंबिनी थीं, इसमें कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। किन्तु इस विषय में अभी तक बहुत कुछ मतभेद रहता आया है कि वे अमुक आचार्य की शिष्या अथवा अमुक प्रचलित सम्प्रदाय विशेष की अनुगामिनी थीं। कुछ लोगों की धारणा है कि उन्होंने महाप्रभु वल्लभाचार्य (सं० १५३६-१५८७ वि० अथवा १४७९-१५३० ई०) द्वारा प्रवर्तित 'पुष्टि मार्ग' को अपनाया था और 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार, उनका पुरोहित रामदास जी श्री वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित हो गया था। परन्तु, उक्त 'वार्ता' के ही पढ़ने पर यह भी पता चल जाता है कि मीराँबाई ने रामदास जी द्वारा, ठाकुर जी के सामने, श्रीवल्लभाचार्य निर्मित एक पद गाए जाने पर अपनी उदासीनता प्रकट की थी और इस बात से अपमानित हो उक्त पुरोहित के यहाँ से चले जाने पर, उसे मनाने का प्रयत्न भी किया था। इसके सिवाय उक्त 'वार्ता' में यह भी लिखा मिलता है कि, ऊपर उल्लिखित गोविंद दुबे नामक 'निज सेवक' के मीराँबाई के घर ठहर जाने पर बुरा मान कर, उसे श्री आचार्य जी के पुत्र गुसाईं विट्ठलनाथ जी ने, लिख कर बुला लिया था और

इसी प्रकार कृष्णदास ने मीराँबाई द्वारा श्रीनाथ जी के लिये दी हुई कई मुहरें यह कह कर लौटा दी थीं कि "तू श्री आचार्य महाप्रभून की नाहीं होत ताते तेरी भेंट हाथ से छूवेगी नाहीं"। अतएव, यदि ऊपर की बातें ऐतिहासिक मान ली जायँ तो मीराँबाई एवं वल्लभ सम्प्रदाय के बीच किसी अच्छे सम्बन्ध का होना सिद्ध नहीं होता, बल्कि अनुमान होता है कि उक्त धारणा का कारण कहीं मेवाड़ में पीछे से होने वाली वल्लभ सम्प्रदाय की सफलता मात्र ही न रही हो। जो हो, इसके अतिरिक्त, कदाचित्, मीराँबाई एवं 'पुष्टि मार्ग' की साधना-पद्धतियों में बहुत कुछ असमानता देख कर, कुछ अन्य लोगों ने वृन्दावन-निवासी श्रीजीव गोस्वामी को ही मीराँबाई का दीक्षागुरु होना बतलाया है। श्री वियोगी हरि का कहना है कि, मीराँबाई के "सिद्ध गुरु जीव गोस्वामी ही थे" और वे, इसी कारण, "श्रीचैतन्य सम्प्रदाय की ही 'वैष्णवी' थीं। इस कथन के प्रमाण में उन्होंने श्रीचैतन्य महाप्रभु पर बनाये गए निम्न-लिखित[1] पद को भी उद्धृत किया है। पता चलता है कि श्रीजीव गोस्वामी जी श्रीरूप वा सनातन के अनुज श्री अनूप जी के पुत्र थे और श्री चैतन्य महाप्रभु के तिरोभावकाल अर्थात् सं० १५९० वि० (सन् १५३३ ई०) के कदाचित् कुछ पूर्व से ही वे अपने उक्त दोनों चचा के साथ

१—"अब तौ हरी नाम लौ लागी।
सब जग को यह माखन चोरा, नाम धर्‌यो बैरागी॥
कित छोड़ी वह मोहन मुरली, कहँ छोड़ी सब गोपी।
मूंड़ मुड़ाइ डोरि कटि बांधी, माथे मोहन टोपी॥
मात जसोमति माखन कारन, बांधे जाको पांव।
स्याम किशोर भयो नव गोरा, चैतन्य जाको नाव॥
पीताम्बर को भाव दिखावै, कटि कोपीन कसै।
गौर कृष्ण (१) की दासी मीरा, रसना कृष्ण बसै॥"
—मीराँबाई, सहजोबाई दयाबाई का पद्य संग्रह, पृ० ६।
(१) दासभक्त भी पाठ है। (दे० 'संगीत राग कल्पद्रुम' भा० २, पृ०३७)।

वृन्दावन में रहा करते थे। अतएव मीराँबाई एवं श्रीजीव गोस्वामी के उक्त मिलन के सम्बन्ध में सन्देह करने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती, किन्तु "गोस्वामी जी से मीराँबाई ने दीक्षा ली थी" सिद्ध करने के विषय में कुछ विशेष वा स्वतन्त्र प्रमाणों की भी अपेक्षा होगी। मीराँबाई की अन्य उपलब्ध रचनाओं में इस बात की ओर कोई भी स्पष्ट संकेत नहीं मिलता और न प्राचीन प्रामाणिक प्रतियों का मिलान कर लेने से पहले, इस प्रकार के किसी 'पद' को सहसा मीराँ रचित मान लेना उचित ही दीख पड़ता है।

धार्मिक वातावरण मीराँबाई के कतिपय पदों (पद १२, ३२, ७२, १५१, १५२, १६२, १६३, १६७, आदि) से पता चलता है कि उनके विचारों पर संतमत का भी पूरा प्रभाव पड़ा था और कुछ पदों (पद २४, २६ व १६६) द्वारा तो उन्होंने सन्त रैदासजी को अपने गुरु के रूप में स्वीकार तक किया है। परन्तु सन्त रैदासजी का जीवनकाल अभी तक निर्विवाद रूप से निश्चित नहीं हो पाया है। उनकी अथवा उनके समसामयिक समझे जाने वाले संतों की भी उपलब्ध रचनाओं आदि पर विचार करने से यह समय-ईस्वी सन् की पन्द्रहवीं शताब्दी के तृतीय अथवा अधिक से अधिक, चतुर्थ चरण से आगे बढ़ता हुआ नहीं जान पड़ता[1]। अतएव, ऊपर दिए मीराँबाई के जीवन वृत्त को स्वीकार करने वाले के लिए रैदासजी को उनका समसामयिक मान लेना असम्भव होगा। संत रैदासजी की उपलब्ध जीवनियों में उल्लिखित 'चित्तौड़ की झाली रानी'[2] नाम मीराँबाई का नहीं हो सकता। मीराँबाई 'मेड़तणी' कहलाती थीं। हाँ, जहाँ तक पता है, सन्त रैदासजी का नाम मीराँबाई की उपलब्ध-रचनाओं की कुछ प्राचीन प्रामाणिक प्रतियों में भी आया है जिस कारण उनकी ओर ध्यान देने के लिए बाध्य हो जाना पड़ता है। परिणाम स्वरूप इतना अनुमान करना,

---

१—परशुराम चतुर्वेदी: 'उदासी सन्त रैदास जी' —'हिन्दुस्तानी' (जनवरी सन् १६३६ ई०) हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग।

२—प्रसिद्ध है कि यह नाम राणा सांगा की पत्नी का था।

कदाचित्, सत्य के अधिक निकट होगा कि मीराँबाई पर सन्त रैदासजी की 'वानी' अथवा रैदासी[३] सन्तों का बहुत प्रभाव था और उनका "गुरु मिलिया रैदास" आदि कहना उसी प्रकार ठीक था जैसा प्रसिद्ध सन्त चरणदास जी के लिये शुकदेव जी तथा गरीबदास जी के लिये कबीर साहब से मिलना सम्भव समझा जा सकता है। मीराँबाई का जन्म वा पालन पोषण एक भक्ति-परायण कुल में हुआ था। उनके पितामह राव दादूजी परम वैष्णव थे जिनके उपास्यदेव चतुर्भुज भगवान् के मन्दिर का मेड़ते में अब भी वर्तमान होना बतलाया जाता है और, जहाँ तक पता है, उनके चचा राव वीरमदेवजी ने भी, इस बात में, अपने पिता का ही अनुसरण किया था। इसी प्रकार राव जयमलजी भी, जिनकी शिक्षा मीराँबाई के साथ साथ हुई थी, एक प्रसिद्ध वैष्णव भक्त हो गए हैं। इन तीनों राठौड़ राजाओं के उल्लेख नाभादासजी ने भी अपने 'भक्तमाल' में किये हैं। बचपन में श्री गिरधर लाल की मूर्ति को सर्वस्व मान, उसे अपनाने वाली मीराँ पर इन तीनों का पूरा प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता था। इसके सिवाय मीराँबाई अपने विवाह के अनन्तर भी, एक ऐसे कुल में गयी थीं जो, एकलिङ्ग का उपासक होता हुआ भी, वैष्णवधर्म की ओर प्रवृत्त रहता आ रहा था। महाराणा कुंभा तथा उनके कुछ पूर्वजों द्वारा भी प्रतिष्ठित अनेक विष्णु-मन्दिर इस बात के लिए साक्षी समझे जा सकते हैं। मीराँबाई को अपनी ससुराल में अनेक बाधाओं का सामना तभी करना पड़ा जब वे अपने शोकपूर्ण जीवन में, स्वभावतः आगई हुई विरक्ति से विवश होकर, मेवाड़ नरेशों की कुलोचित मर्यादाओं तक को तिलांजलि देने पर तुल गईं। तदनुसार, इनकी प्रसिद्धि से प्रेरित हो पहुँचने वाले, प्रचलित वैष्णव सम्प्रदायों के साधु संतों का आना जाना अनिवार्य होगया और इनकी मानसिक प्रवृत्ति भी अधिकाधिक दृढ़ होती गई। मीराँबाई के हृदय में भक्ति की भावना, वस्तुतः स्वाभाविक रूप से विकसित हुई थी और उन्हें उसके लिए,

---

३—भक्त बीठलदास जैसे लोग 'रैदासी' कहलाते भी थे (दे० नाभादास का 'भक्तमाल')।

किसी सम्प्रदाय-विशेष का सहारा लेना उतना आवश्यक न था।

(४) 'मीराँबाई' नाम का रहस्य।

'मीराँबाई' का शब्दार्थ क्या है? क्या यह शब्द उपनाम है? और 'मीराँ' शब्द की व्युत्पत्ति तथा शुद्ध रूप क्या है? जैसे प्रश्न पहले पहल[1] स्व० डा० बड़थ्वाल ने उठाये थे और उनके उत्तर भी उन्होंने अपने मतानुसार, देने का प्रयत्न किया था। तब से इस विषय के संबन्ध में कई विद्वानों ने अपने विचार प्रकट किये, किंतु किसी अंतिम निर्णय तक नहीं पहुंच सके।

मीराँबाई

'मीराँबाई' शब्द को उक्त डा० बडथ्वाल ने कबीर साहब के अनुयायी संतों द्वारा दिया हुआ उपनाम ठहराया है और उसका शाब्दिक अर्थ 'ईश्वर की पत्नी' सिद्ध करने की चेष्टा की है। उनका कहना है कि 'मीराँ' शब्द, सर्व प्रथम कबीर की रचनाओं में तीन बार आया है और वह सर्वत्र ईश्वर वाचक ही समझ पड़ता है। उसी प्रकार 'बाई' शब्द का प्रयोग पत्नी के लिए होता है और मीराँबाई ने अपनी रचनाओं में 'मेरो पति सोई' आदि का संकेत भी दिया है। अतएव संतों ने उन्हें यही नाम दे डाला और उनका मूल नाम, इसके प्रचलित हो जाने पर, सदा के लिए विस्मृत हो गया। परंतु कबीर साहब वा दादू की रचनाओं में भी आये हुए 'मीराँ' शब्द को हम ईश्वर के लिए प्रयुक्त व्यक्तिवाचक संज्ञा, किसी प्रकार भी, नहीं मान सकते। यह शब्द कदाचित् किसी भाषा में ईश्वर के लिए प्रयुक्त भी नहीं होता और उक्त रचनाओं में भी इसके लिए ईश्वर, अधिक से अधिक, लक्ष्यार्थ ही माना जा सकता है। इसका वाच्यार्थ इससे भिन्न होगा। इसके सिवाय 'बाई' शब्द का अर्थ भी, राजस्थान की परंपरा के अनुसार, कन्या वा किसी आदरणीया महिला ही हो सकता है; पत्नी नहीं हो सकता। फिर संतों द्वारा

---

१ डा० बडथ्वाल: 'मीराँबाई—नाम—'सरस्वती' (भा० ४० अं० ३ पृ० २११—३)।

उक्त उपनाम किसी नाम वाली स्त्री को दिया गया होगा। किंतु, आश्चर्य है कि, उस मूल नाम का संकेत न तो मीराँबाई ने अपनी रचनाओं में कहीं देना उचित समझा और न उसका कोई उल्लेख किसी इतिहासज्ञ ने ही आज तक किया। इधर हाल की प्रकाशित एक पुस्तक[1] के लेखक ने तो यहाँ तक वतलाया है कि मीराँबाई की समकालीन एक अन्य राजकुमारी (राव मालदेव की पाँचवी पुत्री) का भी नाम यही था। इस प्रकार डा० वड़थ्वाल की उक्त धारणा केवल काल्पनिक व भ्रमात्मक ही जान पड़ती है।

मीराँ

तो भी, अर्थात् मीराँबाई शब्द के उपनाम न होने तथा उसका अर्थ मीराँ नाम की श्रद्धेय महिला मान लेने पर भी, मीराँ शब्द की व्युत्पत्ति का प्रश्न ज्यों का त्यों रह जाता है। स्व० पुरोहित हरि नारायण जी ने बहुत खोज के उपरान्त, कदाचित्, यह अनुमान किया था कि 'मीराँ' शब्द मीराँ शाह सूफ़ी (अजमेर) के नाम से लिया गया होगा क्योंकि मीराँबाई के माता पिता संतान के लिए चिंतित थे और मीराँबाई का जन्म उक्त फ़क़ीर की मनौती करने पर ही हुआ था। परंतु ऐसी धारणा के लिए कोई आधार नहीं वतलाया गया है जिससे इसकी प्रामाणिकता सिद्ध की जा सके और, इसे मान लेने पर भी, 'मीराँ' के मूल रूप का पता नहीं चलता। डा० वडथ्वाल ने 'मीराँ' को 'मीर' शब्द का रूपांतर मानते हुए कहा है कि उसका संवन्ध संस्कृत के 'मीर' शब्द के साथ नहीं हो सकता। संस्कृत के 'मीर' शब्द का अर्थ 'सागर' वा 'महान्' है और उसका यही अभिप्राय फरासीसी तथा लेटिन भाषाओं के समरूप शब्दों से भी स्पष्ट है। तो भी उक्त शब्द संस्कृत-साहित्य में प्रचलित नहीं जान पड़ता, इस कारण, मीराँ शब्द का उससे निकाला जाना खींचा-तानी से ही संभव है। 'मीराँ' शब्द का निकटतर संवन्ध उन्होंने इसीलिए, फारसी भाषा के 'मीर' शब्द से जोड़ा है और कहा है कि उसमें वहुवचन के सूचक

---

१ महावीर सिंह गहलोतः 'मीराँ' जीवनी और काव्य—राजस्थान संघ ग्रंथमाला, हिन्दू विश्वविद्यालय सं० २००२ पृ० १५-६।

राजस्थानी 'आँ' प्रत्यय लगाकर 'मीराँ' रूप, आदर-प्रदर्शन के लिए, स्वामी वा मालिक के अर्थ में, अपना लिया गया जान पड़ता है। डा० बड़थ्वाल का यह मत युक्ति-संगत है, किंतु बहुत से दूसरे लोग इसे ठीक नहीं समझते। एक लेखक ने 'मीरां' शब्द को 'मिहिर' जैसे शब्दों से निकला हुआ बतलाकर प्रश्न को एक प्रकार से विचाराधीन ही रख छोड़ा है और श्री नरोत्तमदास स्वामी ने, प्राकृत व अपभ्रंश के व्याकरणों की सहायता से मीराँ को 'वीरां' का प्रवर्तित रूप सिद्ध करने की चेष्टा की है। ऐसे ही प्रयत्न एकाध और लोगों ने भी किये हैं।

निष्कर्ष

वास्तव में अब तक उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर मीरांबाई का 'मीरां' नाम माता पितादि का दिया हुआ जान पड़ता है। 'बाई' शब्द उसमें सम्मान-प्रदर्शन के लिए जोड़ दिया गया है। इसे उपनाम कहने के लिए कोई कारण नहीं। 'मीराँ' शब्द का मूल रूप भी फ़ारसी का 'मीर' शब्द ही रहा होगा जिसका बहुवचन 'मीराँ', 'आँ' प्रत्यय लगाकर, बनाया गया है। मीराँबाई ने स्वयं भी अपने को अपनी रचनाओं में मीराँ ही कहा है। मीरांबाई शब्द उनके लिए अन्य लोग ही व्यवहृत करते आये हैं। 'मीराँ' की जगह 'मीरा' शब्द के प्रयोग को स्व० पुरोहित जी मीराँबाई के लिए अपमान-जनक मानते थे, किंतु हिंदी में 'मीरा' का ही अधिक प्रयोग होता रहा है और डा० बड़थ्वाल के अनुसार 'मीरा' का सानुस्वार प्रयोग करना आवश्यक नहीं। तो भी, यदि उक्त प्रकार से ही 'मीरा' शब्द, वास्तव में, सिद्ध होता है तो, कम से कम प्रयोग-शुद्धि की भी दृष्टि से, मीरा को मीराँ बनाकर ही लिखना उचित है।

परिशिष्ट (ख)

मीराँबाई-सम्बन्धी कुछ प्रसङ्ग :--

(१) सदरिस गोपिन प्रेम प्रगट, कलिजुगहिं दिखायो ।
निर अङ्कुश अति निडर, रसिक जस रसना गायो ॥
दुष्टनि दोष विचारि, मृत्यु को उद्दिम कीयों ।
वार न बाँको भयो, गरल अमृत ज्यों पीयों ॥
भक्ति निसान बजाय कै, काहूते नाहिन लजी ।
लोक लाज कुल शृंखला, तजि मीराँ गिरधर भजी ॥११५॥

—नाभादास

(२) लाज छाँड़ि गिरधर भजी, करी न कछु कुल कानि ।
सोई मीराँ जगविदित, प्रगट भक्ति की खानि ॥
ललिता हू लइ बोलिकै, तासों हो अति हेत ।
आनंद सों निरखत फिरै, वृन्दावन रसखेत ॥
नृत्यत नूपुर बाँधि कै, नाचत लै करतार ।
विमल हियौ भक्तिनि मिली, तृन सम गन्यो सँसार ॥
बंधुनि विष ताकों दियौ, करि विचार चित आन ।
सो विष फिरि अमृत भयौ, तब लागे पछितान ॥

—ध्रुवदास

(३) मेरतो जन्मभूमि, झूमि हित नैन लागे,
पगे गिरधारीलाल पिता ही के धाम में ।
राना कै सगाई भई करी ब्याह सामानई,
गई मति बूड़ि, वा रँगीले घनस्याम में ॥
भाँवरे परत, मन साँवरे स्वरूप माँझ,
ताँवरे सी आवे, चलिबे को पति गाम में ।
पूछैं पिता माता, "पट आभरन लीजिये जु,"
लोचन भरत नीर कहा काम दाम में ॥१॥

देवौ गिरधारी लाल, जौ निहाल कियौ चाहौ,
और धन माल सब राखियैं उठाय कै।
वेटी अति प्यारी, प्रीति रङ्ग चढ़यौ भारी,
रोय मिली महतारी, कही "लीजिये लड़ायकै" ॥
डोला पधराय हग हगसों लगाय चलीं,
सुखन समाय जाय, प्रान पति पायकै।
पहुँची भवन सासु देवी पै गवन कियौ,
तिया अरुवर गँठजोरो कर्यौ भायकै ॥२॥

देवी कै पुजायबेकौं, कियौ लै उपाय सासु,
वर पै पुजाइ, पुनि वधू पूजि भाखियै।
वोली "जू विकायौ माथौ, लाल गिरधारी हाथ,
और कौन नयै, एक वहै अभिलाखियै" ॥
बढ़त सुहाग याकै पूजे ताते पूजा करौ,
करौ जिनि हठ सीस पायनि पै राखियै।
कही वार-वार 'तुम यही निरधार जानौ,
वही सुकुमार जायै वारि फेरि नाखियै" ॥३॥

तवतौ खिसानी भई, अति जरि वरि गई,
गई पति पास "यह वधू नहीं काम की।
अवही जवाव दियौ, कियौ अपमान मेरौ,
आगेक्यों प्रमान करै?" भरै स्वास चाम की ॥
राना सुनि कोप कर्यौ धर्यौ हियो मारि वोई,
दई ठौरि न्यारी देखि, रीझि मति बाम की।
लालनि लड़ावै गुन गायकै मल्हावै,
साधु सङ्गही सुहावै, जिन्है लागी चाह स्याम की ॥४॥

आयकै ननँद कहै, "गहै किन चेत भाभी,
साधुनिसों हेत मैं कलङ्क लागै भारियै।

राना देसपती लाजै, बाप कुलरती जात,
मान लीजै बात वेगि सङ्ग निरवारियै।"
लागे प्रान साथ संत, पावत अनन्त सुख,
जासों दुख होय, ताको नीके करि टारियै।
सुनिकै कटोरा भरि गरल पठाय दियौ,
लियौ करि पान, रङ्ग चढ़यौ यों निहारियै ॥५॥

गरल पठायौ, सो तौ सीस लै चढ़ायौ,
सङ्ग त्याग विष भारी, ताकी झार न सभारी है।
राना ने लगायौ चर, बैठे साधु ढिगढर;
तबहीं खबर कर मारौ यहै धारी है॥
राजै गिरधारी लाल, तिनहीं सों रङ्ग जाल;
बोलत हँसत ख्याल कानपरी प्यारी है।
जायकै सुनाई, भई अति चपलाई,
आयौ लिये तरवार, दै किवार खोलि न्यारी है ॥६॥

"जाके संग रङ्ग भीजि करन प्रसंग नाना,
कहाँ वह नर गयौ, वेगि दै बताइयै।"
"आगे ही बिराजै, कछू तो सों नहीं लाजै,
अभू देख सुख साजै, आँखैं खोलि दरसाइयै।"
भयोई खिसानौ राना लिख्यौ चित्र भीत मानौ,
उलट पयान कियौ, नेकु मन आइयै।
देख्यो हूँ प्रभाव यै पै भाव मैं न भिद्यौ जाइ,
बिना हरि कृपा कहौ कैसे करि पाइयै ॥७॥

विषई कुटिल एक भेष धरि साधु लियौ,
कियौ यों प्रसंग मोसों अंग संग कीजियै।
आज्ञा मों को दई आप लाल गिरधारी अहो,
सीस धरिलई करि भोजन हूँ लीजियै।

संतनि समाज मैं बिछाय सेज बोलि लियौ,
संक अब कौन की निसंक रस भोजियै।
सेत मुख भयौ, विषेभाव सब गयौ,
नयौ पाँयन पै आय मोकों भक्तिदान दीजियै ॥८॥

रूप की निकाई भूप अकबर भाई हिये,
लिये संग तानसेन, देखिवे कों आयो हैं।
निरखि निहाल भयौ छवि गिरधारीलाल,
पद सुखसाज एक तबही चढ़ायो है॥
वृन्दावन आई जीवगुसाईं जू सों मिलि झली,
तिया मुख देखिवे कौ पन लै छुटायौ है।
देखी कुञ्ज कुञ्जलाल प्यारी सुख पुञ्जभरी,
धरी उर माँझ आय देख बन गायो है ॥९॥

राना की मलीन मति देखि बसी द्वारावती,
रति गिरधरलाल, नितही लड़ाइयै।
लागी चटपटीं भूप भक्ति कौ सरूप जानि,
अति दुख मानि, विप्र श्रेणी लै पठाइयै॥
वेगि लैके आवौं मोंको प्रानदै जिंवावौ,
अरो गयो द्वार धरनौ दै विनती सुनाइयै।
सुन विदा होन गई राय रणछोड़ जूयै,
छाँडौ राखौ हीन लीन भई नहीं पाइयै ॥१०॥

—प्रियादास।

कलियुग मीरा भई, गोपिका द्वापर जैसी।
कृष्ण भक्ति सर, लीन, मीनहू है नहीं ऐसी।
भजि गिरधरगोपाल, जगत सों नातो तोर्‍यो,
विमुखन सों मुख मोरि, स्याम सों नेहा जोर्‍यो॥
राना ने विष दियौ, पियौ चरनामृत करिकै।
बार न बाँको भयो, ध्यान पिय को हिय धरिकै॥

लोक लाज तजि प्रगट, संत सङ्ग गाई नाची।
प्रेम निरत पद रचे, लालगिरधर रङ्ग राची ॥१॥

—वियोगी हरि

परिशिष्ट (ग)

(मीराँबाई की कुछ अन्य रचनाएँ)

१—नरसी जी रो माहेरो के कुछ अंश:—

१—आरम्भ में दी हुई राग जंगला की ठुमरी।

गनपति कृपा करो गुण सागर जनको जस सुभ गाय सुनाऊँ।
पच्छिम दिसा प्रसिद्ध धाम सुख, श्री रणछोड़ निवासी।
नरसी को माहेरो मङ्गल गावे मीराँ दासी ॥१॥
छत्री वंस जनम मम जानो, नगर मेड़ते वासी।
नरसी को जस वरन सुणाऊँ, नाना निधि इतिहासी ॥२॥
सखा आपने सङ्ग जु लीने, हर मन्दिर पे आए।
भक्ति कथा आरम्भी सुन्दर, हरि गुण सीस नवाए ॥३॥
को मंडल को देस बखानूँ, संतन के जस वारी।
को नरसी सो भयो कोन विध, कहो महिराज कुंवारी ॥४॥
ह्वै प्रसन्न मीराँ तब भाख्यो, सुन सखि मिथुला नामा।
नरसी की विध गाय सुनाऊं, सारे सब ही कामा ॥५॥

(२) मध्य का पद राग जैजैवन्ती

सोवत ही पलका में मैं तो, पल लागी पल में पिउ आए।
मैं जु उठी प्रभु आदर दैन कूँ, जाग परी पिव ढूँढ न पाए ॥१॥
और सखी पिव सोय गमाए, मैं जु सखी पिव जागि गमाए ॥२॥
आज की बात कहा कहूँ सजनी, सपना में हरि लेत बुलाए ॥३॥
वस्तु एक जब प्रेम की पकरी, आज भए सखि मन के भाए ॥४॥

(३) अन्तिम पद
यौ माहरो सुनैरु गुंनिहै, वाजे अधिक बजाय ।
मीराँ कहै सत्य करि मानो, भक्ति मुक्ति फल पाव ॥६॥

२—कुछ फुटकर पद जो 'मीराँबाई की पदावली' में नहीं आये हैं :—

(१) हमरे रौरे लागलि कैसे छूटै ॥टेक॥
जैसे हीरा हनत निहाई, तैसे हम रौरे बनि आई ॥१॥
जैसे सोना मिलत सोहागा, तैसे हम रौरे दिल लागा ॥२॥
जैसे कमल नाल विच पानी, तैसे हम रौरे मन मानी ॥३॥
जैसे चंदहि मिलत चकोरा, तैसे हम रौरे दिल जोरा ॥४॥
तैसे मीराँ पति गिरधारी, तैसे मिलि रहु कुञ्जविहारी ॥५॥

(२) हेली सुरत सोहागिन नार, सुरत मेरी राम से लगी ॥टेक॥
लगनी लहँगा पहिर सोहागिन, वीती जाय वहार ।
धन जोबन दिन चार का है, जात न लागे बार ॥१॥
झूठे वर को क्या वरूँजी, अधबिच में तज जाय ।
बर बराँला रामजी, म्हारो चूड़ो अमर हो जाय ॥२॥
राम नाम का चूड़लो हो, निरगुन सुरमो सार ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणाँ वलिहार ॥३॥

(३) मेरे तो एक राम नाम दूसरा न कोई ।
दूसरा न कोई साधो सकल लोक जोई ॥टेक॥
भाई छोड्या बन्धु छोड्या छोड्या सगा सोई ।
साध सङ्ग बैठ बैठ लोक लाज खोई ॥१॥
भगत देख राजी हुई जगत देख रोई ।
प्रेम नीर सींच सींच विष बेल धोई ॥२॥
दधि मथ घृत काढ लियो डार दई छोई ।
राणा विष को प्यालो भेज्यो पीय मगन होई ॥३॥

अब तो बात फैल पड़ी जाणै सब कोई ।
मीरा राम लगण लगी होणी हो सो हांई ॥४॥

(४) मेरे मन राम नामा बसी ।
तेरे कारण स्याम सुंदर सकल लोगाँ हँसी ॥१॥
कोई कहे मीरा भई बौरी, कोई कहे कुल नासी ।
कोई कहे मीरा दीप आगरी, नाम पियासूँ रसी ॥२॥
खाँड धार भक्ती की न्यारी, काटि है जम फँसी ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, सब्द सरोवर धँसी ॥३॥

(५) गोविंद सूँ प्रीत करत, तबहिं क्यूँ न हटकी ।
अब तो बात फैल परी, जैसे बीज बटकी ॥१॥
बीच को विचार नाहिं, छाँय परी तटकी ।
अब चूको तो ठौर नाहिं, जैसे कला नटकी ॥२॥
जल के बुरी गाँठ परी, रसना गुन रटकी ।
अब तो छुड़ाय हारी, बहुत बार झटकी ॥३॥
घर घर में घोल मठोल, बानी घट घट की ।
सबही कर सीस धारि, लोकलाज पटकी ॥४॥
मद की हस्ती समान, फिरत प्रेम लटकी ।
दास मीरा भक्ति बुंद, हिरदय बिच गटकी ॥५॥

सहायक साहित्य

(सहायक ग्रंथों व निबन्धों की प्राय: काल-क्रमानुसार सूची)

१—पूर्णतः मीराँ-सम्बन्धी (ग्रन्थ)

(१) कार्त्तिक प्रसाद खत्री: 'मीराँबाई का जीवन चरित्र' (जीवन की घटनाओं का साधारण विवरण)।

(२) मुं० देवीप्रसाद मुंसिफ : 'मीराँबाई का जीवन चरित्र'—जैन प्रेस, लखनऊ, संवत् १९५५ (काल-सम्बन्धी ऐतिहासिक विवेचन के साथ जीवनी)।

(३) श्री सीताराम शरण भगवान प्रसाद : 'श्री मीराँबाईजी'—खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, सम्वत् १९७९ (कतिपय घटनाओं का आवेशात्मक अध्ययन)।

(४) बालेश्वर प्रसाद : 'मीराँबाई की शब्दावली'—बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग। (जीवन-परिचय व पद-संग्रह)।

(५) नरोत्तमदास स्वामी, एम० ए० : 'मीरा मन्दाकिनी'—यूनिवर्सिटी बुकडिपो, आगरा, संम्वत् १९८७ (जीवनी, कविता, भाषा, आदि की आलोचना के साथ पद-संग्रह और टिप्पणी,, अच्छा संस्करण)।

(६) व्यथित हृदय : 'भक्त मीरा'—धर्म-ग्रन्थावली, दारागञ्ज प्रयाग, सन् १९३३ ई० (रोचक शैली में लिखी जीवनी व संक्षिप्त पद-संग्रह)।

(७) भुवनेश्वर मिश्र 'माधव' एम० ए० : 'मीरा की प्रेम-साधना,—वाणी-मन्दिर, छपरा, सन् १९३४ ई० (आदर्श एवं साधना की भावमूलक व्याख्या व सटिप्पण पद-संग्रह)।

(८) श्री मुरलीधर श्रीवास्तव, बी० ए० एल-एल् बी० : 'मीराबाई का काव्य'—साहित्य-भवन लिमिटेड, प्रयाग, सन् १९३४ ई० (साहित्यिक आलोचना व सटिप्पण पद-संग्रह)।

(9) R. C. Tandon: 'SONGS OF MIRABAI'...Hindi Mandir, Allahabad. 1934.
(भूमिका, टिप्पणी, पद-सूची आदि सहित मीरा के ५० पदों का अंग्रेजी अनुवाद)।
(१०) सदानन्द भारती: 'मीरा की पदावली'—एस० एस० मेहता ऐएड ब्रदर्स, बनारस सिटी, संवत् १९९२ वि० (आलोचनात्मक परिचय व शब्दार्थ सहित पद-संग्रह)।
(११) वामदेव शर्मा: 'मीरा'—सन्त-कार्यालय, प्रयाग, सन् १९३६ ई० (संक्षिप्त जीवनी व टिप्पणी सहित पद-संग्रह)।

(निबन्ध)

(१२) ठाकुर गोपालसिंह राठौर मेड़तिया: 'मीराँबाई'—"सुधा" लखनऊ वर्ष १, खंड २, मार्च १९२८ ई० (आलोचनात्मक परिचय)।
(13) Anathanath Bosu: 'MIRABAI, HER LIFE AND SONG'—Yishwabharti January, 1929.
(आलोचनात्मक परिचय)।
(१४) परशुराम चतुर्वेदी: 'मीराँबाई'—'हिन्दुस्तानी,' भा० १ अ० १, जनवरी १९३१ ई० (आलोचनात्मक परिचय)।
(१५) कुँवर कृष्ण बी० ए०: 'मीराँबाई की जीवनी और कविता पर कुछ विचार'—परिषद निबंधावली भा० २, प्रयाग विश्वविद्यालय, १९३१ (आलोचनात्मक परिचय)।
(16) Nalinimohan Sanyal M. A. 'MIRABAI'—The Kalyan Kalpataru (God Number) Gita Press, Gorakhpur. January 1934.

(आलोचनात्मक परिचय)।
(१७) रामलोचन शर्मा, एम० ए०: 'मीराँबाई'—'राजस्थान' वर्ष १, संख्या १, सं० १९९२ वि०, राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता (आलोचनात्मक परिचय)

(१८) श्री पाण्डेय रामावतार शर्मा, एम० ए०, एल-एल वी०: 'मीरा की प्रेम-साधना'—'वीणा' वर्ष ८, अङ्क १२, १६३५ ई०. इन्दौर (मीराँ की माधुर्य-भाव-मयी साधना की आलोचना)।

(१६) डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल एम० ए० डी० लीट् 'मीराबाई' और वल्लभाचार्य'—'हिन्दुस्तानी,' भा० ८ अं० २, अप्रैल १६३८ ई० (मीराँ के मतकी पुष्टिमार्ग के साथ तुलना, आलोचनात्मक निबन्ध)।

२—अंशतः मीरा-सम्बन्धी ग्रन्थ

(१ गोसाईं गोकुल नाथः 'चौरासी वैष्णवन की वर्त्ता,—गङ्गाविष्णु श्री कृष्णदास, मुंवई, सं० १६८५ संस्करण (कथात्मक प्रसंग)।

(२) श्री नाभादासः 'भक्तमाल' (प्रियादास की भक्तिरस बोधिनी टीका सहित व सीतारामशरण भगवान् प्रसाद 'रूपकला' द्वारा संपादित) नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, सन् १६२६ ई० संस्करण (पैराणिक शैली में लिखा प्रशंसात्मक वर्णन)

(३) बेणीमाधव दास : 'मूलगोसाईं चरित'—गीताप्रेस, गोरखपुर : संवत् १६६१ संस्करण (तुलसी व मीराँ के पत्र-व्यवहार का संक्षिप्त उल्लेख)।

(४) ध्रुवदासः 'भक्तनामावली'—काशी नागरी प्रचारिणी सभा का संस्करण (संक्षिप्त परिचय)।

(5) James Todd : ANNALS AND ANTIQUITIES OF RAJASTHAN—(Oxford Edition)

(साधारण परिचयात्मक प्रसंग)।

(६) ठा० शिवसिंह सेंगर : 'शिवसिंह सरोज'—नवलकिसोर प्रेस, लखनऊ सन् १६२६ ई० संस्करण (संक्षिप्त परिचय)।

(7) G, M. Tripathi : 'Classical poets of Gujrat'—N. M. Tripathi & Co, Bombay 2. 1892 (साधारण प्रसंग)।

(८) मुंशी देवी प्रसाद मुंसिफ 'महिला मृदु वाणी'—काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सन् १६०५ ई० (संक्षिप्त परिचय व पद संग्रह)।

(६) त्र्यम्बक हरी आपटे: 'गाथा पञ्चक (श्री संतगाथा)'—इन्दिरा प्रेस, पुणें सके १८३१ (सं० १८६६) (इस पद-संग्रह के मीराँ रचित पदों पर मराठी का बहुत प्रभाव पड़ा है)।

(10) K, M, Jhaveri M A L L B: MILSTONES IN GUJRATI LITERATURE—Gujrati Priting Press Bombay, 1914-
(गुजराती पदों की दृष्टि से आलोचनात्मक परिचय)

(११) बाबू शिवनन्दन सहाय: 'श्री गोस्वामी तुलसीदास'—खड्गविलास प्रेस बाँकीपुर, १६१६ (तुलसी व मीराँ के पत्र-व्यवहार का आलोचनात्मक प्रसंग)।

(१२) मिश्रबन्धु 'मिश्रबन्धु-विनोद'—गङ्गा पुस्तकमाला, लखनऊ (साधारण परिचयात्मक प्रसंग)।

(१३) म० म० गौरी शङ्कर हीराचंद ओझा राजपूताने का इतिहास, दूसरी जिल्द (उदयपुर राज्य का इतिहास)—वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, संवत् १६८३ (एतिहासिक दृष्टि से किया परिचयात्मक उल्लेख)।

(१४) रामचंद्र शुक्ल 'हिंदी साहित्य का इतिहास'—काशी नागरी प्रचारिणी सभा, संवत् १६८६ (आलोचनात्मक परिचय)।

(१५) वियोगी हरि: 'मीराँबाई, सहजोबाई, दयाबाई का पद्य संग्रह'—गाँधी-हिंदी-पुस्तक-भण्डार, प्रयाग संवत् १६८७ वि० (संक्षिप्त परिचय व पदसंग्रह, सटिप्पण)।

(१६) वियोगी हरि: 'भजन-संग्रह' (तीसरा भाग)—गीता प्रेस, गोरखपुर संवत् १६८८ (शब्दार्थ-सहित पद-संग्रह जिसमें प्रत्येक पद को राग व ताल के अनुसार भी दिखलाया गया है)।

(१७) रामसिंह सूर्यकरण पारीक और नरोत्तम दास स्वामी: 'ढोला मारूरा दूहा'—काशी नागरी-प्रचारिणी सभा, संवत् १६६१ संस्करण (इसकी 'प्रस्तावना' में राजस्थानी भाषा व साहित्य के स्वरूप एवं विकास का अच्छा परिचय दिया गया है)।

॥ इति ॥